देना। हम तीन दोस्त आपस में मंत्रणा कर रहे थे। हमारे दिलों में एक ही दर्द था, इसी लिए हम तीनों एक थे। बीच में तुम भी आ पड़े। हममें से कोई तुम्हें बुलाने नहीं गया था। हम यह भी नहीं जानते थे कि तुम मुगलों के दुश्मन हो या भेदिया। सिर्फ चम्पालाल ने तुम्हारा परिचय देते हुए कहा था कि तुम बैरम खाँ से अपने चाचा की हत्या का बदला लेने के लिए व्याकुल हो।"

"बिलकुल ठीक है।"

"इसके बाद हमने तुम्हें अपने दल में शामिल कर लिया और तुम पर पूरा विश्वास करने लगे। धीरे-धीरे तुम हमारी सारी योजनायें जान गये। हम अपनी गुप्त मंत्रणाओं में भी तुम्हें शामिल करने लगे।"

"मैं मानता हूँ।"

"पिछली बैठक में बैरम खाँ की हत्या का सुझाव तुम्हीं ने पेश किया था। तुम्हारी दलील थी कि जब तक बैरम खाँ के जबर्दस्त हाथ का साया अकबर के सिर पर है, तब तक बालक होने पर भी अकबर का बाल तक बाँका करना सम्भव नहीं। इसी लिए बैरम खाँ की जान लेने का प्रबन्ध सबसे पहले करना चाहिए।"

"मैं अपनी राय पर कायम हूँ।"

"कहने की जरूरत नहीं कि हममें से हर एक उस नरक के कुत्ते के खून से अपने हाथ रँगना चाहता था। और हममें सबसे अधिक उतावले तुम थे।"

"वह तो मैं अब भी हूँ।"

"यही तो जानना है कि वास्तव में तुम अब भी वैसे ही उतावले हो या नहीं। हमारी योजना के अनुसार आज, इस समय, तुम्हें आगरे की सड़क पर नबीगंज की सराय में होना चाहिए था, पर हम तुम्हें देख रहे हैं कन्नौज की ओर जाते हुए—जहाँ हमारा जानी दुश्मन मुगलों का नया चकलेदार आकर ठहरा है।"

"इसका मतलब यह कि आपकी समझ में मैं अब आ
भेद देने के लिए चकलेदार के पास जा रहा हूँ !"

"यह मैं नहीं कहता। न मैं इस तरह का सन्देह आप
करना चाहता हूँ। सदा की तरह मैं तुम्हें अब भी अपना पर
पात्र समझता हूँ। पर इधर की तुम्हारी कुछ भूलें हमें
सोचने के लिए मजबूर कर रही हैं। करीब दो महीने से
रात की बैठकों में शामिल होने से बराबर हीला-हवाला क
हमारे दिलों में सन्देह पैदा कर देने के लिए यह कम नहं
आज हम लोगों को देखकर तुम्हारा इस तरह अँधेरे में
क्या मानी रखता है!"

"पकड़े जाने का भय, तुम्हारी तरह, क्या मुझे नहीं ह
खासकर ऐसी हालत में जब कि मुगलों के सवार हमेशा
गश्त लगाते रहते हैं?"

"तो तुमने हम लोगों को मुगल-सवार समझ लिया
यही न?"

"और नहीं तो क्या! फिर देखते नहीं कि मेरा घोड़ा
खाकर लँगड़ा हो गया।"

"यह भी मान लेता हूँ। पर इस समय तुम जा कहाँ
मुराद ने घोड़े की ओर ताकते हुए प्रश्न किया।

"अगर तुम मेरे पीछे-पीछे चुपचाप चले आते तो स्वयं ज
कि मैं कहाँ जा रहा था।"

"लेकिन यह तय है कि तुम आगरे नहीं जा रहे थे?"

"और कन्नौज भी नहीं जा रहा था!"

"साफ-साफ बातें बताओ। पहेली बुझाने की जरूरत नहीं

"तो मेरी प्रार्थना यह है कि आप इस सम्बन्ध में परेशान
यह मेरा निजी मामला है—बिलकुल निजी। न इससे आप
हानि होगी, न आपके काम की। आपके पीछे पड़ने से न केव

वरन् दूसरे की इज्जत को भी धक्का लग सकता है। इससे कोई लाभ न होगा।"

"तो क्या किसी प्रेमिका से मिलने जा रहे थे?"

"जो भी हो।"

"मैं ऐसे चकमों में आनेवाला नहीं हूँ।"

"फिर अविश्वास! अच्छा, मैं कुछ भी कहना नहीं चाहता। आप जो करना चाहें, खुशी से कर सकते हैं।"

बात को बढ़ते देख बीच-बिचाव के भाव से इम्दाद ने कहा—"सीधे-सीधे बता क्यों नहीं देते कि मामला क्या है। रात के समय हमें इस तरह यहाँ देखकर कोई क्या समझेगा? खुदा न करे, अगर कहीं मुगलों के कुत्ते इधर आ निकले तो...!"

विजय कुछ देर तक चुपचाप खड़ा रहा। मानो वह किसी बड़ी उलझन को मन ही मन सुलझाने का प्रयत्न कर रहा हो।

उसकी चुप्पी से उत्तेजित होकर मुराद फिर बोला—"सुनते हो मियाँ, मैं तुम्हारी जबान से सिर्फ वह कलाम सुनना चाहता हूँ जो हमारे सन्देह को दूर कर दे। अगर तुम इसके लिए इसी वक्त तैयार नहीं हो तो समझ लो कि तुम्हारे सिर की खैर नहीं।"

विजय मन ही मन कुढ़कर इम्दाद की ओर देखने लगा। पर उसके मुँह से उसके समर्थन में जब एक भी शब्द न निकला तब उसका धैर्य सीमा से बाहर हो गया। बर्छी की नोक से उसने अपनी उँगली से कुछ खून निकाला और उससे अपने पटके के छोर पर कुछ लिखा। फिर उसे बायें हाथ में पकड़कर दाहिने हाथ से नङ्गी तलवार घुमाता हुआ बोला—"यह लो, तुम जो कुछ जानना चाहते हो, इसमें लिखा है। अगर तुम मेरा पर्दा उघाड़ने पर ही तुल गये हो तो इसे पढ़ लो। पर यह भी समझ लेना कि उधर तुम्हारी आँखें इन अक्षरों पर होंगी और इधर यह तलवार मेरे कलेजे के भीतर।"

यह कहकर उसने तलवार की नोक को इस तरह कलेजे के ऊपर

अड़ा लिया मानो वह जो कुछ कह रहा है, उसे कर दिखाने
तैयार है।

"ठहरो। यह क्या बच्चों की तरह खिलवाड़...!" कहते हुए
ने लपककर उसकी कलाई पकड़ ली।

वातावरण को शान्त करने के प्रयत्न में इम्दाद ने भी कह
"तुम्हारी ऐसी बातें हमें जरा भी पसन्द नहीं हैं, विजय। आ
मुराद ने ऐसी कौन-सी बात कही थी जिससे तुम आपे से बाहर
गये। और मुराद, तुम भी तो बात का बतंगड़ बनाने लगते
विजय उन लोगों में नहीं है जो अपने दिल की बात दोस्तों से छि
हैं। यदि तुम उससे नर्मी से कहते तो मुझे विश्वास है कि वह अ
सारा भेद हमें प्रसन्नता से बतला देता।"

"अच्छा मेरे भाई!" मुराद ने विजय को गले लगाते हुए कहा,
"तुम नहीं जानते कि मैं तुम्हें कितना प्यार करता हूँ! पर कर्त्तव्य
सबसे अधिक प्यारा होना चाहिए। जहाँ तक मेरा अपना सवाल
मैं तुम्हारे पैरों की धूल अपनी पलकों से साफ करने को तैय
हूँ। पर जहाँ मैं सरदार हूँ, क्योंकि तुम्हीं लोगों ने मुझे ऐसा म
लिया है, वहाँ मैं रत्ती भर रिआयत करने को तैयार नहीं हूँ। तुम मे
गर्दन काट लो, यह मुझे मंजूर है, पर मुझे तुम्हारी हरकतों पर संदे
करने का मौका मिले, यह मुझे मंजूर नहीं है।"

"ऐसी हालत में दिल से संदेह निकाल डालना ही अच्छा है।

"पर यह मेरे नहीं, तुम्हारे करने का काम है। तुम कहते हो कि
तुम कन्नौज नहीं जा रहे हो। इसके साथ साथ यह भी सच है कि तु
आगरे भी नहीं जा रहे हो। फिर ऐसी जाड़े-पाले की रात में तुम
कहाँ जाने की जरूरत पड़ गई? इधर तो कोई ऐसी आबादी भ
नहीं है।"

क्षण भर की चुप्पी के बाद विजय ने कहा—"जब ऐसी बात है, तब

यही उचित प्रतीत होता है कि तुम स्वयं चलकर अपनी आँखों सब कुछ देख लो।"

"और हम लोग क्या यहीं खड़े रहेंगे?" इम्दाद ने कुछ व्यग्रता के साथ कहा।

"नहीं, तुम लोग भी चलो। जब भेद खुलना ही है तब जैसे एक ने जाना, वैसे ही हजारों ने जाना।"

विजय के इस तरह तैयार हो जाने पर मुराद कुछ आश्वस्त हुआ। उसने चम्पालाल को भी संकेत किया। वह इस समय भी अपने स्थान पर खड़ा तत्परता के साथ पहरा दे रहा था। चारों मित्र घोड़ों की लगामें हाथों में पकड़े धीरे-धीरे दक्षिण की ओर चल दिये और लगभग एक घंटे बाद काली नदी के तट पर जा पहुँचे।

नदी के कगार पर खड़े होकर विजय ने कुछ देर तक इधर-उधर देखा। फिर दूसरे किनारे की ओर उँगली उठाते हुए मुराद से कहा —"कुछ देख रहे हो?"

"कात्यायनी माई के थान की दीवाल के सिवा मुझे तो और कुछ भी दिखाई नहीं देता?" मुराद ने इंगित दिशा की ओर ध्यान के साथ देखते हुए उत्तर दिया।

"उधर देखो, सामने—दीवाल की ओर।"

"हाँ, एक खिड़की दिखाई पड़ रही है।"

"तो मैं वहीं जा रहा था।"

"वहाँ जाकर क्या करते?"

"उस खिड़की में जँगले के पीछे कोई मेरी राह देख रहा होगा।"

"कात्यायनी माई के थान में ...!"

"हाँ वहीं। थान में एक लड़की रहती है। उसे मैं ......!"

"उसे तुम प्यार करते हो, यही न? पर यह तो बताओ कि जहाँ परिन्दा तक पर नहीं मार सकता, वहाँ घुसकर डाका मारना तुम्हारे लिए कैसे संभव हो सका?"

"थान के माली की सहायता से। लड़की से अधिक उस माली पूजा मुझे करनी पड़ी है!"

"क्या जान-पहचान भी माली के जरिये ही हुई थी?"

"नहीं पिछले साल फूलमती देवी के मेले में कात्यायनी माई के स वह भी गई थी। वहीं मैंने उसे देखा और उसने मुझे। उस समय ऐसा ल मानो आँखों ही आँखों में हम दोनों ने अपने-अपने दिल बदल लिये हैं

"क्या तुम रोज रात को यहाँ आते हो?"

"रोज तो नहीं, पर अकसर आया करता हूँ। इसी से पिछले दि तुम्हारी रात की बैठकों में शामिल न हो सका।"

"बहुत संभव है। पर नदी में पानी रहता है, जानवर भी क नहीं हैं। अँधेरी रात में उसे तुम पार कैसे कर जाते हो?"

"प्रेम साहस देता है। उसकी प्रेम-पूर्ण चितवन रक्षा-कवच क कार्य करती है। फिर प्रियतम की राह में मर जाना भी क्या बुरा है खासकर मेरे जैसे आदमी के लिए, जिसका दुनिया में कहीं कोई नहं है। जीवन में कोई आकर्षण नहीं है।"

"तुम बहुत साहसी हो भाई, साथ ही सज्जन भी। तुमने हमारे दिल पर से एक भारी बोझ उतार दिया। तुम नहीं जानते कि इस मामले को लेकर हम लोग कितने परेशान थे।"

"पर बोझ तुम्हारे दिलों पर से उतरकर मुझ गरीब के दिल पर आ गया, यह भी जानते हो?"

"वह कैसे?"

"अपने इस व्यवसाय को मैं गुप्त रखना चाहता था। अकेले मुझ पर उसकी हानि और लाभ की जिम्मेदारी थी। आज वह मेरा गुप्त भेद प्रकट हो गया। जो वस्तु आज तक अकेली मेरी थी, वह आज...।"

"नहीं भाई, तुम्हें ऐसा न सोचना चाहिए। हम तुम्हारे अपने हैं, गैर नहीं! हम लोगों के बीच की बात तुम्हें ऐसी ही समझनी चाहिए मानों वह तुम्हारे दिल के भीतर ही है।"

"खैर, इन बातों से कुछ लाभ नहीं। मुझे आज उससे अन्तिम भेंट करनी है।"

"ऐसा क्यों?"

"आज ही मुझे आगरे की ओर चल देना है। वहाँ से लौट सकूँगा या नहीं, कौन जानता है?"

"तुम्हें दुख हो रहा है?"

"अवश्य; पर दूसरा उपाय क्या है?"

"यही कि तुम वहाँ न जाओ।"

"मैंने अपने सिर पर जो जिम्मेदारी ली है, उसे अवश्य पूरा करना है। दिल रोया करे, पर हाथ अपना काम अवश्य करेंगे।"

"जब तक दिल और हाथ साथ नहीं होंगे, तब तक ऐसा नाजुक काम सँभलेगा नहीं।"

"न सँभले; इसके लिए कोई चारा नहीं है।"

"अगर तुम अपनी जिम्मेदारी को पूरा कर सके तो जानते हो, क्या होगा! तुम्हारा नाम इतिहास में मोटे-मोटे अक्षरों में लिखा जायगा। आनेवाली पीढ़ियाँ तुम्हें सम्मान के साथ याद करेंगी, तुम देश को एक बहुत बड़ी मुसीबत से बचा लोगे।"

"सब समझता हूँ। पर तसवीर का एक दूसरा रुख भी हो सकता है, जो उतना लुभावना नहीं है।"

"सच कहते हो। पर मुझे विश्वास है कि उसके लिए तुम हमारी अपेक्षा कम तैयार नहीं हो। ऐसी बड़ी जिम्मेदारी अपने ऊपर लेते समय तुमने कहा था कि जो उद्देश्य जितने ऊँचे होते हैं, उनके लिए उतनी ही अधिक कीमत चुकानी पड़ती है।"

"अगर मेरी राय पूछो तो मैंने तसवीर का यही दूसरा रुख अपने लिए चुना है। अगर भाग्य से वह पहलू हाथ लगा, जिसकी ओर तुम्हारी आँखें लगी हैं, तो वह तुम्हारे लिए होगा, मेरे लिए नहीं।"

कर लोगे ! मैं केवल उत्सुकता के कारण यह और देखना चाह
कि तुम अपनी प्रेमिका से किस तरह भेंट करते हो। आशा है
तुम इसमें बुरा न मानोगे।"

"अर्थात् अभी तक सन्देह बना हुआ है?"

"नहीं मित्र, यह बात नहीं है। पर अगर सन्देह हो भी तो
अस्वाभाविक बात नहीं है। तुम जानते हो, मैं अपने बारे में भी
संदेहशील रहता हूँ। हम जिस हवा में चलते-फिरते और साँस लेते
उसमें सन्देह की गुञ्जाइश सब जगह है। फिर भी जिन्दा रहना पं
है। तुम्हें बुरा न मानना चाहिए।"

मुराद के शब्दों में इस बार बहुत अधिक नम्रता थी।

विजय ने अपने घोड़े की बागडोर जवासे के एक पौदे से अटका
मुराद ने भी उसका अनुकरण किया। फिर दोनों नदी में उत
पानी घुटनों तक था। कुछ ही देर में दोनों दूसरे किनारे पर दीवाल
नीचे पहुँच गये। इस बार मुराद ने स्पष्ट देखा कि एक नारी-मू
जँगले के भीतर से बाहर झाँक रही है। वह खिड़की से कुछ दू
दीवाल से सटकर, खड़ा हो गया। विजय खिड़की के ठीक नीचे पहुँ
गया। विजय की ओर एक क्षण तक देखकर उस रमणी ने अप
हाथ जँगले से बाहर लटका दिया। विजय ने उसका हाथ अपने हा
में लेकर चूमा, फिर हृदय से लगा लिया। कई क्षण तक दो में
किसी के मुँह से कोई शब्द न निकल सका।

इसी समय मुराद ने कुछ संकेत किया और उत्तर की प्रतीक्ष
बिना किये ही वह दबे पाँव नदी के उसी किनारे की ओर लौट गय
जिधर से आया था।

(२)

कन्नौज से पाँच मील पूर्व में शेरशाह ने दो इमारतें बनावई थीं—एक तो मस्जिद थी जो ठीक उस स्थान पर बनी है जहाँ पर उसने मुगल सम्राट् हुमायूँ को अन्तिम बार हराया था और दूसरा कात्यायनी देवी का थान, उक्त मस्जिद से पूर्व-उत्तर की ओर, काली नदी के तट पर। इन दोनों इमारतों के खँडहर दाइपुर या शेरगढ़ के आस-पास अब भी देखे जा सकते हैं।

कहते हैं कि जब शेरशाह अपनी सेना के साथ हुमायूँ का पीछा करता हुआ जौनपुर से कन्नौज की ओर बढ़ रहा था, उसे एक जगह गंगा के किनारे एक छोटा-सा सुन्दर मन्दिर दिखाई दिया। इसके सामने एक सुन्दर से चबूतरे पर वटवृक्ष की घनी छाँह थी। वहाँ बैठी हुई एक युवती संन्यासिनी शेरशाह की सेना की ओर निरपेक्ष भाव से देख रही थी। संन्यासिनी के मुख-मंडल पर ऐसी दिव्य आभा थी कि शेरशाह उसकी उपेक्षा न कर सका। वह घोड़े से उतर पड़ा और अकेला जाकर चबूतरे के नीचे सिर झुकाकर चुपचाप खड़ा हो गया। संन्यासिनी ने उसकी ओर दृष्टि फेरकर पूछा—"क्या चाहता है?"

"प्यास लगी है, मा।" शेरशाह ने विनीत भाव से उत्तर दिया।

"ठहर, जल लाकर तुझे पिलाती हूँ।" संन्यासिनी ने मन्दिर की ओर देखते हुए कहा।

"नहीं मा, इतना कष्ट न कीजिये।" कहकर शेरशाह
चलने के लिए उद्यत हो गया।

"क्यों, प्यास लगी है तो पानी पिये जा न!"

"दुआ काफी होगी मा, पानी तो कहीं भी मिल जायगा।"

"तू वीर है। तेरी अवश्य विजय होगी।" नेत्रों से वात्सल्य
धारा प्रवाहित करते हुए संन्यासिनी ने आशीर्वाद दिया। शेर
गद्गद हो गया। उसे संन्यासिनी के शब्द दैवी वरदान से प्रतीत हु

"मा तेरी पूजा घी-शक्कर से करूँगा," कहता हुआ वह
की ओर चला गया। अपनी विजय के सम्बन्ध में उसे अब दृढ़ वि
हो गया था।

शिविर में पहुँचकर संन्यासिनी के वरदान को शेरशाह ने
बढ़ा-चढ़ाकर अपने सरदारों को सुनाया। इससे उनका उत्साह
गुना हो गया। लड़ाई से पहले महीने भर तक दोनों सेनायें आ
सामने पड़ी रहीं और इस बीच शेरशाह प्रतिदिन कात्यायनी देवी
दर्शनार्थ जाता रहा। देवी का वरदान सच हुआ और लड़ाई
पर हुमायूँ बुरी तरह पराजित हुआ। फिर देश में पैर टिकाना उ
लिए असंभव हो गया। विजयी शेरशाह ने विजय के दूसरे ही
संन्यासिनी से फिर भेंट की और इस बार उसने दूर ही से भूमि
गिरकर साष्टांग प्रणाम किया और आज्ञा चाही। संन्यासिनी
कहा—"मुझे तू क्या देगा? पर यदि तू कुछ करना ही चाहता है
यहाँ नदी के किनारे एक ऐसा मकान बनवा दे जिसमें अनाथ स्त्रि
आश्रय पा सकें। यह काम तेरे यश के अनुकूल होगा।"

संन्यासिनी का संकेत उन अभागिनों की ओर था जिन्हें मदोन्म
मुसलमान सैनिक बलात् भ्रष्ट कर देते थे और फिर जिनके लि
हिन्दू-गृहस्थों के द्वार सदा को बन्द हो जाते थे। उत्तर-भारत में उ
दिनों सैन्य-संचालन और युद्ध के दृश्य अविरल थे, इसलिए ऐ

अष्टाओं की संख्या में भी बहुत वृद्धि हो गई थी। उनकी रक्षा के लिए ही संन्यासिनी ने शेरशाह से ऐसी माँग की थी।

संन्यासिनी के कथनानुसार शेरशाह ने एक बहुत बड़ा घर काली नदी के किनारे पर बनवा दिया। इसकी रचना बहुत कुछ किले जैसी थी। उसका निर्माण जन-कोलाहल से दूर नदी के शान्त और एकान्त वातावरण में किया गया था। वह बाहर चारों ओर से एक मोटी दीवाल से घिरा था जिसमें दक्षिण की ओर केवल एक प्रधान द्वार था। रसद के लिए द्वार के फाटक सप्ताह में केवल एक बार खुलते थे।

सदर फाटक के अतिरिक्त एक छोटा-सा द्वार पूर्व की ओर भी था। यह शरणार्थिनियों के प्रवेश के लिए था। पास ही आम का एक घना बाग था, जिसमें एक माली रहा करता था। माली के संकेत देने पर संन्यासिनी—जिसे उस घर के निवासी कात्यायनी माई कहकर पुकारते थे—स्वयं आकर द्वार खोलतीं और दुःखिनी बहिनों को मधुर वचनों से आश्वासन देती हुई भीतर ले जातीं।

इस आश्रम को लोग कात्यायनी माई का थान कहते थे। इसका प्रबन्ध ऐसी सावधानी से होता था कि बाहर के मनुष्य के लिए यह जानना असंभव था कि उसमें कौन कहाँ रहता है। कात्यायनी माई की देख-रेख में उसकी आश्रिताएँ निश्चिन्तता के साथ सात्विक जीवन व्यतीत किया करती थीं।

इस थान की उत्तर ओर की खिड़की के नीचे, जो काली नदी की ओर खुलती थी, अपने संदेहशील साथियों को बिदा करने के बाद विजय खड़ा था। कुछ क्षण तक एकटक उसके मुख की ओर निर्निमेष भाव से देखकर रमणी कंठ ने कहा—"तुम आज भी आ ही गये? देखो न, कैसी सर्दी है। पाला पड़ रहा है। फिर नदी का पानी—कहीं कुछ हो गया तो...!"

"नहीं नन्दा, मुझे कुछ नहीं होने का। तुम्हारी भोली-भाली चितवन मेरे लिए रक्षा-कवच का काम देती है।"

"तुम बड़े अच्छे हो, प्यारे विजय; जो मुझ ऐसी अनाथ लड़ लिए इतना कष्ट उठा रहे हो। मैं तुम्हारी कृपा का बदला कैसे सकूँगी!"

"पर यह क्या?" एकाएक चौंककर विजय ने कहा—"आज तु आँखें गीली क्यों हैं? क्या कोई विशेष बात है?"

"कुछ नहीं, आज सबेरे से ही मेरी आँखों से आँसू...!"

"तुम्हें मेरी कसम है, सच सच बतलाओ, क्या हुआ है तुम्हें विजय ने चाहा कि रूमाल से नन्दा के आँसू पोंछ दे पर खिड़की क ऊँची थी। उसने नन्दा का हाथ जोर से अपने दोनों हाथों में दबा लि

"क्या बतलाऊँ, आज सबेरे ही सबेरे कात्यायनी माई ने बुलवाया। जब मैं गई तब पहले तो उन्होंने मुझे अपने पास बिठा प्यार किया, मेरे सिर पर हाथ फेरा फिर आँखों में आँसू भरकर क लगीं—'बेटी नन्दा, इस आश्रम की लड़कियों में तू ही मुझे स अधिक प्यारी है। तेरी अभागी मा आश्रम बनने के कुछ ही दिन ब मेरे साथ ही यहाँ आई थी और तुझे मेरी गोद में सौंपकर न जाने क चली गई। आज पन्द्रह वर्ष से तू मेरी आँखों का तारा बनकर य रह रही है। लेकिन आज तेरे कुटुम्बवालों ने तुझे याद किया है मुझे विश्वास है कि वहाँ जाकर तू अधिक प्रसन्न रह सकेगी। तुझे आ ही अपने जाने की तैयारी कर लेनी चाहिए।"

"लेकिन तुम तो सदा यही कहती रही हो कि तुम्हारे कहीं को नहीं है?" विजय ने आश्चर्य से कहा।

"अब तक मैं जो सुना करती थी, वही कहा करती थी। आ जो कुछ सुना, वह भी कह दिया।"

"कैसे भोली-भाली हो तुम नन्दा! मुझे डर है कि तुम्हारे यहाँ हटाये ज़ाने में कोई षड्यंत्र न हो?"

"कात्यायनी माई छल-छन्द नहीं जानतीं। वे सदा सत्य बोलती हैं।"

"इसी लिए वे भुलावे में भी सहज ही आ सकती हैं। मेरा मतलब

यह है कि जिन्होंने तुम्हें बुलाया है, वे तुम्हारे घरवाले हैं, इसका क्या प्रमाण है ?"

"प्रमाण मैं क्या दे सकती हूँ। मुझे तो केवल कात्यायनी माई ने आज्ञा दी है।"

"और तुमने बिना कुछ कहे-सुने उस आज्ञा को मान भी लिया है।"

"मुझे जन्म से ही उनके आज्ञा-पालन का अभ्यास रहा है। आज कोई नई बात कैसे कर सकती थी ?"

"पर अब तुम नासमझ नहीं हो। अपने हित-अहित का विचार कर सकती हो।"

"मैं कुछ नहीं कर सकती। वे मेरी संरक्षिका हैं। मुझसे अधिक उन्हें मेरे हिताहित का ध्यान हो सकता है !"

"तो तुम जाने के लिए स्वयं खुशी से तैयार हो ?"

"नहीं विजय, तुम नहीं जानते कि तुम्हारे कारण यह आश्रम और यहाँ का वातावरण मुझे कितना प्यारा हो गया है। इसी तरह इस खिड़की पर बैठकर तुम्हारी प्रतीक्षा में आँखें बिछोते-बिछोते मेरी सारी आयु कट जाती तो संसार में मैं शायद सबसे अधिक सुखी होती। पर देखती हूँ कि देवता मेरे इस सुख से भी ईर्ष्या कर रहे हैं।"

"कुछ समझ नहीं पड़ता कि भाग्य हमें किस ओर ले जाना चाहता है। यह तो तुम जानती ही हो कि तुम्हारे सिवा मेरे पास जीवित रहने के लिए दूसरा सहारा नहीं है। अच्छा यह बता सकती हो कि तुम्हें कहाँ जाना होगा ?"

"जगह का नाम मुझे नहीं मालूम, पर कहीं आगरे के पास जाना होगा ।"

"आगरे के पास !" विजय को इन शब्दों से वैसा ही आश्वासन मिला जैसा किसी अथाह जल में डूबते-उतराते व्यक्ति को पैरों से पृथ्वी छू जाने पर मिलता है। उसने पूछा—"अच्छा, तो जाओगी तुम किस

तरह ? मेरा मतलब यह कि सवारी क्या रहेगी ? साथ कौन जा
किस समय यहाँ से चलोगी ? बीच में कहाँ-कहाँ ठहरोगी ?"

"माता शचीदेवी शायद मेरे साथ जायँगी। हमलोग बह
कल तड़के ही प्रस्थान करेंगे। साथ में हीरा माली गाड़ीवान
जायगा। माई जी ने उससे कह दिया है कि थोड़ी-थोड़ी दूर पर f
करते हुए जाना जिससे यात्रा में अधिक कष्ट न हो।"

"माता शचीदेवी का स्वभाव कैसा है ?"

"बहुत भोला-भाला।"

"तब तो ईश्वर और भाग्य हमारे अनुकूल दिखाई दे र
नन्दा ! आँखें बन्द रहने पर भी हमारी आहुति यज्ञ-कुण्ड के ठीक
में ही गिर रही है।"

"कैसे...?" नन्दा ने कुछ विस्मय के आवरण में अपनी प्रस
को छिपाते हुए कहा।

"ईश्वर की माया है। कल मुझे भी एक आवश्यक कार्य से आ
की ओर जाना है।"

"वह 'आवश्यक कार्य' मैं जानती हूँ। पर तुम्हारा इस तरह
साथ-साथ आगरा चलना क्या उचित होगा ?"

"तुम ठीक नहीं समझीं। यदि तुम न जाती तो भी मुझे अ
आगरे जाना पड़ता। काम ही ऐसा आ पड़ा था।"

"तो तुम आज मुझसे बिदा लेने आये थे ?" सिहरते हुये नन्दा ने पूछ

"पर विधाता का विधान तो देखो कि बिदा तुम्हीं ने माँगी,
नहीं।"

"अर्थात् यह केवल संयोग की बात है कि हमारी यात्रायें एक
दिन और एक ही दिशा की ओर हो रही हैं ?"

"मैं इसे भाग्य ही कहूँगा। अब हमें एक-दूसरे के निकट रहने
अवसर मिलेगा।"

"यह कैसे हो सकता है। मुझे तो ऐसा दिखाई पड़ता है कि तुम मेरे पास तक नहीं आ सकोगे!"

"तुम भी बड़ी भोली हो। बात यह है कि मैं घोड़े पर यात्रा करूँगा। साथ में मेरा विश्वासपात्र साईस रामपाल रहेगा। हम लोग प्रारंभ में ऐसा भाव दिखलायेंगे मानो हम एक दूसरे से अपरिचित हैं। फिर लम्बे सफर में एक ही ओर चलनेवाले मुसाफिरों में जान-पहचान तो हो ही जाती है। इस प्रकार इस संयोग का लाभ उठाने का हमें स्वाभाविक अवसर मिल जायगा।"

"मेरे लिए इतना ही काफी होगा कि बहली के पर्दे की आड़ से तुम्हारा दर्शन करती रहूँ।"

"मैं अपना घोड़ा तुम्हारी बहली के आस-पास रखूँगा। मुझे भी यह अनुभव करके सुख मिलेगा कि मैं तुम्हारे निकट ही हूँ।"

"तुम कितने अच्छे हो मेरे विजय!"

"और तुम नन्दा?"

इसी समय थान के आँगन में कुछ खटका सुनाई दिया। नन्दा ने चट से अपना हाथ खींचकर खिड़की बन्द कर ली। कुछ क्षण तक स्तब्ध होकर वहीं खड़े रहने के बाद विजय धीरे-धीरे नदी की ओर चल दिया।

(३)

यात्रा की पूरी तैयारी करके जिस समय विजयपाल ने घोड़े की रकाब पर पैर रखा, उस समय सूर्य आकाश में नेजे भर ऊँचा चढ़ आया था। तुरन्त ही उसके मन में प्रश्न उठा— 'नन्दा इस समय कहाँ पर होगी?'

मन ने ही उत्तर भी दे दिया—'यदि नन्दा ने सबेरे तड़के ही प्रस्थान कर दिया होगा तो वह निश्चय ही तीन-चार कोस निकल गई होगी और इस समय उसकी बहली फतहपुर के आस-पास कहीं चरमर करती आगे बढ़ती होगी। पर यदि उसे भी चलने में देर हो गई होगी तो अभी वह बड़ी सड़क पर भी न पहुँची होगी।'

दोनों ही बातें संभव थीं—और इन दोनों सम्भावनाओं के बीच विजयपाल यह निश्चय न कर सका कि नन्दा की बहली के साथ-साथ चलने के लिए उसे अपने घोड़े की चाल बढ़ानी चाहिए या घटानी। जो भी हो, वह चलता ही रहा। उसके पीछे-पीछे रामपाल तसली-तोबड़ा और अन्य आवश्यक सामान पीठ पर लादे आ रहा था।

तीन-चार मील तक दोनों में कोई बातचीत नहीं हुई। रामपाल ने समझा, मालिक अपने स्वभावानुसार इस समय जगदंबा का ध्यान कर रहे हैं जैसा कि किसी लम्बी यात्रा के लिए प्रस्थान करते समय वे प्रायः किया करते हैं। इस समय उनसे कुछ भी छेड़-छाड़ करना यात्रा के लिए अमांगलिक हो सकती है।

विजयपाल अपने विचारों में मग्न था। उसका ध्यान न घोड़े की ओर था, न रामपाल की ओर। नन्दा की मधुर स्मृति और अपना अंधकारपूर्ण भविष्य उसके हृदय को इस समय समान रूप से मथ रहे थे। दोनों वस्तुएँ हृदय के निकटतम थीं। दोनों में से किसी एक को भी छोड़ना संभव नहीं। किन्तु इन दो परस्परविरोधी भावनाओं का भार हृदय पर लादे वह कब तक चल सकेगा! इधर नन्दा है—आशा की भाँति मोहिनी और मृदुल, उधर कर्त्तव्य है—भाग्य की भाँति सत्य और कठोर!

मार्ग की परिचित वस्तुएँ एक एक करके पीछे छूटने लगीं। पर अपने ही द्वन्द्व में तल्लीन विजय को उनकी ओर ध्यान देने का अवकाश नहीं था।

धीरे-धीरे वह बड़ी सड़क पर आ गया। यही सड़क आगरे को जाती है। एक बार आँखें उठाकर विजय ने इधर-उधर देखा। कोई बहली नहीं थी। फिर उसने ध्यान से सड़क को देखा। अनेक बहलियों के पहियों के निशान बने थे जिनमें से कुछ ताजे भी थे। इन्हीं में से कोई निशान नन्दा की बहली का भी हो सकता है—या फिर, कौन जाने, वह अभी तक आई ही न हो!

मन मारकर विजय ने घोड़े की रास पश्चिम की ओर मोड़ी। कुछ ही दूर आगे सोलह कहार एक तामजान को कंधों पर उठाये चले जा रहे थे। अगल-बगल दो-दो सशस्त्र अश्वारोही चल रहे थे। किसी गाँव-ठाकुर के की सवारी प्रतीत होती थी। जान-पहचान करना इस समय विजय को अभीष्ट न था। उसने घोड़े की रास कुछ और ढीली कर दी। घोड़ा और धीमा चलने लगा।

मकरन्दनगर से कुछ आगे चलने पर अचानक, दूर पश्चिम में, किसी बहली की लाल छतरी की झलक दिखाई दी। विजय के हृदय में आशा का संचार हुआ। एक बार मन में आया कि घोड़े को एड़ लगाकर बहली को पकड़ लिया जाय। उसने पीछे मुड़कर रामपाल

क़ो देखा। लगभग दो सौ कदम के फासले पर वह पीछे पी
रहा था। रामपाल की धीमी चाल पर उसे बड़ी झुँझलाहट
फिर अनावश्यक एड़ जमाकर और लगाम खींचकर उसने घ
गर्म किया और जब घोड़ा भाग खड़ा होने के लिए उताव
उठा तब उसे बलपूर्वक रोकते हुए एक कोड़ा और जमा दिया
दार ताजी इस तिरस्कार को न सहकर दहाने पर भरसक जोर
माई करने लगा। रुके हुए उद्वेग से उसकी छाती फैल गई औ
के एक ओर का तस्मा टूट गया।

रकाब से पैर निकालकर विजय चट घोड़े पर से कूदकर
पर खड़ा हो गया और क्रोधपूर्ण दृष्टि से कभी रामपाल और
घोड़े की ओर देखने लगा। घोड़ा उत्तेजना की चरम सीमा पर
कर दहाने का शासन अस्वीकार कर रहा था। रामपाल ने दूर
घोड़े को आवाज देते हुए अपनी चाल बढ़ाई और क्षण भर में ही
आ पहुँचा।

"बड़ा पाजी जानवर है!" विजयपाल ने कहा।

"दो महीने से बँधा रहा है, मालिक," रामपाल ने सफाई देते
कहा—"दो मंजिल चलने के बाद ठीक हो जायगा।"

"अभी तो यह बहुत परेशान कर रहा है। देखो, इसने भड़ककर
का तस्मा तोड़ डाला है।"

"मैं ठीक किये देता हूँ, सरकार," कहते हुए रामपाल ने घोड़े
रास थाम ली और चुमकारते हुए उसे सड़क के एक किनारे ले ग
विजयपाल उससे कुछ दूर हटकर खड़ा हो गया।

"क्या इसके साथ-साथ हमें भी अब पैदल ही चलना होगा?"

"नहीं मालिक, सवार होकर चलिए। फिर बिगड़े तो दो-
मील की दौड़ लगा दीजिये। मैं ठिकाने पर आ मिलूँगा।" तस्मे
सँभालकर विजयपाल के हाथ में घोड़े की रास देते-देते रामपाल

कहा। विजयपाल के पीठ पर पहुँचते ही घोड़ा फिर बिगड़ा। इस बार विजयपाल ने उसकी रास उठा दी और एड़ का इशारा देते हुए कहा—"तो मैं चल रहा हूँ।"

"चलिये, मैं आ जाऊँगा।" रामपाल ने अर्ध स्पष्ट स्वर में कहा।

घोड़ा हवा से बातें करने लगा। बहली एक कोस से अधिक दूर नहीं पहुँची थी। कुछ ही देर बाद वह दिखाई पड़ने लगी।

विजय ने घोड़े को चुमकारा और रास को कुछ नीचा गिराया। घोड़े ने चाल धीमी कर दी। बहली के पास तक पहुँचते-पहुँचते वह गाम पर आ गया। इससे पहले कि विजय की उत्सुक दृष्टि बहली के पर्दे को भेदकर नन्दा को उल्लसित दृष्टि से जा मिले, बहली का पर्दा उठ गया और दो धुंधली आँखों ने घूरकर विजय की ओर देखा। फिर सुनाई पड़ा—"क्या हुक्म है।"

बहली का सवार शायद किसी गाँव का ठाकुर था और एक अपरिचित अश्वारोही के इस प्रकार बहली के पास आकर सहसा रुक जाने से आतंकित हो उठा था।

विजय ने इधर-उधर झाँककर देखा कि उसके सिवा बहली में दूसरा कोई नहीं है। झेंपते हुए उसने उत्तर दिया--

"जी, कोई बात नहीं है। घोड़ा जरा बिगड़ रहा था और उसे रास्ते पर लाने के लिए ही मैंने थोड़ा-सा छोड़ दिया था!"

"दोनों का गरम खून जो ठहरा!" वृद्ध ने थोड़ा मुस्कराकर कहा। उत्तर में विजय ने भी मुस्करा दिया।

गर्म घोड़े के लिए बहली के पीछे-पीछे चार कदम चलना भी कठिन था। वह बार-बार दाँतों से दहाने को दाब आगे निकल जाने की चेष्टा कर रहा था। विजय के लिए भी इस बहली में कुछ आकर्षण न था। उसने घोड़े की रास कुछ ढीली कर दी। कुछ ही क्षणों में घोड़ा बहली को पीछे छोड़, आगे निकल गया।

. दूर-दूर तक दृष्टि फेंककर विजय ने देखा, दूसरी बहली क
कोई चिह्न नहीं था। इक्के-दुक्के दिखाई पड़नेवाले राहगीरों से भ
की बहली का पता पाना असंभव था क्योंकि विजय को उस बह
ऐसी कोई विशेषता ज्ञात नहीं थी जिसके कारण राहगीर उसे
सामान्य बहलियों से पृथक् पहचान सकते।

उसने एक बार पीछे की ओर मुड़कर देखा। जिस बहली क
अभी-अभी पीछे छोड़ आया था, वह उत्तर की ओर जाने के
कच्ची राह पर मुड़ गई थी। रामपाल का कहीं पता न था। घो
चुमकारकर उसने सड़क के किनारेवाले पाकर की घनी छाँह में
किया और स्वयं उतर पड़ा। नन्दा आगे गई है, या पीछे है-
प्रश्न उसके मस्तिष्क को आन्दोलित कर रहा था।

दोपहरी हो चुकी थी, जाड़े की ऋतु होने पर भी आकाश
था। हवा भी नहीं चल रही थी, इसलिये धूप में कुछ तेजी थी।
कन्नौज से छः कोस निकल आया था। पर नन्दा की बहली का इ
तक कहीं पता नहीं था।

अगले पड़ाव पर रुकने का निश्चय कर विजयपाल फिर घोड़े
सवार हो गया। इस बार तेज चलने का कोई कारण नहीं थ
गुरसहायगंज की सराय वहाँ से केवल दो कोस दूर थी। घंटे भर
वहाँ जा पहुँचेगा। नन्दा की बहली पहली मंजिल में उस पड़ाव
आगे नहीं जा सकती। तीन कोस कच्ची और आठ कोस पक्की सड़
के ग्यारह-बारह कोस की मंजिल बहली के लिए बहुत होती है
गुरसहायगंज की सराय में रुककर सम्भव है नन्दा उसकी प्रतीक्षा करे

दिन ढलने से पहले ही वह गुरसहायगंज की सराय पहुँच गया
इमाम को अपने ठहरने की व्यवस्था करने के लिये उसने आदेश
दिया और फिर उसकी नजर सराय में पड़ाव डालनेवाली बहलियों
से किसी एक को खोज निकालने की व्यर्थ चेष्टा करने लगी।

सराय के प्रबन्धक के द्वारा घोड़े की उचित व्यवस्था हो जाने पर उसने एक बार सराय के सहन में पूरा चक्कर लगाया और अन्वेषक की दृष्टि से उसके तीन ओर बनी कोठरियों में ठहरे मुसाफिरों को देखा। नन्दा—जैसी आकृति वहाँ कोई नहीं थी। न गाड़ीवानों के झुण्ड में उसे हीरा माली ही कहीं दिखाई दिया। निराश हो वह सराय फाटक पर आकर खड़ा हो गया और चिंतापूर्ण दृष्टि से पूर्व की ओर देखने लगा।

इसी समय पसीने और थकान से लथपथ रामपाल आता दिखाई दिया। विजय को सराय के द्वार पर खड़ा देखकर उसने सन्तोष की एक साँस ली और कहा—"मालिक, अभी तो पहर भर दिन बाकी है। चार कोस और चला जा सकता है।"

"पर आगे कोई अच्छा पड़ाव नहीं है, यही सोचकर यहाँ ठहर गया। यहाँ घोड़े के लिए दाना-घास भी ठीक से मिल सकेगा और हम लोगों को भी आराम मिलेगा।" कहते हुए विजयपाल ने उस कोठरी की ओर संकेत किया जो उनको ठहरने के लिए दी गई थी। रामपाल अन्दर चला गया। विजयपाल फिर भी वहीं खड़ा रहा।

घोड़े को सुहलाकर और जल पिलाकर, ठहरने की कोठरी में सफाई करने के बाद पलँग आदि लगाकर, जब रामपाल विजयपाल के पास आया और जलपान करने के लिए कहने लगा तब उसे ध्यान आया कि वह कितनी देर से इस प्रकार सराय के फाटक पर खड़ा-खड़ा सड़क की ओर देखता रहा है। उसे अपने ऊपर बड़ी झुँझलाहट आई। रामपाल भी जाने क्या सोचता होगा!

"ओह, ठीक!" विजयपाल ने जैसे चौंककर कहा और रामपाल के साथ भीतर चला गया। हाथ-पैर धोने के बाद जलपान करने लगा।

इसी समय एक बहली चरमर करती सराय में आई। विजयपाल की अन्वेषक आँखों को हीरा माली के पहचानने में देर न लगी।

फिर भी वह स्थिर भाव से बैठा जलपान करता रहा। अपने
की उत्सुकता वह रामपाल पर प्रकट होने देना न चाहता था
हीरा माली ने बैलों को अलग बाँधकर सवारियों को उता
लिये पर्दा उठाया। एकाएक विजय की आँखें उस ओर घूम
उसने देखा, हिम की तरह श्वेत वस्त्रों में सज्जित नन्दा
स्वाभाविक फुर्ती के साथ उतरकर बहली के एक किनारे खड़ी हो
अगले ही क्षण उसने सहारा देकर एक दूसरी स्त्री को नीचे उता
दूसरी स्त्री अपने श्वेत रंग, श्वेत परिधान और धवल केशों के क
साक्षात् गौरी-सी लगती थी।

जलपान के बाद रामपाल रसोई के आयोजन में व्यस्त हो
और विजयपाल बाजार देखने के बहाने सराय से बाहर चला ग
बाजार में उसकी भेंट हीरा माली से हो गई। उसने बताया कि न
को आगरे के सलीमशाह के महल में छोड़कर वह देवी जी के
फिर लौट आयगा।

रात भर विजयपाल नन्दा की आगरा-यात्रा के सम्बन्ध में त
तरह की बातें सोचता रहा। पर उसकी कुछ समझ में न आय
सबेरे जिस समय विजय की आँखें खुलीं, सराय के आँगन में का
धूप फैल चुकी थी और दो-एक मुसाफिरों को छोड़कर, जो शायद ब
जारे थे, शेष सब जा चुके थे। इसी समय रामपाल ने उपस्थित हो
पूछा—"मालिक, क्या घोड़ा तैयार किया जाय?"

"नहीं, अभी नहीं!" विजयपाल ने कहा और एक सरसर
निगाह अपने सामान पर डाली जो यथास्थान सुरक्षित रखा था। फि
वह अँगड़ाई लेकर उठ खड़ा हुआ और बाहर सहन में आ गया
वहाँ जल, गमछा आदि सजा कर रखा हुआ था।

यात्रा आरंभ करने में विजय को ढील-ढाल करते देखकर राम
पाल को आश्चर्य हो रहा था। किन्तु उसने कुछ कहा नहीं। वह
चुपचाप अपने मालिक के तैयार होने की प्रतीक्षा करने लगा।

(४)

विजयपाल नन्दा की बहली के रवाना होने की प्रतीक्षा कर रहा था। वह सोच रहा था कि पहले नन्दा आगे चली जाय। इसके बाद वह उसे पकड़ लेगा। बहली के चलने के बाद विजयपाल चलने के लिए तैयार हुआ। आज घोड़ा कल की अपेक्षा अधिक सीधा था। पर एक मील चलने के बाद एक ऊँटगाड़ी को देखकर, जो पश्चिम से आ रही थी, वह असाधारण रूप से चञ्चल हो उठा और उछल-कूद करने लगा। उसकी यह गति विजयपाल को पसन्द नहीं आई और मुख पर क्रोध का भाव लाकर वह कहने लगा—"शैतान का बच्चा, क्या राह भर इसी तरह परेशान करता रहेगा?"

"अभी एक ही मंजिल तो चला है, मालिक। नया घोड़ा है। दो-एक मंजिल चलने पर सीधा हो जायगा।" रामपाल ने कहा।

"पर तब तक तो मुझे थका डालेगा! धीरे से चलना तो इसे आता ही नहीं। हमेशा भागना चाहता है।"

"तो चलिए न आप, मैं भी धीरे-धीरे आ लगूँगा।"

रामपाल की ओर से इतना संकेत विजयपाल के लिए काफी था। सवार के इशारे पर घोड़े ने अपनी चाल बढ़ा दी और कुछ ही देर में वह रामपाल की नजरों से ओझल हो गया।

कुछ देर बाद विजयपाल ने देखा, नन्दा की बहली सड़क की पटरी पर एक खड्ड में फँसी खड़ी है और हीरा माली उसे निकालने के प्रयत्नों

मे थककर मानो किसी दैवी सहायता की प्रतीक्षा में सड़क पर खड़ा शून्य दृष्टि से देख रहा है। उसकी ओर देखकर विजयपाल मन ही मन मुस्कराया और बहली के पास जाकर उसने अपना घोड़ा रोक दिया। स्वर को बदलकर फिर उसने कहा—"पहिया फँस गया है क्या?"

"हाँ मालिक, हाथी को रास्ता देने के लिए बैल पटरी की ओर चले थे। इधर नीचे खड्ड था। उसमें पहिया फँस गया। बैल कच्ची काट चुके हैं। अब जुए के पास नहीं जाते।" हीरा माली ने उत्तर दिया।

"इन हरामी मुगलों को सड़कों की भी परवाह नहीं है। देखो न, जाने कब से सड़क की मरम्मत नहीं कराई गई। जगह-जगह गढ़े पड़ गये हैं। सुनते हैं, कुछ आगे चलकर सड़क एकदम टूट गई है। मीलों कच्ची में चलना होता है। अच्छी-अच्छी जोड़ियाँ घुटने टेक देती हैं।"

कहते हुए विजयपाल देखने लगा कि गाड़ी के भीतर उसके कथन की कुछ प्रतिक्रिया होती है, या नहीं। पर उस ओर बिलकुल शान्ति रही। यह देखकर उसने हीरा माली को सम्बोधित करते हुए फिर कहा—"यही हाल रहा तो आगे निभाना कठिन हो जायगा। कहाँ तक पहुँचाना है?"

"आगरे तक।"

"और आ कहाँ से रहे हो?"

"कात्यायनी माई के थान से।"

"गाड़ी को खाली करने पर शायद बैल जोर लगाकर निकाल ले जायँ। अगर जरूरत समझो तो एक पहिये पर मैं जोर भरे देता हूँ।"

विजयपाल घोड़े से उतर पड़ा। घोड़ा उसने बहली की पींजनी से अटका दिया और बाँहें समेटकर फँसे हुए पहिये की ओर जोर लगाने के लिये खड़ा हो गया। इसी समय दोनों सवारियाँ बहली से उतरकर एक ओर खड़ी हो गईं।

विजयपाल की सहायता से बैल बहली को खड्ड से बाहर खींच ले गये। दोनों सवारियाँ फिर उस पर चढ़ने के लिए बढ़ीं। शचीदेवी ने इसी समय प्रशंसासूचक दृष्टि से विजयपाल की ओर देखा। उत्तर में विजयपाल ने दोनों हाथ जोड़कर मस्तक झुका दिया। अभिवादन को स्वीकार करते हुए देवी ने कहा—"आपने बड़ी कृपा की, नहीं तो जाने कब तक हम लोगों को इस संकट में पड़े रहना पड़ता।"

अत्यधिक नम्रता और शिष्टाचार दिखलाते हुए विजयपाल ने उत्तर दिया—"जी, इस सड़क पर ऐसी घटनायें प्रायः होती रहती हैं। और सड़कें भी क्या करें, आठ-दस साल हो गये, उनकी मरम्मत की ओर ध्यान नहीं दिया गया। सुनता हूँ, राह में चोर बटमार इतने बढ़ गये हैं कि मुसाफिरों का मील दो मील चलना मुश्किल कर देते हैं।"

बहली उस समय तक चल दी थी। विजयपाल भी घोड़े पर सवार होकर साथ चलने लगा। उससे बातें करने के लिए शचीदेवी ने एक ओर का पर्दा उलटते-उलटते कहा—"राज-परिवर्तन प्रजा के लिए कठिन परीक्षा का समय होता है।"

"वह तो देख ही रहा हूँ। पर ऐसे समय में आपका अकेले सफर पर चल देना किसी आवश्यक कार्यवश ही हो सकता है?"

"धर्म के मार्ग में बाधायें प्रायः नहीं सतातीं।" शचीदेवी ने कुछ मुस्कराकर कहा। उनके चेहरे पर आत्म-विश्वास का तेज झलक रहा था।

"सत्य है, पर अधार्मिकता के खड्ड पड़ जाने पर कुछ समय के लिए धार्मिकों को भी गति भ्रष्ट हो जाना पड़ता है।"

"ऐसे समय भगवान् हमारी सहायता करने के लिए किसी धर्मबन्धु को भेज देता है।" शचीदेवी ने अत्यन्त सहज भाव से उत्तर दिया। पर इस सीधे सादे और सरल उत्तर से चारों पथिकों के ओंठों पर मुस्कराहट दौड़ गई और नन्दा ने अभिप्राय-सूचक दृष्टि से विजयपाल की ओर देखा।

इसके बाद कुछ क्षण तक दोनों ओर से मौन रहा। यह मौन विजयपाल के लिए सचमुच एक परीक्षा थी। वह निश्चय न कर सका कि बहली के साथ-साथ उसका इस प्रकार चलना शचीदेवी के मौन धारण कर लेने के उपरान्त भी उचित होगा या नहीं। एक बार उसके मन में आया कि घोड़े को बढ़ाकर आगे निकल जाय और फिर वहाँ किसी बहाने रुककर फिर बहली के साथ हो जाय, पर उसका ऐसा करना भी कहीं शचीदेवी के मन में सन्देह उत्पन्न न कर दे और...!

वह इसी दुविधा में पड़ा था कि शचीदेवी ने कहा—"आप किस क्षत्रिय-वंश को विभूषित करते हैं?"

"मेरे क्षत्रिय होने का अनुमान आपने कैसे किया?" विजयपाल ने किञ्चित् आश्चर्य प्रदर्शन करते हुए प्रश्न किया।

"आपके वेश से, आपकी आकृति-प्रकृति से।"

"आपकी दृष्टि बड़ी पैनी है। मैं क्षत्रिय ही हूँ और मेरा घर आपके स्थान से अधिक दूर नहीं है।"

"आपके संरक्षण का लाभ हम लोगों को कहाँ तक प्राप्त हो सकता है?"

"जैसी आपकी आज्ञा हो। वैसे जाना तो मुझे भी आगरे तक ही है।"

"यदि साथ-साथ चले सकें तो...!"

"अवश्य! मेरे योग्य जो सेवा हो, उसके लिए तैयार हूं।"

इसी समय एक धक्के के साथ बैल फिर रुक गये। बहली का पहिया सड़क की एक खाँच में जाकर ठहर गया था। सड़क के खराब हो जाने के कारण बैलगाड़ियाँ इस स्थान को बचाकर निकल जाती थीं। पर सवारियों की बातचीत में दिलचस्पी लेने के कारण हीरा माली ने उधर ध्यान न दिया था।

"मालूम पड़ता है, अब पग-पग पर यही दशा होगी।" शचीदेवी ने कुछ खिजलाहट के साथ उतरने का प्रयत्न करते हुए कहा।

"नहीं-नहीं, आप कष्ट न कीजिये। मैं पहिया उठाए देता हूँ।"

विजय तुरन्त घोड़े से कूदकर पींजनी में जोर लगाने के लिए पहुँच गया। इस बार नन्दा की ओर का पहिया अटका था। विजय को जोर लगाते देखकर नन्दा की आँखों में आँसू भर आये। शचीदेवी इस समय हीरा को देख-भालकर बैलों को हाँकने के लिये झिड़क रही थीं। इसी बीच एक कागज बहली पर से विजय के पैरों के पास गिर पड़ा।

गाड़ी के खड्ड से निकलकर चल देने पर विजय ने धीरे से कागज उठा लिया और तंग ठीक करने के बहाने घोड़े की आड़ में खड़े होकर उसे खोलकर देखा। नन्दा का पत्र था। पिछली रात सराय में उसने किसी प्रकार लिखा था। विजय ने पत्र को पढ़कर अपने हृदय से लगाया और फिर तहाकर भीतर की जेब में रख लिया। इसके बाद घोड़े को तेज कर वह बहली के पास आ गया।

घोड़े की टाप की आहट सुनकर शचीदेवी ने कहा—"देखती हूँ, आपकी सहायता की आवश्यकता हमें पग-पग पर पड़ेगी।"

"मैं बचन दे चुका हूँ। आप निश्चिन्त रहें।"

"अगले पड़ाव पर पास ही ठहरना ठीक रहेगा। अगर आपको आपत्ति न हो तो......!"

"जैसा आप ठीक समझें।" विजयपाल ने कुछ निरपेक्ष भाव से उत्तर दिया।

अपने पत्र में विजय ने क्या लिखा और क्या नहीं, इसका विव
दे सकना कठिन है। नंदा की उन गिनी-चुनी पंक्तियों के उत्तर में, जि
जाने उसने कितने प्रयत्न से शचीदेवी की आँख बचाकर लिखा थ
स्वयं उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या लिखे और क
नहीं। वह चाहता था कि नन्दा पर अपनी पूरी परिस्थिति स्पष्टतः
प्रकट कर दे। भयानक पथ पर उसने पाँव रखा है। उसके जीवन व
खतरा हर घड़ी बना रहता है। ऐसी स्थिति में नन्दा के हृदय
अपने प्रति मोह का संचार करना क्या ठीक होगा। सरल, एकनिष्
और भोली-भाली बालिका को मेरी असली हालत का बोध हो जा
पर कितना दुःख होगा।

यह विचार रह-रहकर उसके हृदय को कुरेदता था। पर दूसरे
ओर नन्दा से रहित अपने जीवन की कल्पना तक कर सकना उसके
लिए कठिन था। इसी दुविधा में, भावों की इसी उलझन में, रात भर
में उसने न जाने कितने पत्र लिखे और लिखकर फाड़ डाले। अन्त में
केवल एक छोटे से कागज पर यह लिखकर ही संतोष कर लिया—
"प्यारी नन्दा, आज तुम्हारे साथ यात्रा करते हुए मैं सचमुच सुखी
हूँ। यदि हमारा यह सुख चिरस्थायी हो सकता, यदि हम यों ही साथ-
साथ, एक दूसरे से अलग-अलग मगर फिर भी पास रहते हुए, यात्रा
करते रहते, और हमारी यात्रा हमारे जीवन जैसी ही लम्बी होती, तो
हम कैसे सुखी होते! पर इस यात्रा का अन्त हर पड़ाव के बाद निकट

आता जाता है और इसके साथ-साथ मेरी चिन्ता भी बढ़ती जाती है। नन्दा, मैं तुम्हें कैसे विश्वास दिलाऊँ कि तुम्हारा पवित्र प्रेम मुझे कितना बल देता है! मैं इतना अभागा हूँ कि अपनी भाग्य-लक्ष्मी के निकट रहकर भी उसे पूरी तरह अपना नहीं सकता।"

मार्ग में और कोई उल्लेखनीय घटना नहीं हुई। रामपाल और शचीदेवी की निगाहें बचाकर विजयपाल और नन्दा एक दूसरे से बराबर पत्रों और लुकी-छुपी दृष्टियों का आदान-प्रदान करते रहे, यद्यपि उनके इस आदान-प्रदान में आन्तरिक व्याकुलता और भविष्य की चिन्ता के प्रकाशन के अतिरिक्त और कुछ न होता था। नन्दा के भावों में अपने भावी जीवन के साथ विजयपाल का सम्बन्ध स्थापित कर सुखपूर्ण जीवन का ताना-बाना बिनने की चेष्टा रहती थी और विजय के भावों में निराशा और अंधकारपूर्ण भविष्य की चिंता दिखाई देती थी। नन्दा की समझ में नहीं आता था कि विजय उसकी सुखोल्लास की कल्पना में भाग क्यों नहीं लेता। वह कभी-कभी इस निष्कर्ष पर पहुँचती कि शायद विजय यह सोच रहा है कि नन्दा आगरा पहुँचकर वहाँ के सुख विलास में डूब जायगी और फिर उसे मेरी याद न रहेगी। इसी लिये नन्दा अपने संकेतों में विजय को बराबर यह विश्वास दिलाने का प्रयत्न करती थी कि उसका संभाव्य कुटुम्ब कैसा ही ऐश्वर्यशाली और वैभवपूर्ण क्यों न हो, वह विजय को अपने हृदय से कदापि दूर न कर सकेगी।

विजय की परिस्थिति दूसरी ही थी। यदि नन्दा उसके प्रति कुछ उपेक्षा-भाव दिखाती तो शायद उसके हृदय की चिन्ता की जलन बहुत कुछ कम हो जाती। पर वस्तुस्थिति सर्वथा विपरीत थी। अपनी ओर से वह नन्दा को साफ जवाब नहीं दे सकता था, न वह उसके प्रेम का पूर्ण रूप से उपभोग ही कर सकता था। उसकी दशा सर्वथा उस अपराधी जैसी थी जिसे कल फाँसी होने से पूर्व अपनी प्रेयसी से मिलने दिया जा रहा हो—एक ऐसी प्रेयसी से जिसे अपने प्रेमी की आगामी

विपद् की कुछ भी सूचना न हो और जो उसे प्रसन्न करने का प्रयत्न कर रही हो, उसे अपने प्रेम का पूरा-पूरा विश्वास दि चाहती हो। उधर प्रेमी की स्थिति यह थी कि न तो वह उसके आ सनों से आश्वस्त हो रहा था और न अपनी विपद् की सूचना उसके क्षणिक आनन्द में विघ्न डालने का साहस कर सकता जैसे-जैसे नन्दा उसकी उदासी को दूर करने का प्रयत्न करती, वि और भी उदास होता जाता था।

पाँच-छः दिन तक एक साथ यात्रा करते रहने के कारण वि शचीदेवी से अच्छी तरह परिचित हो गया। यात्रा की एकरसता भंग करने के लिए जब कभी घोड़े से उतरकर वह पैदल चलने लग तब शचीदेवी भी बहली से उतर आतीं और उसके साथ बातें कर बहुत दूर तक चली जातीं। नन्दा को भी अब विजय के साथ बातच करने में संकोच दिखाने का कोई कारण नहीं रह गया था। शचीदे की भाँति वह भी कभी-कभी बहली से उतरकर विजय के साथ-स पैदल चलने लगती थी। इसी बीच दोनों में कुछ बातचीत भी हो जा थी जिसका आरम्भ प्रायः नन्दा की ओर से होता था और विज केवल 'हाँ' या 'न' में उत्तर देकर उसे यथासंभव संक्षिप्त करने चेष्टा करता था।

आगरा केवल एक पड़ाव दूर रह गया था। नन्दा और विज साथ-साथ पैदल चल रहे थे। नन्दा ने डरते-डरते कहा—"तुम्हार उदासी बेकार है!"

"संभव है।" विजय ने उत्तर दिया।

"मेरा विश्वास करते हो?"

"अपने से अधिक।"

"फिर सन्देह क्यों?"

"मैं भविष्य को नहीं जानता।"

"मुझे विश्वास है कि वह मंगलमय है।"

"भगवान् करे ऐसा ही हो।"

"तुम मुझसे कुछ छिपा रहे हो!"

"पर उसके जानने से तुम्हें कुछ लाभ भी न होगा।"

"फिर भी मैं जानना चाहूँगी।"

"इतना तो जानती ही हो कि कल हम लोग अलग हो रहे हैं।"

"क्या फिर कभी न मिलने के लिए?"

"शायद!"

"नहीं विजय, ऐसा नहीं हो सकता। तुम्हारे मन का सन्देह मैं जान गई हूँ। मैं तुम्हारे चरणों की शपथ खाकर कह सकती हूँ कि इस जीवन में मुझे तुमसे कोई शक्ति अलग नहीं कर सकती।"

"उत्तेजित न हो नन्दा। मैं तुम्हारे ही भविष्य-सुख की चिन्ता कर रहा हूँ।"

"मैं सच कहती हूँ। कात्यायनी माई ने भी और शचीदेवी ने भी मुझे बार बार विश्वास दिलाया है कि जहाँ मैं जा रही हूँ वहाँ किसी प्रकार का अभाव नहीं है और किसी भी प्रकार के सांसारिक ऐश्वर्य की मुझे कभी न रहेगी। फिर भी विजय, विश्वास मानो, वह सब ऐश्वर्य, वह सब सुख, मेरे प्राणों को भुलावे में नहीं रख सकता। मेरा जीवन तुम्हारे बिना अपूर्ण रहेगा। मैं अनुभव करूँगी कि कात्यायनी माई के थान में मेरा जीवन उससे अधिक पूर्ण और अधिक सुखी था—क्योंकि वहाँ तुम थे।"

"भूत काल की तुलना भविष्यत् से नहीं वर्त्तमान से करनी चाहिए।"

"पर मुझे अपने हृदय पर विश्वास है। तुम मुझे अपने साथ ले चलो। मैं उस सारे भविष्यत्-ऐश्वर्य पर लात मारती हूँ। तुम्हारे साथ मजूरी करके पेट भरते हुए भी मैं अधिक सुखी रह सकूँगी।"

"इसकी जरूरत नहीं पड़ेगी नन्दा। मेरी पैतृक सम्पत्ति ह
का जीवन पार लगाने के लिए काफी होगी।"

"फिर चिन्ता क्या है! मैं तुम्हें वचन देती हूँ कि..."

"यह सब तो ठीक है, लेकिन..."

"लेकिन क्या?"

"यही कि मेरा भविष्य मेरे हाथ में नहीं है। वह दूसरे
में है।"

"किसके हाथ में?"

"दैव के, भाग्य के!"

"कहीं इसका मतलब यह तो नहीं कि तुम्हारा सम्बन्ध
पक्का हो चुका है?" भावों में कुटिलता लाते हुए और पै
अनावश्यक भार के साथ भूमि पर रखते हुए नन्दा ने प्रश्न कि

"नहीं नन्दा, ऐसा नहीं है। यह तो मैं स्वप्न में भी नहीं
सकता।"

"पता नहीं क्यों, तुम सदा मुझे यों ही उलझन में डाले रहते
मैं मान सकती हूँ कि वर्तमान अंधकारपूर्ण है। पर मैं आशाव
हूँ। मैं भविष्य को उज्ज्वल देखती हूँ। अभी हमें बहुत दिन जीन
अभी हमारी नई उम्र है। मन में उछाह है, उमंगें हैं। हम एक
को प्राणों से भी अधिक प्यार करते हैं। यदि हम कठिनाइय
सामना नहीं कर सकते तो फिर कौन करेगा। हममें इतना साहस
धैर्य होना चाहिए कि अपना मार्ग बना सकें। समझ में नहीं आ
मुझे तुम बार-बार क्यों हतोत्साह करना चाहते हो—खासकर
मौके पर जब कि मैं स्वयं...!"

"मैं तुम्हारी बातें ठीक से समझ रहा हूँ, नन्दा!" विजय ने
में ही कहा—"मुझे तुम्हारे ऊपर पूरा विश्वास है। मैं जानता हूँ

तुम मुझसे कुछ कहलाना चाहती हो। पर मैं कहूँ भी क्या ? आज का दिन मेरा है; शायद कल का भी हो सकता है। यदि अपने भविष्यत के दस-पाँच वर्ष भी इसी प्रकार मेरे अधिकार में होते तो मैं तुम्हें वचन दे देता। तुम्हें लेकर वहाँ चलता जहाँ केवल हम दो होते—जन-कोलाहल से दूर, प्रेम और परस्पर-विश्वास के पवित्र वातावरण में। पर लाचारी है। परसों सवेरे ही वह क्षण आ रहा है, जब मुझ पर स्वयं मेरा अधिकार न रहेगा।"

"क्यों नहीं तुम भी मेरे साथ ही चलते ? मैं सारी लज्जा और संकोच छोड़कर अपने पति के रूप में तुम्हारा परिचय अपने कुटुम्बियों को दे दूँगी और मुझे विश्वास है कि वे लोग अपने पूज्य पाहुन के रूप में तुम्हारा स्वागत करेंगे। फिर अगर मेरे इस अपराध के कारण वे मुझे ग्रहण करना अस्वीकार भी कर दें तब भी कुछ बुरा न होगा।"

"नहीं नन्दा, मेरा संकोच दूसरे प्रकार का है। और जब तक मैं उससे मुक्ति न पा जाऊँ, निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कह सकता।"

"प्यारे विजय, देखती हूँ कि तुम्हारी बातें मुझे पागल बनाकर छोड़ेंगी। ऐसा प्रतीत होता है, भेद की बात तुम कभी न बतलाओगे। अच्छा, कृपा करके यही बता दो कि मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कब तक कर सकती हूँ ?"

"इसका निर्णय तुम्हीं ठीक कर सकती हो।"

"मैं जीवन भर प्रतीक्षा करने को तैयार हूँ।"

"इसकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी। यदि परमात्मा ने चाहा तो..."

इसी समय विजय ने देखा कि शचीदेवी ने दोनों को अधिक पिछड़ा जानकर बहली रुकवा दी है। अगला पड़ाव भी अधिक दूर नहीं है। नन्दा को चुप रहने का संकेत करते हुए वह कदम बढ़ाकर चलने लगा। नन्दा ने भी उसका साथ दिया। चलते-चलते पूरा

साहस समेटकर नन्दा ने अन्तिम बार कहा—"क्या मैं समझूँ कि मेरी प्रार्थना व्यर्थ नहीं जायगी?"

"मैं प्राणपण से उसे पूरा करने की चेष्टा करूँगा।"

बहली के निकट पहुँचने पर शचीदेवी ने कहा—"संभव है, इस पड़ाव पर नन्दा के कुटुम्बियों में से कोई उसके स्वागत के लिये आया हो। इस लिये अब आपका हम लोगों के साथ रहना ठीक न होगा!"

"ठीक है।" कहकर घोड़े पर सवार हो विजयपाल आगे चल दिया।

(६)

शचीदेवी ने व्यर्थ ही विजयपाल का साथ छोड़ा। पड़ाव पर नन्दा के स्वागतार्थ कोई न मिला। वह रात भी पिछली रातों जैसी ही बीती। कोई असाधारण बात नहीं हुई। हाँ, एक अन्तर अवश्य रहा। वह यह कि विजयपाल पड़ाव से दूर ही रहा। वह या तो शचीदेवी की इस आशंका से खिन्न हो घोड़ा बढ़ाकर अगले पड़ाव को चला गया, या फिर बस्ती में किसी और के द्वारे टिक रहा। जो भी हो, नन्दा को यह जरा भी अच्छा न लगा। जीवन में पहली बार उसे शचीदेवी पर कुछ क्रोध भी आया। पर उसका वश क्या था। उस रात उसने कुछ खाया-पिया नहीं और सिरदर्द का बहाना कर शाम से ही अपने बिस्तर पर पड़ रही।

शचीदेवी की रात भी निश्चिन्तता से नहीं कटी। विजय के साथ न रहने से सामान और नन्दा दोनों की रक्षा की जिम्मेदारी अकेले उन्हीं पर आ पड़ी थी। फिर कल आगरे पहुँच जाना भी था। आदेशानुसार वहाँ किसी की संरक्षता में नन्दा को छोड़कर उन्हें फिर अपने स्थान को लौट जाना था। नन्दा का भविष्य क्या होगा, आश्रम में बाल्य-काल से पली हुई यह भोली-भाली मृगी अपने संभावित कुटुम्ब में हिल-मिल सकेगी भी या नहीं, इस पड़ाव पर उसके स्वागत का कोई प्रबन्ध न होने का कारण क्या है, क्या आगरे में उसके लिए किसी को कोई विशेष चिन्ता नहीं है, यदि यह सत्य हुआ तो क्या नन्दा को अपने साथ वापस ले आना ठीक रहेगा, यदि नन्दा

वहाँ अकेले न रहना चाहे तो क्या मेरा उसके सन्तोष के लिए दिर्न आगरे ठहर जाना उचित होगा, आदि अनेक प्रश्न रात उनके मन में चक्कर काटते रहे।

नन्दा भी उस रात सो न सकी। शचीदेवी पर तो उसे क्रोध ही, विजय पर भी कम क्रोध नहीं था। उससे बिना कुछ कहे उनका चुपचाप चल देना कदापि उचित नहीं था। उसे यह भी बताया कि आगे कब और किस प्रकार भेंट हो सकेगी। अपरि स्थान में क्या उसे बार-बार उनकी याद नहीं आयेगी! वह जित ही अपने भविष्य के विषय में सोचती, उसकी खिजलाहट उतनी बढ़ती जाती।

नन्दा ने एक बार सोचा—जरा बाहर निकलकर सराय के स में कुछ देर तक टहला जाय जिससे दिमाग कुछ ठंडा हो जाय अ वह कुछ निर्णय करने में समर्थ हो सके। पर उसे इस तरह सर्दी घूमते यदि किसी ने देख लिया तो क्या कहेगा! लेकिन वह भी क करे, मन किसी तरह नहीं लगता! शचीदेवी तो अपनी लम्बी तान सो रही हैं। विजय का भी इस समय कुछ पता नहीं। यदि उ उसकी इतनी फिक्र होती तो इसी सराय में आकर न ठहर जाते। उ अकेली छोड़कर इस तरह अलग न हो जाते। पर नहीं, वे तो या के पहले दिन से ही उसके साथ रहे हैं। उसके साथ रहने के लि उन्होंने क्या नहीं किया—बहली के पहिये में जोर लगाया, घोड़े उतरकर पैदल चले, दूर दूर से जाकर पानी लाए! यदि शचीदे व्यर्थ की आशंका में फँसकर उनसे जाने के लिए न कहतीं तो वे कभ न जाते। ऐसे ही विचारों में डूबती-उतराती वह कभी शचीदेवी क कोसती, कभी अपने को और कभी विजय को। वह रात उसे पिछल रातों से कहीं अधिक भारी जान पड़ी—ऐसा प्रतीत होता था कि उसका कभी अन्त न होगा।

शचीदेवी स्वभावतः ब्राह्ममुहूर्त में जाग जाती थीं। यही समय

पड़ाव से चलने का भी होता था। यात्रा के दिनों में उन्हें इससे भी पहले जागना होता था। आज भी जब वे जागीं तो उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि नन्दा, जो और दिनों प्रयत्न करने पर भी सवेरे मुश्किल से ही जागती थी, यात्रा के लिए आज सबसे पहले तैयार बैठी है। वे समझीं, नए कुटुम्बियों से मिलने की उत्सुकता इसका कारण हो सकती है। नन्दा की ओर देखकर उन्होंने सहज वात्सल्य भाव से मुस्करा दिया।

आज की यात्रा में नन्दा प्रसन्न नहीं दिखाई दी। वह दिन भर अन्यमनस्क-सी बहली में पड़ी रही। हाँ, कभी-कभी ताजी वायु में साँस लेने के बहाने से बहली का उघार उठाकर बाहर सिर निकाल लेती थी और बहुत देर तक सड़क पर आगे-पीछे, किनारे के छायादार वृक्षों की ओर, देखती रहती थी। देखते-देखते उसकी आँखों में आँसू आ जाते थे। शचीदेवी समझतीं कि कात्यायनी माई के थान से चिर-वियोग होने की कल्पना उसके हृदय को मथ रही है। इसी से वे कुछ कहती न थीं।

सूर्य डूबते-डूबते उनकी बहली ने आगरे की सीमा के भीतर प्रवेश किया।

पिटारा खोलकर शचीदेवी ने वह पत्र निकालकर देखा जो चलते समय कात्यायनी देवी ने उन्हें दिया था। इसमें उनके गन्तव्य स्थान का पता लिखा हुआ था। पत्र का उक्त अंश इस प्रकार था—"आप नन्दिनी को किसी विश्वासपात्र के हाथ आगरे भेज दीजिये। वह उसे चौरंगी सराय के बगलवाले सलीमशाही महल में छोड़कर चली जाय। वहाँ एक महिला उसकी देख भाल करेगी। वहीं उसकी भेंट अपने माँ-बाप से भी होगी। शाही दरबार से जो मदद आपके थान को मिलती रही है, वह नन्दा के चले आने के बाद भी जारी रहेगी।"

पत्र में भेजनेवाले ने अपना नाम-पता नहीं लिखा था। मालूम होता था कि कात्यायनी माई उससे सुपरिचित हैं। अब उनके उत्तर-

दायित्व का काम पूरा होने जा रहा है, यह सोचकर शचीदेव
गहरी साँस ली और एक बार क्षोभ भरी दृष्टि से नन्दा को देख
पत्र पिटारे में रख लिया। फिर उन्होंने हीरा माली को चौरंगी स
का पता लगाकर वहाँ बहली पहुँचाने की आज्ञा दी।

आगरे की कच्ची और तंग सड़कों ने शचीदेवी को परेशान
दिया। हीरा माली भी कुछ कम परेशान नहीं हुआ। पर परेशानी
सबसे अधिक गहरी छाया नन्दा के मुख पर थी। यदि उस समय
उसे देखता तो साफ-साफ समझ लेता कि शहर का आना उसे
भी पसन्द नहीं आया। वह प्रतिक्षण अनुभव कर रही थी कि पि
पड़ाव से वह जितना ही आगे बढ़ रही है, विजय से वह उतना
दूर होती जा रही है और विजय से उसका मिलन भी उतना ही दुष
होता जा रहा है।

लगभग पहर भर चलकर, आधी रात से कुछ पहले, बहली
आलीशान महल के सामने आकर रुकी। इसे ही सलीमशाह का मह
बतलाया गया था। बहली के रुकते ही हरे मखमल का कोट अ
सफेद पाजामा पहने पन्द्रह-सोलह वर्ष के वय का एक लड़का साम
आ खड़ा हुआ। अपने शरीर की गठन और पोशाक से वह ईरा
ज्ञात होता था। उसने झुककर पहले तो कोर्निश की, फिर उठ
बहली के पास आया और तीन बार उसके पायदान को चूमा। अ
में बड़े अदब और तहजीब के साथ उसने बहली का उघार हटा
और आज्ञा की प्रतीक्षा में सिर झुकाकर एक ओर खड़ा हो गया

हीरा माली की सहायता से शचीदेवी नन्दा के साथ बहली
नीचे उतरीं और ईरानी सेवक के संकेतानुसार पाँच या छः चौ
सीढ़ियाँ चढ़कर वे महल के सिंहद्वार के सामने जा खड़ी हुईं। लड़
के फाटक खोल देने पर वे भीतर घुसीं। बहुत विशाल महल था,
एक दो कामदारों के सिवा और कोई निवासी वहाँ दिखाई न
देता था।

लड़के के पीछे पीछे दालान, चौड़ा आँगन उसके बीच में एक हौज, फिर दालान और एक गलियारा, इसके बाद गुम्बददार दरवाजा पार करतीं दोनों महिलायें एक ऐसे कक्ष के सामने जा खड़ी हुईं जिसके द्वार पर साटन का एक सुनहली कामदार पर्दा झूल रहा था और कलमाकनी हाथ में नङ्गी तलवार लिए पहरा दे रही थी।

"यही खास महल है," ईरानी लड़के ने बड़े अदब के साथ सलाम करते हुए निवेदन किया और फिर उलटे पाँव पीछे लौट गया। कलमाकनी ने तलवार खूँटी पर लटका दी और फिर घुटने तोड़कर दोनों महिलाओं को अभिवादन किया। इसके बाद उसने पर्दे को एक ओर से हटाते हुए कुछ कहा जिसका अर्थ शचीदेवी न समझ सकीं, पर संकेत से इतना अवश्य समझ गईं कि वह भीतर चलने को कह रही है।

महल की विशालता, पर्दे का कठिन प्रबन्ध, द्वारपाल, रक्षक, अदबकायदे और सबसे बढ़कर कलमाकनी की आकृति और तलवार वन के शान्त और एकांत वातावरण में जीवन बिताने की अभ्यस्त नन्दा को भयभीत करने के लिए पर्याप्त थे। उसे लगा कि वह स्वतंत्र वातावरण से दूर एक ऐसी बन्दीघर में आ पड़ी है जिसके सींकचे दुर्दैव जैसे कठोर और जिसके नियम भाग्य जैसे अपरिवर्तनशील हैं।

धीरे-धीरे अस्खलित चरणों से शचीदेवी ने नन्दा का हाथ पकड़े कक्ष में प्रवेश किया। चार-चार फानूसों के प्रकाश से कक्ष जगमगा रहा था। इसी समय एक भद्र महिला ने, जो संभवतः चिक के पीछे द्वार के एक ओर इनकी प्रतीक्षा में खड़ी थी, झुककर शचीदेवी के चरणों की धूल लेकर मस्तक में लगाई और फिर हाथ पकड़कर उनको एक बहुमूल्य पलँग पर, जिसके ईरानी कालीन पर सोने का कामदार पलँगपोश लगा हुआ था, बिठा दिया और स्वयं एक छोटे पीढ़े पर बैठकर अपने रेशमी आँचल से उनके चरण पोंछने लगी। आशीर्वाद देते हुए शची-

देवी ने उसके हाथ पकड़ लिये और अपने पास पलँग पर बैठ आग्रह करने लगीं।

इसी समय महिला की दृष्टि नन्दा पर पड़ी। भय और आतं भरी नन्दा अभी तक द्वार के पास खड़ी थी। वह कभी फानूसों, कक्ष की दमदम करती हुई रत्नजटित विलास-सामग्री और कभी कल तीत सुन्दर आभूषणों और वस्त्रों की ओर आँखें फाड़-फाड़कर देख थी। उसने दौड़कर नन्दा को पकड़कर छाती से लगाते हुए कह "तू आ गई नन्दिनी, मेरी बेटी, कब से हम लोग तेरी याद कर रहे थे

यह कहकर उसने कई बार उसका माथा चूम लिया। फिर प के आवेग में उसके सिर पर हाथ फेरने लगी। अपरिचित और अ त्याशित वातावरण में पहुँचकर नन्दा मानो अपनी सारी सुधि-बुधि बैठी थी। वह कभी उस भद्र महिला को देखती और कभी शचीदे को। उसने सोचा, शायद मैं सो रही हूँ और यह जो कुछ दिखाई रहा है, यह सब स्वप्न है। स्वप्नों में देखे परी-लोक से वह इस स्थ की तुलना करने लगी।

महिला की शिष्टता और वातावरण की गुरुता का शचीदेवी भी कम प्रभाव नहीं पड़ा था। वे मन ही मन कक्ष की बहुमूल्य सा सामग्री के आधार पर उसके स्वामी के अपार वैभव का अनुमान लग रही थीं। वे यह भी सोच रही थीं कि पत्र में जिन भले कुल की महिल का जिक्र है, क्या यही वह हैं। 'अपने रत्नजटित वस्त्राभरण, प्रका शरीर, मुक्तोज्ज्वल वर्ण और आदर्श शिष्टाचार से तो ये कोई राज रानी-सी लगती हैं।

भद्र महिला ने नन्दा का हाथ पकड़कर पलँग के पास ही एक पीढ़े पर बिठा दिया। उसका कोमल लचकदार आसन उसके लिए नई बात थी। फिर उसने दाहिने हाथ की ओर की खूँटी पर लगी हुई एक रस्सी को हिलाया। एक अल्पवस्यका लड़की हाथ जोड़े सामने आकर खड़ी हो गई। महिला ने आदेश के स्वर में कहा—"पंडितों का नास्ता.....!"

दो नवयुवतियाँ जो अपने धवल वस्त्रों, लाल रोली और खौर से ब्राह्मणी प्रतीत होती थीं, हाथों में फलहारी मिष्ठान्नों की तश्तरियाँ और चाँदी के कटोरों में जल लेकर हाजिर हो गईं। साथ में कुछ बाँदियाँ भी हाथों में गमछे और चाँदी के जलपूर्ण कलश लेकर उपस्थित हो गईं। महिला ने शचीदेवी के चरण अपने हाथों से धोकर गमछे से पोंछ दिये। फिर एक बाँदी ने नन्दा के चरण धोये। इसके बाद तश्तरियाँ दोनों के सामने रख दी गईं।

शचीदेवी और नन्दा के जलपान से निवृत्त होने पर महिला ने उनसे पलँग पर आराम करने की प्रार्थना की और स्वयं मोरछल लेकर डुलाने लगीं। बाँदियाँ इस समय तक कक्ष के पिछले द्वार से अंतर्धान हो चुकी थीं। इसी समय महिला ने एक पत्र शचीदेवी की ओर बढ़ा दिया।

पूर्वपरिचित हस्तलिपि में इस पत्र में लिखा था—

"देवी जी, मैं आपका बहुत उपकार मानता हूँ कि आपने मेरी पुत्री को सुरक्षित रूप में वहाँ तक पहुँचा दिया। अब आप निश्चिन्त हो जाइये और समझ लीजिए कि वह अपने माता-पिता के पास आ गई है। अगर आप पसंद करें तो उसके साथ कुछ दिन तक महल में ठहर सकती हैं, पर यह सर्वथा आपकी इच्छा और कृपा पर निर्भर है। आपको अपनी आवश्यकता और सुविधा के अनुकूल सभी प्रकार का प्रबंध यहाँ मिलेगा। पर यदि आप ठहरना उचित न समझें तो निश्चिन्त भाव से लौट जा सकती हैं।

"इस महल की मालकिन दो सौ मोहरें माई जी के लिए स्थान और पचास मोहरें आपको तथा दस मोहरें गाड़ीवान को पुरस्कारार्थ भेंट करेंगी। कृपया उन्हें स्वीकार कर लीजिए। माई जी के चरणों में हम भक्तों का प्रणाम अवश्य निवेदन कर दीजिए।"

पत्र पढ़कर उसे नन्दा के हाथ में देते हुए शचीदेवी ने कहा—"बेटी नन्दा, तुझे तेरे असली अभिभावकों के हाथ में सौंपते मुझे बड़ा

सन्तोष हो रहा है। भगवान् ने तेरी तपस्या पूर्ण कर दी। जैसे लोगों का अनुमान था, उससे अधिक सुख और ऐश्वर्य तुझे यहाँ होगा। मैं कल सबेरे ही तुझसे विदा होना चाहती हूँ। स्थान की मुझे सता रही है, यद्यपि तेरे बिना हम लोगों को कुछ दिन तक अच्छा न लगेगा।" कहते कहते उनको आंखों से आँसू झरने लगे

"इतनी जल्दी क्यों?" कहती हुई नन्दा पागल की भाँति उठी शचीदेवी के गले से लिपटकर फूट-फूटकर रोने लगी। उसे समझा बुझाकर शान्त करना उस समय शचीदेवी के लिए भी कठिन हो गया

———

(७)

महल के सुसज्जित शयनागार में रात भर शचीदेवी और नन्दा अलग-अलग अपनी-अपनी समस्याओं को लेकर व्यस्त रहीं। जान पड़ता था कि उक्त भद्र महिला के व्यवहार से शचीदेवी को जितना सन्तोष हुआ था, पत्र से उतना ही कष्ट भी हुआ। इस पत्र का लेख उसी प्रकार था जैसा कि उस पत्र का था जिसे वे स्थान से अपने साथ लाई थीं। शचीदेवी को इस बात का सन्तोष था कि वे नन्दा को ठीक स्थान पर ही छोड़कर जा रही हैं। पर नन्दा की मनोदशा जिस प्रकार की यहाँ आने पर हो गई थी, उसे देखते हुए उसे एकाएक अकेले छोड़कर जाना कुछ अन्याय-सा लगता था। साथ ही पत्र के इस वाक्य ने कि 'आप कुछ दिन नन्दा के साथ और ठहर सकती हैं, या यदि चाहें तो निश्चिन्त भाव से लौट भी सकती हैं,' शचीदेवी के हृदय को विचलित कर दिया था। इन शब्दों में उन्हें अपने प्रति कुछ उपेक्षा भाव की गंध का भी अनुभव हो रहा था। इसने उनकी संवेदना को अधिक मुखरित कर दिया था। साथ ही पत्र की पचास अशर्फियाँ देने की बात भी उनको अच्छी न लगी थी और उन्होंने उसे अनावश्यक प्रलोभन के रूप में लिया था। पर वे विवश थीं। परिस्थितियाँ प्रतिकूल और अपने अधिकार से बाहर दिखाई दे रही थीं। कात्यायनी माई ने उन्हें केवल नन्दा को निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचा देने का उत्तरदायित्व सौंपा था जिसे वे पूरा कर चुकी थीं। अब रही बात नन्दा के भविष्य की, उसके लिये वे कर भी क्या सकती थीं!

नन्दा की उलझन दूसरे प्रकार थी। वह बार बार सोचती कि इस सोने के पींजड़े में, जिसके द्वार पर एक विकराल तातार बाँदी नङ्गी तलवार लिये पहरा दे रही है, विजय से मेरी भेंट हो सकेगी या नहीं। बेचारा विजय यह भी नहीं जानता होगा कि मैं कहाँ ठहराई गई हूँ। फिर वह एक ऐसा काम करने जा रहा है जिसमें उसकी जान का खतरा है। इसी लिए वह मुझसे अपने मन की बात छिपा रहा था। यदि यह ठीक हो, और उसे कुछ हो जाय तो...!

इसके आगे वह सोच न सकी और तकिए में मुँह छिपाकर रोने लगी। शचीदेवी ने समझा कि वह उससे बिछुड़ने की सम्भावना से रो रही है। इस विचार से उनके मन को बहुत कुछ सन्तोष भी हुआ।

सारी रात इसी तरह बीती। प्रातःकाल के नवीन प्रकाश ने गत रात्रि के कालुष्य को बहुत कुछ धो दिया जिससे शचीदेवी को नवीन साहस प्राप्त हुआ। प्रातःकृत्यों से निवृत्त होकर यथासंभव शीघ्र जाने के लिये तैयार हो गईं। महिला भी ठीक समय पर उन्हें विदा देने के लिये आ गई। विदाई के आवश्यक उपचार के पश्चात् जब वह उन्हें पचास अशर्फियाँ की भेंट देने लगीं तब शचीदेवी ने यह कहते हुए उसे अस्वीकार कर दिया—"मेरे साथ रक्षक नहीं है, इस लिए मार्ग में यह धन कोई लूट लेगा। दाता यदि सीधे थान में पहुँचाने का प्रवन्ध कर दें तो ठीक होगा।"

विदा होने से पूर्व शचीदेवी ने नन्दा को कुछ आवश्यक उपदेश दिया और फिर भद्र महिला के हाथ में नन्दा का हाथ सौंप वे शीघ्रता से महल से बाहर निकल आईं। हीरा माली उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। शचीदेवी के चले जाने पर नन्दा ने एक बार आँखें पसार कर चारों ओर देखा; फिर कटी हुई लता की भाँति पास पड़े हुए पलँग पर गिर पड़ी और फूट-फूटकर रोने लगी।

वह न जाने कब तक इसी प्रकार रोती पड़ी रहती यदि महिला आकर उसे समझाने-बुझाने का प्रयत्न न करती। उसने आते ही

नन्दा को गोद में उठा लिया और प्रेमपूर्वक उसके सिर पर हाथ फेरती हुई बोली —"पगली बिटिया है मेरी—अपने मा-बाप के घर आकर कहीं इस तरह भी रोया जाता है ?"

नन्दा ने चट अपने आँसू पोंछ डाले और सिसकियाँ भरते हुए पूछा—"कहाँ हैं मेरे मा-बाप ?"

"वे जल्द ही तुझे मिलेंगे।"

"कब ?"

"कब क्या, शायद आज ही—शायद कल। पर इसी हफ्ते में जरूर मिलेंगे।"

"क्या आप मेरी मा नहीं हैं ?"

नन्दा के इस वात्सल्यपूर्ण सीधे-सादे प्रश्न ने महिला को विचलित कर दिया। अपने को बहुत कुछ सँभालते हुए उसने उत्तर दिया—"तब तक तुम मुझे मा कह सकती हो।"

"क्या मेरी मा भी आपकी जैसी ही हैं ?" नन्दा ने आश्वासन पाकर प्रश्न किया।

"मुझसे भी अच्छी।" महिला ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया।

विस्मय और कौतूहल के आवेग से नन्दा पलँग से उतरकर नीचे खड़ी हो गई और कहने लगी—"आप बड़ी अच्छी हैं। क्या आप मुझे अपनी मा से आज ही नहीं मिला सकतीं ?"

"मिला क्यों नहीं सकती, पर उनकी आज्ञा नहीं है।"

"उन्होंने क्यों आज्ञा नहीं दी ?" नन्दा ने शिशु-सुलभ भोलेपन से प्रश्न किया।

"उनकी सब बातें अजब ही होती हैं। वे कब क्या करना चाहती हैं, यह कोई नहीं जान सकता।"

नन्दा का रोना धोना हवा हो गया। वह अपनी मा की कल्पना में निमग्न हो गई। उसकी मा के पास बहुत-सा धन और बहुत-से

नौकर-चाकर होंगे; वे बहुत सुन्दर होंगी, देखने में वे रानी-सी ल
होंगी, लेकिन अब तक मा ने क्यों नहीं मुझे अपने पास बुला
बड़ी निष्ठुर हैं वे। अपनी लड़की को कोई यों भी भुला देता
इसी लिए वह अब तक अपने को अनाथ समझती रही। वह सच
बड़े भ्रम में थी। उसके क्या नहीं है ! यदि आज विजय किसी प्र
जान पाते कि नन्दा रानी की बेटी है, तो उन्हें कितना आश्
होता। फिर वे मुझे बहुत अधिक प्यार करते और शायद यह
कहते कि नन्दा अब मैं तुझे कभी न छोड़ूँगा—सदा अपनी आँखों
आगे रखूँगा...!

वह विजय की उपस्थिति के लिए छटपटा उठी। अब तक उसके प
केवल एक बल था, प्रेम का। उसके सहारे ही वह विजय के हृदय
आंशिक अधिकार प्राप्त कर सकी थी। पर आज तो उसके पास स
कुछ था—यदि कुछ नहीं था तो केवल विजय !

अपनी मा की अनेक रूपों में कल्पना करने में नन्दा उस दि
ऐसी व्यस्त रही कि उसे शचीदेवी की याद एक बार भी नहीं आई
मा उससे क्या कहेंगी—वह मा को अभिवादन किस प्रकार करेगी—
देखते ही उनके चरणों पर गिर पड़ना और फूट-फूटकर रोने लगन
क्या ठीक रहेगा—शायद ऐसा करना ठीक न होगा—मा समझेंगी कि
मैं स्थान में बहुत दुखी रही हूँ। नहीं, यह ठीक नहीं होगा—तो क्या
दूर से ही हाथ जोड़कर उन्हें नमस्कार करना ठीक रहेगा—पर इस प्रकार
का अभिवादन तो अच्छा नहीं होता—उसमें आत्मीयता नहीं रहती—
कहीं मा यह न समझ लें कि मैं साधारण शिष्टाचार भी नहीं जानती—
और यदि मैं जाकर सीधी उनकी गोद में गिर पड़ूँ—निश्चय ही ऐसा
करने पर वे मेरे सिर पर हाथ फेरकर मुझे प्यार करेंगी—पर मेरे
और छोटे भाई-बहन भी तो होंगे—मुझ अपरिचिता को इस तरह
अपनी मा की गोद में बैठते देखकर क्या उन्हें बुरा न लगेगा—अवश्य
बुरा लगेगा—तब क्या करना ठीक रहेगा—यदि मा को देखकर मैं

अपरिचित की भाँति चुपचाप खड़ी रहूँ और उन्हीं की ओर से आरम्भ, की प्रतीक्षा करूँ—शायद यही ठीक रहेगा—यद्यपि इसी ढंग में कुछ ढिठाई या आत्माभिमान की छाया अवश्य है। मा इसे अशिष्टता भी समझ सकती हैं—पर यदि मा के सिवा वहाँ अन्य कोई स्त्री भी हुई—इस दशा में मेरा चुपचाप खड़ा रहना ही शायद सबसे ज्यादा ठीक रहेगा!

नन्दा की विचार-धारा मा की दिशा में न जाने कब तक एक रूप से बहती रहती, यदि संध्या से कुछ पहले वही महिला उसे अचानक यह संवाद सुनाती कि आज तेरे पिता तुझसे भेंट करने आ रहे हैं। इस अप्रत्याशित संवाद ने नन्दा को एक साथ विचलित कर दिया। वह यह निश्चय न कर सकी कि उसे क्या करना चाहिये। कुछ देर इधर-उधर करने के पश्चात् उसने पूछा—"क्या मेरी मा भी उनके साथ आ रही हैं?"

"नहीं", सिर हिलाकर भद्र महिला ने संकेत कर दिया।

नन्दा कुछ देर तक खोई-खोई सी बैठी रही। फिर उसने प्रश्न किया—"पिता जी किस समय आ रहे हैं?"

"आधी रात के बाद।"

"आधी रात के बाद!" नन्दा आश्चर्य से चौंक पड़ी! "क्यों, वे दिन में क्यों नहीं आते?"

"वे परिवारवालों से रात में ही भेंट करते हैं। दिन में उन्हें छुट्टी नहीं मिलती।"

"वे क्या करते हैं—क्या वे सिपाही हैं?" नन्दा ने सुना था कि सिपाहियों को बहुत काम करना पड़ता है।

"यह सब जानना तुम्हारे लिए जरूरी नहीं है। यही समझ लो कि वे बहुत से काम करते हैं। इसी लिए दिन में किसी से बात करने की उन्हें फुरसत नहीं मिलती।"

कागजों पर निगाह जमाये ही अमीर ने कहा—"आज इन
मियों की लाशों का एक अम्बार लग जायेगा !"

फिर अपनी तलवार की ओर देखा जो सामने खूँटी पर
रही थी। साथ ही पेशकब्ज को कमर पर ठीक किया और दा
एक बार ऊपर से नीचे तक हाथ फेरा। उसकी प्रश्नसूचक
दरबान पर टिकी थीं।

"पीरो मुरशिद, आगामीर हाजिर होनेवाला है।" दरबा
कुछ काँपती हुई आवाज में निवेदन किया।

"हरामी पिल्ला, अब तक कहाँ मर गया था। फौरन उसे ह
करो।" अमीर ने बेसबरी और क्रोध मिले स्वर में कहा। इसके
वह फिर अपने सामने रखे हुए कागजों को देखने लगा। दर
तुरन्त बाहर चला गया।

कुछ देर बाद वह अपने साथ एक ऐसे आदमी को लेकर अ
जिसका मैला और चुस्त अँगरखा बतला रहा था कि वह अभी-अ
कहीं दूर के सफर से आ रहा है। आते ही उसने घुटने झुका
सलाम किया और फिर अदब के साथ एक ओर खड़ा हो गया।

अमीर ने आँखें उठाईं और आनेवाले को सिर से पैर
गहरी निगाह से देखा। फिर सामने रखे हुए कागजों में एक स्थ
पर उँगली रखकर पूछा—"आगा साहब, आप इस दोजख के कु
का पीछा कहाँ से कर रहे हैं ?"

"सराय गुपाल से जनाब आली।"

"कब चला था यह अपनी जगह से ?"

"रमजान की तीसरी को, आलीजाह !"

"और सराय गुपाल से ?"

"चौथी की दोपहर को।"

"वहाँ रात को नहीं ठहरा था ?"

"नहीं जनाब, घोड़े को दाना-पानी देने और आराम करने के लिए दो घड़ी ठहर गया था।"

"उस रात किस पड़ाव में ठहरा था?"

"नवीगंज की सराय में।"

"यानी दो कोस का सफर आधे दिन में तय किया?"

"जी हुजूर, बहुत नजदीक-नजदीक पड़ाव करता आ रहा है।"

"यह गैर मामूली बात है। कुछ नशा-वशा करता है क्या?"

"जहाँ तक मुझे मालूम है, कोई नशा-वशा नहीं करता।"

"बतला सकते हो कि यह इतने धीरे-धीरे सफर क्यों कर रहा था?"

"मुझे खुद ताज्जुब है, सरकार!"

"तुम बड़े निकम्मे आदमी हो। अच्छा, फिरोजाबाद से इसकी निगरानी किसके जिम्मे थी?"

"दौलत खाँ के।"

"दरबान, दौलत खाँ को हाजिर करो।"

"इस वक्त सराय खास में हाजिरी दे रहा है, गरीब परवर!" दरबान ने हाथ जोड़कर निवेदन किया।

"उसकी जगह कादिरबख्श को तैनात कर दो और उसे अभी हाजिर करो।"

"जो इरशाद!" यह कहकर और एक बार फिर ताजीम करके दरबान कमरे से बाहर हो गया। उसके पीछे-पीछे आगामीर भी निकल गया। अमीर ने फिर घंटी बजाई। दूसरा दरबान हाथ जोड़े दौड़ा आया।

"इमाम को हाजिर करो!" अमीर ने हुक्म दिया।

"जो इरशाद!" कहकर दरबान तुरन्त चला गया और सराय चौरंगी के सदर इमाम को अपने साथ ले आया।

"तुम यहाँ के इमाम हो?" अमीर ने इमाम की सफेद दाढ़ी और

"गरीब परवर।"

"कितनी पुरानी नौकरी है ?"

"हुजूर, शेरशाही वक्त से है।"

"तो तुम अफगानों के कुत्ते हो—खुद भी शायद अफगान ही हो ?" क्या नाम है तुम्हारा ?"

"माकूल खाँ, सरकार !" इमाम भय से काँपता हुआ बोला।

"अच्छा खाँ साहब, आज से आप अपने को सराय चौरंगी की सदर इमामी से सुबुक दोश समझें। ठहरिए, खुद तशरीफ ले जाने की जरूरत नहीं।" यह कहकर अमीर ने बाईं ओर के कमरे की ओर, जिसके द्वार पर चिक लटक रही थी, देखा।

तुरन्त छः सशस्त्र सैनिक बाहर निकल आये और इमाम की मुश्कें बाँध लीं।

"खबरदार, इसे बिना किसी शोरगुल के ठिकाने पर पहुँचा दो।" अमीर ने धीरे से कहा।

इमाम को लिये हुए सिपाही दबे पाँव पिछले दरवाजे से बाहर हो गये।

"दौलत खाँ हाजिर है।" पहले दरबान ने प्रवेश करते हुए अदब के साथ सूचना दी।

"बतलाओ दौलत खाँ, फिरोजाबाद में उस आदमी के बच्चे ने किससे क्या बातचीत की ?"

"किसी बाहरी आदमी से कोई बातचीत नहीं की सरकार।"

"तुम झूठ बोलते हो। तुम जानते हो कि मुकामो खुफिया नवीस ने क्या लिख भेजा है ?" अमीर ने कागजों की ओर संकेत करते हुए कहा।

"हुजूर, मैं बराबर उसकी निगरानी करता रहा। उस रात तो मरदूद सराय से बाहर भी नहीं निकला था। रात भर बैठा-बैठा खत

लिखता और फाड़ता रहा था। सवेरा होने से कुछ पहले थोड़ा झपक भी गया था?"

"क्या लिखता रहा था वह?"

"ये टुकड़े हैं हुजूर," कहकर दौलत खाँ ने कुछ टुकड़े पेश कर दिये।

कागज के टुकड़ों को सँभालकर सामने रखी सन्दूकची के एक खाने में रखते हुए अमीर ने कहा, "अब तुम जा सकते हो। मोहतिसब* को हाजिर करो।"

दौलत खाँ के चले जाने के कुछ ही क्षण बाद दरबान के साथ मोहतिसब ने कमरे में प्रवेश किया और शाही ढंग से कोर्निश बजाकर वह एक तरफ खड़ा होगया।

"दीन-दुनिया की भी आपको कुछ फिक्र है, मोहतिसब साहब?" अमीर ने भवों में बल डालते हुए पूछा।

"बन्दा खास जगह से ही आ रहा है, परवरदिगार!"

"जानते हो, खानखाँना तुम पर कितना भरोसा रखते हैं?"

"बन्दा भी सरकार के हर इशारे पर सर देने को तैयार है, खुदाबन्द।"

"किस नतीजे पर पहुँचे अब तक?"

"जी खास मतलब तो सब निकल आया है, थोड़ा-सा बाकी रह गया है जिसके लिए कुछ आँच दिखाने की जरूरत होगी। जाड़े का मक्खन कुछ गर्मी पाने पर ही पूरा-पूरा निकलता है।" यह कहकर मोहतिसब जरा रहस्यपूर्ण ढंग से मुस्कराया।

"ठीक है। उसका इन्तजाम भी करना है। अच्छा, इस वक्त खानखाँना कहाँ तशरीफ रख रहे हैं?"

---

*मुगलों के समय का एक अधिकारी, जिसका पद आजकल के

"नमाजे सहर के बाद कुछ चुने हुए सरदारों के साथ तराई के शिकारगाह की जानिब तशरीफ ले आये हैं।"

"अच्छा मजाक है। तलवार गरदन पर लटक रही है और खान-खाँना साहब हैं कि अमीरी की रस्म अदा करते फिर रहे हैं। किसी खास लिवास में हैं?"

"जी नहीं, शिकार के ही लिवास में हैं?"

"वही जरूरी था। अच्छा, उधर पूरी निगाह रखना। जो कुछ हो रहा है, तुमसे छिपा न होगा?"

"जी, मैंने पूरा इन्तजाम कर रक्खा है।"

"और उसका क्या हाल है?"

"वह भी ठीक है।"

"तो उसे हाजिर करो, क्यों न उससे यहीं और आज ही निपट लिया जाय।"

"बेहतर है। मैं माकूल इन्तजाम किये देता हूँ।"

यह कहकर फिर एक बार शाही कायदे से आदाब करने के बाद मोहतिसब बाहर हो गया। इसके बाद आधी घड़ी तक कमरे में सन्नाटा छाया रहा। केवल बीच-बीच में अमीर के कागज उलटने-पलटने या सन्दूकची खोलने-बन्द करने का शब्द आता रहा। फिर दरबान एक व्यक्ति को लेकर कमरे में आया। ड्योढ़ी के भीतर पैर रखते ही उसने साथ के आदमी से, जो कुछ देहाती-सा मालूम पड़ता था, कहा—"मीर अर्दूल, अमीरुल उमरा, वकील मुतलक, मुल्ला पीर मोहम्मद को इस तरह आदाब बजाओ।"

फिर अपने हाथों से पकड़कर उसकी गरदन अमीर के पैरों के आगे झुका दी। उसके हाथ किसी अज्ञात कारण से ही आपस में मिल गये थे। मुल्ला साहब का नाम ही उसके दुर्बल शरीर में हड़कम्प पैदा करने को शायद काफी था।

इसके बाद दरबान ने स्वयं भी नियत प्रकार से अभिवादन करते हुए अर्ज किया—"साईस रामपाल खिदमत में कुछ गुजारिश करने को हाजिर हुआ है।"

भेद भरी दृष्टि से रामपाल की ओर देखते हुए अमीर ने कहा—"तुम बहुत सीधे आदमी दिखाई देते हो जी?"

रामपाल गरदन झुकाये चुपचाप खड़ा रहा। उसे अपने दिल की धड़कन साफ सुनाई दे रही थी।

"कहो, क्या कहना है तुम्हें?"

"हुजूर," रामपाल के मुँह से केवल यही एक शब्द निकल सका। उसे लगा जैसे उसका कण्ठ सूख गया है और एक शब्द भी बोल सकना उसके लिए असम्भव हो गया है।

"कहो न, डरते क्यों हो! तुम तो राजा-महाराजाओं के हमेशा साथ रहनेवालों में हो। मैं भी तुम्हें अपना दोस्त ही मानता हूँ, कुछ गैर नहीं। तुम जो कुछ कहना चाहते हो, बेखटके कह सकते हो।"

रामपाल एकटक अपने पैरों की ओर गरदन झुकाये देखता रहा। प्रयत्न करने पर भी उसके मुँह से कुछ न निकला। इसी समय कमरे की चिक को हटाकर दो भयानक मूर्त्तियों ने कमरे में प्रवेश किया और दोनों रामपाल के पीछे एक-एक कोने में खड़ी हो गईं। रामपाल ने निगाह को कुछ दायें-बायें घुमाकर उनकी ओर देखा। उसके सारे शरीर से एक साथ पसीना निकल पड़ा।

अमीर के संकेत पर दरबान ने तिजोरी खोली और उसमें से दो तोड़े बाहर निकाले। फिर अमीर ने अपने हाथ से एक तोड़े को अपने सामने तख्त पर खाली कर दिया। खनखन करती हुई और अपनी चमक से चकाचौंध पैदा करती हुई मोहरें बाहर निकल पड़ीं। अमीर ने बड़ी सावधानी के साथ गिना। फिर उसने पाँच-पाँच की

राते हुए उसने रामपाल की ओर देखा और कहा—"देखो जी, अगर तुम खुद कुछ नहीं कह सकते तो मेरे कुछ सवालों का जवाब दो। हर सवाल के सही जवाब के लिए तुम्हें एक ढेरी इनाम में दी जायगी। अगर तुमने सब सवालों का ठीक-ठीक जवाब दे दिया तो यह सारी मोहरें तुम्हारी हो जायँगी।"

यह कहकर वह चुपचाप रामपाल के चेहरे के भाव-परिवर्त्तन को पढ़ने का प्रयत्न करने लगा।

इतना स्वर्ण इकट्ठा रामपाल ने अपनी जिन्दगी में कभी न देखा था। यदि यह सब उसे मिल जाय तो वह भी अमीर हो जाय! फिर उसे किसी के घोड़े के पीछे दौड़ने की जरूरत न रहे! वह भी अपना सफेद मकान बनवाकर आराम से रहे! बाल-बच्चे, नौकर-चाकर, उसके पास भी सब कुछ हो जाये! यह अमीर साहब भी कितने सज्जन हैं! उसके साथ कितनी भलमनसी का बर्त्ताव कर रहे हैं!

रामपाल के मुँह में पानी भर आया। उसे अपना कण्ठ खुलता प्रतीत हुआ। कुछ खाँसकर उसने हाथ जोड़कर कहा—"आपकी क्या आज्ञा है?"

रामपाल की आँखों में सहसा झलक उठनेवाली लोभ की चमक अमीर से छिपी न रह सकी। रामपाल को रास्ते पर आया देख अमीर ने कहा—"मैं कुछ सवाल करूँगा। तुम्हें उनका सही-सही जवाव देना होगा।"

"मैं तैयार हूँ।"

"अगर तुम मेरे सवालों का सही-सही जवाब दे सके तो यह सारी मोहरें तो तुम्हें मिलेंगी ही, कुसुमखोर परगने की जागीर भी बख्शीश में दी जायगी। फिर तुम भी हमारी तरह शाही हाकिम कहलाओगे?"

अमीर ने रंग को पक्का करने के लिए एक और बोर दिया।

रामपाल का मन चंचल हो उठा। लोभ का मोह उसकी सहनशक्ति का अतिक्रम कर गया। घुटनों के बल बैठकर उसने अमीर के पैर के अँगूठे चूम लिये और कहा—"मैं आपकी खिदमत करने को तैयार हूँ।"

अमीर मसनद के सहारे उठंग गया और लापरवाही से पूछने लगा—"तुम्हारे मालिक का असली नाम क्या है?"

"पूरब के लोग उन्हें नाहरपाल के नाम से जानते हैं। पर कड़ा और कन्नौज में लोग उन्हें विजयपाल कहते हैं।"

"नाहरपाल?" अमीर ने अपनी स्मृति पर कुछ जोर देते हुए कहा—"क्या ये विकरमाजीत के कोई अजीज होते हैं?"

यह कह अमीर ने मोहरों की एक ढेरी सामने से उठाकर दाहिनी ओर अलग रख दी। रामपाल ने ढेरी की ओर देखते हुए उत्तर दिया—"जी, वे स्वर्गीय महाराज हेमू विक्रमादित्य के भतीजे हैं।"

दूसरी गड्डी को दाहिनी ओर जमाते हुए अमीर ने प्रश्न किया—"तुम्हारे मालिक घर पर क्या किया करते थे?"

"वही सब कुछ, जो उनकी उम्र के राजकुमार किया करते हैं—शिकार, सैर-सपाटा, व्यायाम, घोड़े की सवारी और जब-तब जागीर की देख-भाल!"

"कुछ और भी?"

"और कुछ नहीं।"

"देखो जी, तुम्हारा यह जवाब गलत है। तुम जानते हो कि मैं बदखशाँ से लेकर बंगाले तक की पूरी-पूरी खबर रखता हूँ। मैं सिर्फ तुम्हारी ईमानदारी की जाँच करने के लिए तुमसे पूछ रहा हूँ। वरना मुझसे छिपा कुछ भी नहीं है।"

रामपाल चुपचाप अमीर के मुँह की ओर ताकने लगा। वह शायद अमीर का अभिप्राय समझने की कोशिश कर रहा था। इसी

समय उसके पीछे खड़े जल्लादों ने हरकत की। रामपाल को स्पष्ट दीखने लगा कि उसकी झोली और सामने तख्त पर रखी हुई अशर्फियों के बीच का अन्तर उस अन्तर से कहीं बड़ा है जो उसकी गरदन और जल्लादों के प्रहार के बीच है।

अमीर ने फिर प्रश्न किया—"अच्छा, रास्ते में उन्होंने क्या-क्या किया?"

"उन्होंने पहला पड़ाव गुरसहायगंज में किया, दूसरा छिबरामऊ में, तीसरा...!"

"चुप रहो, तुम बेवकूफ हो। तुम बिना समझे जवाब देने लगते हो।" अमीर उठकर सीधा बैठ गया। जल्लादों की हरकत में और भी सरगर्मी आ गई।

रामपाल किंकर्त्तव्य विमूढ़ की भाँति खड़ा रहा। अमीर ने फिर प्रश्न किया—"रास्ते में उसने किसी से जान-पहचान या बातचीत की थी?"

"माई कात्यायनी के थान से एक लड़की बहली पर आगरे की ओर आ रही थी। गुरसहायगंज के पड़ाव से आगे चलकर उससे मालिक की जान-पहचान हो गई थी। वहाँ से सब लोग साथ ही साथ यहाँ तक आये।"

"अब आये रास्ते पर।"

यह कहते हुए अमीर ने एक गड्डी और दाहिनी ओर बढ़ा दी। रामपाल ने देखा, पन्द्रह मोहरें उसके खाते में जमा हो चुकी हैं।

"तुम्हारे मालिक उस लौंडिया को चाहने लगे हैं क्या?"

"ठीक नहीं कह सकता। पर चिट्ठी-पत्री रास्ते भर होती रही थी।"

"सूरत-शक्ल में वह कैसी है?" रामपाल की आँखों में आँखें डालते हुए अमीर ने प्रश्न किया।

"चम्पई रंग, छरहरा बदन, पन्द्रह-सोलह की उम्र, लाल-लाल पतले होंठ, नरियाला चेहरा, बड़ी-बड़ी काली-काली आँखें, मुलायम गावदुम उँगलियाँ– बड़ी खूबसूरत है।"

एक अँगड़ाई लेते हुए अमीर ने एक और ढेरी उठाकर दाहिनी ओर रख दी। अब रामपाल की समझ में कुछ-कुछ आ गया था कि अमीर किस तरह के उत्तर चाहता है। उसे अपनी बुद्धिमानी पर संतोष होने लगा।

"यह कहाँ तक सच है कि तुम्हारे मालिक की जान-पहचान उससे रास्ते में ही हुई है?" अमीर ने प्रसंग को बदलते हुए प्रश्न किया।

"इससे पहले उनमें जान-पहचान हो ही कैसे सकती थी?"

"खैर, तो क्या तुम यह बतला सकते हो कि जुदा होते वक्त उन दोनों में फिर कब और कहाँ मिलने का कौल-करार हुआ था?"

"वे लोग उस दिन बहली से बहुत पीछे पैदल चल रहे थे। उनकी बातचीत मैं सुन नहीं सका। जब दोनों बहली के पास पहुँचे तब शचीदेवी ने मालिक को अपने साथ रहने से मना कर दिया और मुझे भी बहली पर से उतरकर अलग-अलग चलने को कह दिया।"

"अच्छा, इसे भी जाने दो। तुम्हारे मालिक की दोस्ती उनके इलाके में किस तरह के लोगों से है?"

"यों तो उनकी दोस्ती सैकड़ों अफगानों और हिन्दुओं से है, पर तीन दोस्त उनके बहुत गहरे हैं—मुराद खाँ, चम्पालाल और इम्दाद भाई।"

"ये लोग कौन हैं और कहाँ के रहनेवाले हैं?"

"चम्पालाल राजा भगवानदास का लड़का है। मुराद बेग कहीं पश्चिम का रहनेवाला है और इम्माद भाई खास जौनपुर के एक अफगान सरदार का लड़का है।"

"मुराद बेग मुसाहब बेग के साहबजादे हो सकते हैं। खानखाँना को उनकी जरूरत भी होगी। खैर तुम्हारे ये जवाब बहुत माकूल हैं।" कहते हुए अमीर ने तीन गड्डियाँ फिर उठाकर दाहिनी ओर रख दीं।

इसी समय कादिरबख्श ने घबराहट की मुद्रा में कमरे में प्रवेश किया।

"ठहरो रामपाल! कहो मियाँ कादिर, सब चौपट कर आये न!"

"नहीं जनाब, पर जरा जरूरी काम है और आपके मशविरे की जरूरत है।"

"कहो न फिर?"

"तखलिये मैं अर्ज करना चाहता हूँ।"

"अच्छा रामपाल, तुम अब जा सकते हो। यह अपने साथ सब लेते जाओ।" कहते हुए अमीर ने तोड़े की बची हुई मोहर भी उधर बढ़ा दीं। फिर कहा—"मगर देखो, मुझसे बराबर मिलते-जुलते रहना। इस दर्मियान अगर तुम्हारे मालिक की किसी के साथ खत-किताबत हो तो सब खत लाकर मुझे जरूर दिखा जाना। तुम्हें हर जरूरी खत के लिए पाँच से लेकर दस अशर्फियाँ तक इनाम में मिलेगी—समझे न?"

यह कहकर अमीर कादिरबख्श की ओर घूम गया। अशर्फियों को फेंट में बाँधकर रामपाल चुपचाप बाहर निकल गया। उसके पैर आज मन-मन के भारी हो रहे थे। शायद कमर के बोझ के कारण—शायद मन के बोझ के कारण!

"मैं किसी दूसरे नतीजे पर पहुँच रहा हूँ", एकान्त हो जाने पर कादिरबख्श ने निवेदन किया।

"वह क्या?" मुल्ला ने प्रश्न-सूचक भाव से उसकी ओर देखते हुए पूछा।

"अपनी चाल-ढाल से वह नौजवान बड़ा नेकचलन और शरीफ मालूम पड़ता है।"

"हाँ, खानदानी तो वह है ही—महाराज हेमू विक्रमादित्य का भतीजा!"

"उसका इरादा भी बुरा नहीं मालूम होता।"

"यह खयाल गलत है। अपना इरादा कोई दीवालों पर लिखता नहीं फिरता।"

"जो भी हो, चाल-ढाल पर अच्छे और बुरे इरादे का साया जरूर पड़ता है। मै हजारों मामलों में इसका तजरबा कर चुका हूँ।"

"लेकिन सब मामले एक से नहीं होते—न ही सब मुलजिम एक-सी हालत में एक ही तरह से पेश आते हैं।"

"गत रात लगातार कई घंटे तक मैं उसका चेहरा देखता रहा—भोला-भाला, शरीफ चेहरा; जिसमें जवानी की उमंगें भी जाहिर नहीं होतीं। उसकी जगह अगर और कोई होता तो बाजार

की सब गलियाँ छान डालता; पर वह है कि जब से आया है, अपनी कोठरी में कैद है। जरूरत के सिवा सराय के सहन तक में नहीं आता। खाने-पीने का भी कोई खास शौक नहीं दिखाई पड़ता। जो कुछ ब्राह्मण ने पेश कर दिया, चुपचाप खा लिया। शाम को जितने दाम बतलाये गये चुपचाप गिन दिये। वह उन अमीरजादों की तरह नहीं है जो फर्माइशों के मारे नाक में दम कर देते हैं— यह लाओ वह लाओ—बस्ताम्बूली लाओ, अस्फहानी लाओ। जरा भी कुछ बड़बड़ हुआ कि समझ लीजिए कि खानसामाँ की शामत आ गई। पैसा देने में ऐसे कंजूस कि कौड़ी-कौड़ी को दाँत से पकड़ेंगे।"

"ठीक है। लेकिन इस तरह के आदमी खतरनाक नहीं होते। हाफिज ने साफ कहा है कि उससे डरो जो जवानी पाकर भी परहेज-गार बना रहता है!"

"यह तो वक्त ही बतलायेगा कि वह खतरनाक है या नहीं। हाँ, यह जरूर है कि अगर आप उसे एक दफा देख लें तो यकीनन आप भी उसे प्यार करने लगें।"

"ओह, तब तो अच्छा हुआ कि मैंने उसे देखा नहीं। खैर, हमें तो सल्तनत का इन्तजाम सँभालना है। इन्तजाम की तलवार यह नहीं देखती कि सिर खूबसूरत है या बदसूरत। आखिर घरेलू मक्खी को शहद के छत्ते में घुसने की जरूरत क्या थी?"

"मुझे तो यही समझ पड़ता है कि वह उसी लौंडिया के चक्कर में ही यहाँ तक आया है। उसे न खानखाँना से कुछ मतलब है, न मुगल-सल्तनत से।"

"मुमकिन है, आपका अन्दाज ठीक हो, पर खुफियानवीसों की बहुत पहले की ऐसी इत्तिलायें मौजूद हैं जिनसे उसके साजिश में शामिल होने का पता चलता है। फिर दुश्मन का लड़का दुश्मनी करने आयेगा, दोस्ती करने नहीं।"

मिलने की आवश्यकता है। इसका ठीक प्रबन्ध करो। मिलने पर और बातें बताऊँगा।

—दर्शनाभिलाषी, वि०।"

पढ़ने के बाद अमीर ने पत्र लिफाफे में रख दिया और अरबी गोंद के घोल से लिफाफे के किनारे को सफाई से चिपका दिया। फिर उसे पाँच अशर्फियों के साथ रामपाल के हाथ पर रखते हुए कहा—"तुम सचमुच में बड़े काम के आदमी हो। तुम्हारा नाम सल्तनत के आला खैरख्वाहों में दर्ज किया जायगा और जल्द ही तुम हुजूर के एक्कों में शामिल कर लिये जाओगे। वहाँ तुम्हें ऊँची तलब मिलेगी। इंनाम और खिलअत की भी कमी न रहेगी। मगर सुनो, इस खत का जो जवाब मिले, वह भी मुझे जरूर दिखलाते जाना। अगर वह काम का हुआ तो तुम्हें दस अशर्फियाँ इनाम में मिलेंगी।"

रामपाल सलाम करके खुशी-खुशी बाहर चला गया। अमीर के कहने के मुताबिक जब वह दोबारा लौटकर आया तो उसके हाथ में इस बार भी चम्पई रंग का एक लिफाफा था। लेकिन इस बार न उस पर मोहर थी, न केवड़े की महक। अमीर ने उसे आसानी से पानी लगाकर खोल दिया। उसमें लिखा था—"आज मेरे पिता जी मुझसे मिलने आयेंगे। मैं बहुत डर रही हूँ। सुनती हुँ कि वे बहुत बड़े आदमी हैं। कहीं मुझसे कोई भूल न हो जाय। मैं तो यह भी नहीं जानती कि उनका किस तरह अभिवादन करना चाहिये। न जाने वे मुझसे क्या कहेंगे। आज मैं बड़ी परेशानी में हूँ। आज भेंट करने का अवसर नहीं मिल सकेगा। कल प्रयत्न करूँगी। कल पिता जी की भेंट का सारा हाल भी मालूम हो जायगा। फिर आप जो कुछ कहेंगे, उसे निबाहने का प्रयत्न करूँगी। आप अपने स्वास्थ्य का पूरा-पूरा ध्यान रखिए। कहीं ऐसा न हो कि एक नई जगह में बीमार पड़ जायँ। मैं प्रसन्न हूँ। भेंट होने पर बातें विस्तार से होंगी।

—आपकी दासी नन्दिनी।"

"मासूम बच्ची !" कहकर अमीर ने एक गहरी साँस ली और पत्र को पहले की तरह लिफाफे में बन्द कर दिया। फिर उसने दस अशर्फियों के साथ लिफाफे को रामपाल के हाथ पर रखते हुए कहा—"जल्द जाकर इसे अपने मालिक के पास पहुँचा दो।"

डेढ़ पहर रात बीत चुकी थी। बाजार की रौनक बहुत कुछ रात की गोद में विलीन हो गई थी। जो दो-चार दूकानें खुली रह गई थीं, वे भी अब धीरे-धीरे बन्द होती जा रही थीं। बड़ी कोठियों में टट्टों के पीछे चौमुखी दीपक जलाये मुनीम लोग दिन भर का हिसाब मिलाने में व्यस्त थे। महल के सदर फाटक बन्द हो चुके थे और उनके सामने पहरेदार पहरा दे रहे थे। महल के जँगलों से प्रकाश छन-छनकर बाहर आ रहा था। बाहर बन्द होने पर भी, ऐसा प्रतीत होता था, महल का भीतरी जीवन अब प्रारम्भ हुआ है।

इसी समय दो सवार चौरंगी सराय के सामने रुके। इनमें से एक अपने बहुमूल्य परिधान, ऊँचे तुर्की घोड़े और उसके सुनहले साज से कोई दरबारी अमीर ज्ञात होता था। वह कुछ आगे बढ़ा और उसने अपना घोड़ा ठीक फाटक के पास लगा दिया—मानो वह अपनी उपस्थिति से सराय के दरबान को आतंकित करना चाहता हो।

सवार की ओर निगाह जाते ही दरबान ऐसा चौंक पड़ा, मानो पैर के नीचे साँप आ गया हो। उसने तुरन्त बड़े अदब से सलाम किया और फिर आगे बढ़कर घोड़े की बाग थाम ली। वह व्यक्ति घोड़े से उतर पड़ा और सीधा सराय में चला गया।

दूसरा सवार भी जो अपने छोटे घोड़े, मामूली पोशाक और ढाठे से बँधी दाढ़ी के कारण पहले सवार का नौकर-सा लगता था, घोड़े

से उतर पड़ा। उसने अपना घोड़ा पास खड़े साईस के लड़के को थमा दिया। कुछ क्षण तक वहीं रुककर उसने मानो किसी की प्रतीक्षा की। फिर साधारण अन्यमनस्क भाव से चहलकदमी करता हुआ वह सलीमशाह के महल में चला गया। उसके भीतर होते ही पूर्व-परिचित ईरानी ड्योढ़ीवान ने फाटक को बाहर से बन्द कर दिया।

नन्दा इस समय अपनी रुचि और समझदारी के अनुसार वस्त्राभूषणों से सजकर पिता के आने की प्रतीक्षा कर रही थी। सामने के सहन में भारी जूतों की आहट पाकर वह चौंक पड़ी और उसका हृदय जोर-जोर से धड़कने लगा। उसने झाँककर बाहर देखा। कहीं कुछ दिखाई न दिया। बाहर का प्रकाश पहले से ही बुझा दिया गया था।

जूतों का शब्द सहन के दक्षिणी भाग की ओर बढ़ता गया और कुछ दूर पर जाकर रुक गया। नन्दा के शयनागार का एक द्वार इसी ओर था।

इसी समय भद्र महिला सहसा नन्दा के कमरे में आई और बोली—"मुबारक कदम। बेटी नन्दा, तू तैयार है न, जापनाह तुझसे मिलने आ पहुँचे।"

'जापनाह! नन्दा कुछ आतंकित हो उठी। क्या कोई बादशाह उससे मिलने आये हैं। क्या उसके पिता बादशाह हैं। उसने डरते-डरते महिला से कहा—"मैं तैयार हूँ, माता जी; पर जापनाह मुझसे मिलने क्यों आये हैं?"

"वे तेरे पिता जो हैं, पगली!"

"मेरे पिता जी 'जापनाह' हैं?"

"और नहीं तो क्या वे कोई मामूली आदमी हैं। वे तुझसे तेरे शयनागार में भेंट करेंगे। चल, वहीं चलकर प्रतीक्षा कर।"

"पिता जी शयनागार में भेंट करेंगे!" नन्दा का रोम-रोम सिहर उठा। बिखरे साहस को बटोरने का प्रयत्न करते हुए उसने पूछा—"आप भी मेरे साथ रहेंगी न, माता जी?"

"उनकी आज्ञा ऐसी नहीं है।"

"तो फिर अकेली मैं भी न जा सकूँगी।"

"क्यों?"

"मुझे बड़ा डर मालूम होता है।"

"पागलों की-सी बातें नहीं करते।"—यह कहते हुए महिला ने हाथ पकड़कर नन्दा को उठाया और उसे शयनागार की ओर ले गई। फिर उसे एक पलँग पर बैठने का संकेत करती हुई वह स्वयं कमरे के प्रकाश को बुझाकर बाहर निकल आई। नन्दा मन ही मन भगवान् का ध्यान करने लगी। उसे प्रतीत होता था कि वह किसी ऐसे फन्दे में आ फँसी है, जिससे छुटकारा पाना उसकी शक्ति से बाहर है।

अभी नन्दा पलँग पर बैठी ही थी कि कमरे के पीछेवाला द्वार खुला और एक छाया-मूर्त्ति ने आकर ड्योढ़ी पर खड़े-खड़े प्रश्न किया—

"सब इन्तजाम माकूल है न, बेगम मुअजिमा?"

"सब ठीक है, जापनाह।"

"पहरा सब दुरुस्त है न?"

"जापनाह विश्वास करें कि सब ठीक है।"

"रोशनी—?"

"श्रीमान् के प्रताप के सिवा और कोई रोशनी नहीं हैं।"

"और वह लड़की?"

"अपनी ख्वाबगाह में श्रीमान् के स्वागत की प्रतीक्षा कर रही है।"

"क्या वह वैसी ही मासूम और हसीन है जैसी कि मुझे बतलाई गई है?"

"उससे भी ज्यादा, बन्दा परवर।"

नन्दा चौंक पड़ी। ये शब्द पिता के नहीं हो सकते। वह उठकर पलँग के नीचे खड़ी हो गई और घने अन्धकार में आँखें फाड़ फाड़कर कुछ देखने का प्रयत्न करने लगी।

भारी जूतों के शब्द से नन्दा ने अनुभव किया कि एक छाया-मूर्ति धीरे-धीरे कमरे के मध्यभाग की ओर अग्रसर हो रही है। उसका सारा शरीर सन्न हो गया। उसे ऐसा लगा मानो वह बेहोश हो जायगी। उसने पीछे घूमकर पुकारा "माता जी!"

इसका कोई उत्तर न मिला।

पदचाप अब उसके पास तक पहुँच चुकी थी। किसी के भारी श्वास-प्रश्वासों का अनुभव वह अन्धकार की नीरवता में भी कर रही थी।

"किधर है तू—जरा अपने हाथ का सहारा देना।" छाया-मूर्ति ने भारी पर मंद कंठ-स्वर में कहा।

नन्दा ने अपना काँपता हुआ हाथ आगे बढ़ा दिया।

"तेरा नाम क्या है?"

"नन्दा।" नन्दिनी ने अर्धस्पष्ट स्वर में कहा।

"क्या डर लग रहा है?" नन्दा के स्वेद-पूर्ण कम्पित हाथ से अनुमान करते हुए छाया-मूर्ति ने पूछा। नन्दा ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह अनुभव कर रही थी कि उसके हाथ को पकड़नेवाला हाथ भी काँप रहा है।

"डर मत।" कहकर छाया-मूर्ति ने अपना दूसरा हाथ आगे बढ़ाया और टटोलकर नन्दा के सिर पर रखा। नन्दा कुछ झिझकी। फिर भी वहीं खड़ी रही।

"इधर आ मेरे पास!"

नन्दा ने कुछ पीछे हटने का प्रयत्न किया। पर उसका हाथ छाया-मूर्ति के हाथ में था। विवश होकर उसने फिर पुकारा—"माता जी, कहाँ हैं आप?"

कोई उत्तर नहीं मिला।

"मेरा हाथ छोड़ दीजिए। मैं आपके पैरों पड़ती हूँ।"

"पागल लड़की, सुन। तू क्यों डर रही है। चल, पलँग पर बैठ। बेगम मुअजिमा, सब किवाड़ होशियारी से बन्द रहें।"

नन्दा अपने स्थान से हिली नहीं।

"तू मेरी बेटी है, पगली!" छाया-मूर्ति ने आश्वासन के स्वर में कहा।

"जापनाह।"

"तेरे मुँह से यह लफ्ज अच्छा नहीं लगता।"

"क्षमा कीजिए। मैं नहीं जानती कि आपको क्या कहूँ। गरीब-परवर, आलीजाह, हुजूर...?"

"सिर्फ चाचा कहना काफी होगा।"

"चाचा जी लेकिन क्या आप मेरे पिता नहीं हैं?" नन्दा ने निराशा-मिश्रित स्वर में प्रश्न किया।

"यह कैसी बातें करती है बेटी। अगर मैं अपने को तेरे जैसी लायक लड़की का चाचा भी साबित कर सका तो बड़ी बात होगी। तेरे अब्बाजान का मुझ पर बहुत बड़ा कर्ज है।"

"अब्बाजान का कर्ज! मुझे ठीक-ठीक बतलाइए चाचा जी। मैं जो कुछ समझ रही थी, या जो कुछ मुझे बतलाया गया था, क्या वह सच नहीं है?"

"सब कुछ सच है बेटी। अपनी अपनी समझ के मुताबिक एक ही चीज के अलग अलग पहलू देखे जा सकते हैं और एक ही चीज की बाबत तरह-तरह की राय कायम हो सकती हैं। पर मैं चाहता हूँ कि तू मेरे साथ मेरी नजर से नजर मिलाकर—चीजों को देखे। अपने पाकदामन और नेक पिता की छाया तू मुझमें जरूर पायेगी।"

"और माता जी?"

"तुझसे ज्यादा दूर नहीं हैं। सिर्फ पहचाननेवाली नजर की जरूरत है।"

"आप बड़े भले हैं चाचा जी। क्या आप मुझे मेरी मा से मिला देंगे?" नन्दा ने उत्सुकता से प्रश्न किया।

"इसमें मेरी मदद की जरूरत न होगी। तू खुद उससे मिलेगी।"

"आप लोगों ने अब तक मेरी खबर क्यों नहीं ली, चाचा जी?"

"मैं यहाँ नहीं था बेटी। हाँ, तेरी मा जरूर यहीं थी। पर वह भी ऐसी हालत में नहीं थी कि तेरी खबर ले सकती। तुझे थान में छोड़ आने के बाद उसके लिए एक जगह जमकर रहना मुश्किल हो गया। बेचारी बारह-तेरह साल तक...!"

"क्या उससे अनजान में कोई अपराध हो गया था, चाचा जी?" नन्दा ने बीच में ही बात काटकर पूछा।

"तकदीर का सितारा खिलाफ हो गया था, बेटी। वर्ना उसके जैसी देवियाँ किसी का क्या अपराध कर सकती हैं। तुझसे बातें करते मुझे बहुत अच्छा लगता है, नन्दा। आ बेटी, मेरी गोद में आकर बैठ जा।"

इस बार नन्दा आपत्ति न कर सकी। उसने अपना सिर चाचा जी की गोद में रख दिया।

उसकी रेशम जैसी मुलायम केश-राशि से खेलते हुए छाया-मूर्ति ने कहा—"तू अपनी मा जैसी ही खूबसूरत और भोली-भाली है।"

नन्दा कुछ क्षण तक वात्सल्य का रस लेती रही। सहसा उसके स्मृतिपट पर विजय का आलोक चमक गया। उसने कुछ सँभलकर कहा—"अब फिर आप मुझसे कब मिलेंगे, चाचा जी? आपसे कुछ जरूरी बातें करनी हैं।"

नन्दा के स्वर में इस बार चपलता थी, शिशुसुलभ भोलापन नहीं था। छाया-मूर्ति को स्वर के इस परिवर्तन पर आश्चर्य नहीं हुआ। उसने कहा—"ठीक तो नहीं कह सकता, पर अब मुलाकात अकसर हुआ करेगी। तुझे यहाँ पर सब तरह का आराम तो है न?"

"हाँ, मैं बड़े मजे में हूँ। पर कृपा करके आप शीघ्र-शीघ्र दर्शन देते रहिए। मैं एक खास विषय में आपसे परामर्श करना चाहती हूँ। बताइए, कब मिलेंगे आप?"

नन्दा के भोले-भाले हृदय से सरल रहस्य बाहर आने को व्याकुल हो रहा है, यह भाँपने में छाया-मूर्ति को देर न लगी। उसे लगा कि कुछ देर और ठहरने पर नन्दा अपना रहस्य अपने आप खोल देगी। अतः उठने का प्रयत्न करते हुये कहा—"अभी नहीं, इस समय कई जरूरी काम हैं। मैं जल्द ही फिर आने की कोशिश करूँगा। तब मैं कुछ ज्यादा देर ठहरूँगा और तेरी सारी दास्तान सुनूँगा।"

"अब की बार दिन में आइयेगा चाचा जी—या कम से कम ऐसे समय में जबकि कुछ प्रकाश तो बना रहे!"

उत्तर में छाया-मूर्ति ने हँस दिया। फिर उठकर खड़ी हो गई और उसकी मंद पदचाप से नन्दा ने अनुभव किया कि वह उसके पास से दूर हटती हुई धीरे-धीरे पश्चिम के द्वार की ओर जा रही है। कुछ क्षण बाद पीछे के द्वार के बाहर से बन्द किये जाने का शब्द सुन पड़ा और फिर हाथ में प्रकाश लिए भद्र महिला ने पीछे से पुकारा—"जाग रही है न, बेटी नन्दिनी?"

———

चाचा जी के चले जाने पर नन्दा की अजीब हालत हो गई। वह परिस्थिति को ठीक से समझ नहीं पा रही थी। उनके प्रारम्भ के व्यवहार से वह सचमुच डर गई थी। शारीरिक सौन्दर्य के विषय में वे इस तरह प्रश्न करेंगे और इस तरह अँधेरे कमरे में उससे मिलना चाहेंगे, इसका उसे स्वप्न में भी गुमान नहीं था। बातें करने के लिए उसने न जाने क्या-क्या सोच रखा था, पर वह कुछ भी न कह पाई। परिस्थिति ने उसे कुछ दूसरे प्रकार की बातें करने को विवश कर दिया। वह ऐसी एक भी बात नहीं कर सकी जिससे किसी निश्चय पर पहुँचा जा सकता। वह सन्देह में पड़ गई कि जिनसे वह मिली है, वह वास्तव में उसके कोई होते भी हैं या नहीं।

चाचा जी की इस भेंट से वह अधिक प्रभावित नहीं हुई। कारण, उसने सोचा कुछ और था, हुआ कुछ और। वह महिला से भी भेंट के संबंध में कुछ न कह सकी और बुलाई जाने पर गुम-सुम-सी जाकर खड़ी हो गई। उसे डर था कि भेंट के संबंध में प्रश्न किये जाने पर वह क्या उत्तर देगी। पर महिला ने उससे कोई-प्रश्न न किया। यह कहकर कि अब रात बहुत जा चुकी है, थोड़ा-सा गर्म दूध पीकर नन्दा को सो जाना चाहिये। शयनागार की ओर संकेत करके वह चली गई।

नन्दा दूध पीकर पलंग पर लेट गई, पर उसे नींद न आई। बीती हुई घटनायें बार बार उसके मानसपटल पर चित्रित होने लगीं। उसे लगा मानो वह एक जाल में फँस गई है जिससे मुक्ति पाना असंभव है।

अपने मा-बाप के संबंध में उसने विचारों और कल्पनाओं का जो महल खड़ा कर लिया था, उसकी नींव अब हिलती दिखाई देती थी और इस महल में रहने को नन्दा का मन अब नहीं तैयार हो रहा था। जहाँ की प्रत्येक बात रहस्य-पूर्ण है; जहाँ अपने निकट-संबंधी भी खुलकर बात नहीं करते; जहाँ अपने आत्मीयों से भी इच्छानुसार नहीं मिला जा सकता, वहाँ रहकर वह क्या करे!

महल में रहनेवाली महिला से भी नन्दा अब तक ठीक परिचित न हो पाई थी। यह सच है कि नन्दा के साथ उसका व्यवहार आदरपूर्ण था, पर उसमें ऐसा कुछ भी नहीं था, जिसकी अभिलाषा नन्दा को थी। वहाँ शिष्टाचार था, गौरव था, सम्मान था—सब कुछ था, पर आत्मीयता नहीं थी। जिसके लिए आश्रम से उसे इतनी दूर लाया गया था, वह नहीं मिला, आगे मिल सकेगा, इसमें भी संदेह था।

इस दशा में क्या यह उचित न होगा कि वह व्यर्थ की इस सुख-कल्पना को छोड़कर जो कुछ प्राप्य है, उसकी ओर बढ़े। लेकिन यदि वह यहाँ से चली जाना भी चाहे तो कहाँ जायगी? द्वार पर खड़ी वह तातारी बाँदी और वह इरानी दरबान क्या उसे बाहर जाने देंगे? फिर यदि उन्होंने जाने भी दिया तो वह जायगी कहाँ? कात्यायनी माई के स्थान पहुँच सकना दुष्कर है। विजय के पास वह जा सकती है, पर विजय इसे पसन्द करेंगे या नहीं, यह कौन जाने। फिर विजय भी आजकल आवश्यकता से अधिक रहस्यपूर्ण हो रहे हैं। यह सच है कि वे उसे प्रेम करते हैं। सबसे अधिक उसे चाहते हैं, पर वे जो कुछ करने जा रहे हैं, उसका मूल्य उनके निकट सबसे अधिक है। वह स्वयं उनके कार्य में बाधक नहीं बनना चाहती। जो अपने उत्तरदायित्व को भी दृढ़ता से निवाह सके, वह पुरुष क्या। ऐसे पुरुष से नन्दा प्रेम नहीं कर सकती। कर्त्तव्य-भ्रष्ट विजय को वह स्वयं कभी न पसन्द करेगी। उनके मार्ग में बाधा न डालते हुए शान्तिपूर्वक उनकी सफलता की प्रतीक्षा करनी चाहिए। यदि सफलता मिल गई तो वह

रानी बनेगी—एक कर्मवीर की अर्धाङ्गिनी। वह सुख, वह गौरव, आज की सब चिन्ता को भुला देगा।

पर आज की चिन्ता भी निराधार नहीं है। आसपास जो कुछ दिखाई दे रहा है, उसमें विजय का कोई स्थान नहीं है। उसके चारो ओर जो नई परिधि बन रही है, उसमें चाचा जी हैं, वह महिला है, महल है, धन-सम्पत्ति है, पर विजय नहीं हैं। पहले वह जिस स्थान पर थी, वह स्थान विजय की निर्मित परिधि के भीतर था। नन्दा को ऐसा लगा कि वह उस परिधि से निकालकर सहसा दूसरी परिधि के भीतर डाल दी गई है। दोनों परिधियाँ कालचक्र के साथ पृथक्-पृथक् तेजी से घूम रही हैं। उनके घूमने की गति इतनी तेज है कि नन्दा की कल्पना उसका अनुसरण नहीं कर पाती। दोनों परिधियाँ वात्याचक्र की भाँति घूमती हुई एक-दूसरे से प्रतिक्षण दूर से दूरतर होती जा रही हैं।

इससे आगे नन्दा कुछ न सोच सकी। दूसरे दिन वह कुछ देर से जगी। उसे अपने मुंह का स्वाद कुछ फीका-कड़वा लगा और सिर में पीड़ा का अनुभव हुआ। शायद उसे रात को ज्वर हो आया हो। आश्रम में तो ऐसा कभी नहीं होता था। बड़ी बुरी जगह है यह। यदि यही हाल रहा तो......!

बैठे ही बैठे उसने पिछवाड़े की खिड़की की ओर दृष्टि डाली। एक सफेद लिफाफा पड़ा था। प्रसन्न होकर नन्दा ने उसे उठा लिया। विजय का पत्र था। उसमें लिखा था—

"नन्दा,

अब सहना कठिन हो रहा है। तुमसे दूर जीवन का प्रत्येक पल मुझे व्यर्थ लगता है। आज की रात मैं तुमसे मिलना चाहता हूँ। आशा है तुम इसका प्रबन्ध कर सकोगी। पहर रात जाने से पहले मैं तुम्हारे द्वार पर पहुँच जाऊँगा। आगे तुम्हारी चतुरता पर निर्भर है।"

पत्र को चोली में छिपाकर उसने कमरे का द्वार खोला। धूप आँगन तक फैल रही थी। वह स्नान-गृह की ओर चली गई।

उसे विश्वास था कि कल की भेंट के सम्बन्ध में महिला आज उससे प्रश्न करेंगी। जब भी वह सामने पड़ती, नन्दा को लगता मानो अब प्रश्न हुआ। पर दिन समाप्त हो चला, दिन के अन्य कार्य भी पहले की भाँति होते गये, पर भेंट के सम्बन्ध में उससे किसी ने कुछ न पूछा। आज वह कल से अधिक फुर्ती अनुभव कर रही थी और क्षण-क्षण धूप की ओर देखती जाती थी। वह चाहती थी कि बीच का समय किसी अदृश्य शक्ति की प्रेरणा से गायब हो जाय और सन्ध्या अविलम्ब आ जाय।

विजय से मिलने का प्रश्न साधारण नहीं था। यों विजय बगल-वाली गली से आकर उस खिड़की की राह उसके पास आ सकता था, जिससे उसका पत्र आता-जाता था, पर इतना आगे बढ़ चुकने पर उसे इस प्रकार का मिलन पसन्द आयेगा, यह सन्दिग्ध था। सदर दरवाजे से भीतर बुलाने के लिए महिला की स्वीकृति अनिवार्य थी। परमहिला इसके लिए शायद ही स्वीकृति देंगी। यदि उससे कहा गया और उसने नाहीं कर दी तो—फिर कहा भी किस बहाने से जायगा। यदि उसने यह पूछा कि वह व्यक्ति जिससे मैं भेंट करना चाहती हूँ कौन है तो क्या उत्तर दूँगी। उसे अपना सम्बन्धी तो बतलाया नहीं जा सकता। स्थान से उसका संबंध जोड़ सकना भी कठिन है। यात्रा के समय का परिचय कुछ मूल्य नहीं रखता। क्या कहकर महिला को स्वीकृति के लिए राजी किया जायगा। नन्दा को कोई बहाना सूझ नहीं पड़ता था।

सन्ध्या ज्यों-ज्यों निकट आ रही थी, उसकी बेचैनी बढ़ती जा रही थी। आखिर उसे अस्वाभाविक और अव्यवस्थित रूप में देखकर महिला ने ही पूछा—"किस चिन्ता में पड़ी है नन्दा?" "आज तू रोज की तरह हँस-बोल नहीं रही है?"

"सवेरे से एक बात सोच रही हूँ, माता जी !"

"क्या ?"

"... ......"

"क्या सोच रही है, बता न आखिर ?"

"यही कि मुझे कब तक यहाँ इस तरह रहना होगा ?"

"क्यों, क्या यहाँ किसी तरह का कष्ट है ?"

"आपकी दया से कष्ट तो कुछ भी नहीं है, पर न जाने क्यों मेरा जी घबड़ा रहा है मुझे लगता है कि यदि मैं यहाँ कुछ दिन और रही तो मर जाऊँगी। रात भर मेरे सिर में तेज दर्द होता रहा...!"

"तो बालाखाने पर चली जाया कर। कुछ देर ताजी हवा में टहला कर। या फिर पीछे की बगीची में निकल जाया कर। हम लोग तो पींजड़े की चिड़ियाँ हैं। हमें इसी तरह जिन्दगी काटनी होती है। मैं हकीम जी को बुला भेजती हूँ।"

"मैं दवा नहीं खाऊँगी। मैंने कभी दवा नहीं खाई है।"

"नहीं खाई है तो क्या आगे भी नहीं खायेगी। यह भी कोई बात है। जिन्दगी में हमें बहुत से ऐसे नये काम करने पड़ते हैं, जिन्हें हम पहले कभी नहीं करते।"

"कहीं जाने या दवा खाने की जरूरत नहीं पड़ेगी। मैं ऐसे ही अच्छी हो जाऊँगी। आज मुझसे मिलने शायद कोई आयेगा ?"

बिना सोचे-समझे ही नन्दा यह कह गई। अपनी जल्दबाजी पर उसे भी झुँझलाहट आ गई।

"कोई मिलने आयेगा आज ? पर मुझे तो इसकी बाबत कुछ बताया नहीं गया ? क्या कल जापनाह ने तुझसे कुछ कहा था ?" नन्दा की इस अप्रत्याशितबात से शंकित होकर महिला ने प्रश्न किया।

"नहीं चाचा जी ने कुछ नहीं कहा था। वे उन्हें नहीं जानते ?"

"उन्हें किन्हें ?"

"एक मेरी जान-पहचान के आदमी हैं ?"

"तेरी जान पहचान के आदमी ?" महिला ने और अधिक सन्देह में पड़ते हुए कहा।

"हाँ, वे हमारे स्थान के पास के ही रहनेवाले हैं। माता शचीदेवी उन्हें अच्छी तरह जानती हैं।"

"क्या स्थान की स्त्रियाँ बाहरी पुरुषों से भी सम्पर्क रख सकती हैं ? क्या वहाँ पुरुषों के लिए आना-जाना सम्भव होता है ?"

"भीतर तो वहाँ दरबान और मजदूर भी नहीं जाने पाते।"

"तो क्या आश्रम की औरतें ही बाहर मैदान में निकलकर दूसरे आदमियों से जान-पहचान करती फिरती हैं ?"

"आप व्यर्थ संदेह कर रही हैं, माता जी। बात यह है कि उनसे हमारा परिचय रास्ते में हुआ था।"

"यानी शचीदेवी को रास्ते में गैर मर्दों से जान-पहचान करने का भी मौका मिल गया।" महिला ने त्योरियों पर बल देते हुए कहा।

"नहीं जान-पहचान तो उनसे अचानक ही हो गई है। बात यह है कि हमारी गाड़ी अटक गई थी। वह भी इधर आ रहे थे। माता जी के प्रार्थना करने पर उन्होंने हाथ लगाकर गाड़ी को निकाल दिया। फिर आगे भी उन्होंने बहुत बार सहायता की। माता जी कहती थीं कि यदि वे साथ न होते तो हम लोग यहाँ तक कभी न पहुँच पाते। कोई रास्ते में ही हमें लूट लेता और मार डालता।"

"पर अब तुम यहाँ सुरक्षित हो। यहाँ लूटे जाने या कत्ल हो जाने का कोई खतरा नहीं है।" कहते हुए महिला ने नन्दा को संदेह-भरी दृष्टि से देखा।

नन्दा को ऐसा लगा मानो उसका सारा शरीर काँप रहा है और

उसके पैरों को काठ मार गया है। उसे ऐसी दृष्टि से पहले किसी ने नहीं देखा था। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह आगे क्या कहे। लेकिन कुछ न कहने से संदेह और भी बढ़ सकता था। अतः उसने अपने मन पर साधारण जोर देते हुए कहा—"मैं चाहती हुँ कि यदि वे आ जायें तो उनके हाथ कुछ पत्र और उपहार स्थान की अपनी सहेलियों को भेज दूँ और माता जी को प्रणाम भी कहला भेजुँ।"

महिला कुछ देर तक सोचती रहीं। फिर बोलीं—"तुझे कैसे मालूम हुआ कि वह कल जानेवाला है?"

"मैं यह नहीं जानती कि वे कल जानेवाले हैं या परसों, या कुछ दिन बाद। पर हम लोगों से विदा होते समय माता शचीदेवी ने उनसे यह कहा था कि जब लौटना तब नन्दा से अवश्य मिलते आना। इसी से मैं सोचती हूँ कि जाते समय वे जरूर मिलने आयेंगे। उन्होंने आगरे में अपना दो दिन का काम बतलाया था। अब दो दिन हो चुके हैं, इसी से मैं सोचती हूँ कि वे आनेवाले ही होंगे।"

"अच्छी बात है। जब वे आयेंगे तब मैं उन्हें भीतर बुलवा लूँगी। तू उनसे मेरे सामने बातें कर लेना।"

नन्दा की रही-सही आशा इस उत्तर से जाती रही। महिला की उपस्थिति में विजय से वह किस प्रकार बातें कर सकेगी। अपनी परवशता पर उसे बड़ा क्रोध आया। साथ ही महिला के इस प्रकार के व्यवहार पर भी उसे बड़ी झुँझलाहट हुई।

अपने को सँभालते हुए उसने कहा—"यह तो ठीक ही है, माता जी। पर क्या आप समझती हैं कि मैं यहाँ की कोई बुराई स्थान को कहला भेजूँगी?"

"नहीं, पर तुम सयानी हो और मैं किसी बाहरी आदमी से तुम्हारी मुलाकात उचित नहीं समझती।"

"पर कल चाचा जी से भेंट होते समय तो आप मेरे पास खड़ी तक नहीं हुई थीं ?" नन्दा ने व्यंग्यपूर्ण स्वर में कहा।

"वे कोई गैर नहीं थे, इसलिए।"

"मेरे लिए वे अजनबी तो थे ही। मैं तो डर से काँप उठी थी। और गैर तो वे भी नहीं हैं।"

"मैं तो उन्हें नहीं जानती।"

"यानी आप जिससे चाहेंगी जबरन मुझे उससे मिलना होगा। जिसे नहीं चाहेंगी उससे नहीं ?"

महिला ने आँखें उठाकर नन्दा की ओर देखा। चेहरा रोष अपमान और खीसी के कारण तमतमा आया था और आँखों में अवज्ञा का भाव झलकने लगा था। उसने कुछ उत्तर नहीं दिया और नन्दा के भाव-परिवर्तन को आश्चर्य के साथ एकटक देखती रही।

कुछ देर तक उत्तर की प्रतीक्षा में नन्दा खड़ी रही। फिर वह धम-धम करती हुई अपने सोने के कमरे में चली गई और भीतर से कुँडी चढ़ाकर पलँग पर गिर पड़ी। उसके रोने का शब्द आवरण की अवहेलना करता हुआ बाहर से साफ सुनाई देता था।

महिला ने इस रोने-धोने पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। वह चुपचाप उठी और अपने कमरे में जाकर शमादान के सामने बैठकर एक पत्र लिखने लगी।

भद्र महिला के हृदय में भावों का तूफान उठ रहा था। नन्दा का आशय उसकी समझ में नहीं आ रहा था। एक तरह से नन्दा ने मुहजोरी की थी। यह उसकी मर्यादा के लिए खुली चुनौती थी। उसके अधिकारों का तिरस्कार था। नन्दा को उसकी आज्ञा माननी ही होगी। अन्यथा उसे अपने किये का फल भुगतना होगा।

लेकिन नन्दा पर उसका अधिकार भी क्या है। नन्दा क्यों उसका नियंत्रण स्वीकार करे। यह ठीक है कि वह नन्दा की संरक्षिका है। संरक्षिका का शासन नन्दा को मानना चाहिए। पर वह संरक्षिका बन ही कैसे गई। निश्चय ही नन्दा पर उसका अधिकार वैसा नहीं है, जैसा कि वह चाहती है। नन्दा उसे नहीं समझ सकती। वह स्वयं भी नन्दा को नहीं समझा सकती।

भद्र महिला का हृदय कचोटने लगा। जब नन्दा पर उसका नैसर्गिक अधिकार नहीं है, तब इस बनावटी अधिकार से काम भी कितने दिन चल सकता है! वह अधिकार चाहती है, ठीक उसी रूप में जिस रूप में कि प्रकृति ने उसे दिया था; और जिसे वह खो चुकी है। धन और वैभव से वह अधिकार नहीं मिलता। क्या वह नन्दा के सामने अपने हृदय को खोलकर रख दे। ऐसा करने से क्या वह अधिकार उसे प्राप्त हो जायगा? नन्दा उसे अपने सामने देखकर सिर झुका देगी? क्या 'उस रहस्य के प्रकट हो जाने से नन्दा का हित

भद्र महिला का चित्त निर्बन्ध हो गया। समय की सीमा को पार कर वह उस युग में जा पहुँचा जब कि वह नन्दा जितनी ही बड़ी थी। माँ-बाप उसे अपनी आँख की पुतली समझते थे। उद्यान की लताओं के साथ-साथ काश्मीर के एक राजघराने में वह बढ़ रही थी। सगे-सम्बन्धी सब उसे राजरानी कहते थे। नन्दा को अपने सगे-सम्बन्धियों का वह स्नेह मिला ही कहाँ। वह तो पराये हाथों में पली। वह क्या जाने कि माँ की ममता क्या होती है, माँ का हृदय क्या चाहता है।

भद्र महिला की आँखों से आँसुओं की झरी लग गई। स्मृति का सूत्र पकड़कर कल्पना आगे बढ़ी। धुँधले भूत काल के एक एक जीर्णपट को उठाने लगी। एक दिन वह राजरानी थी—काश्मीर की कलियों-सी लुभावनी। देश भर में उसके नाम की धूम थी। सब उसे अपूर्व सुन्दरी कहते थे।

वह बड़ी हुई। सम्बन्ध के लिए देश-विदेशों से उसके पिता के पास संवाद आने लगे। लखनऊ के महाराज मित्रसेन के यहाँ से भी संवाद पहुँचा। कुल और जाति गौरव के अनुकूल होने के कारण पिता ने इस सम्बन्ध को स्वीकार कर लिया। काश्मीर की उपत्यकाओं को छोड़ राजरानी को लखनऊ आना पड़ा। लखनऊ के राज-प्रासाद की वह ज्योति बन गई—महाराज मित्रसेन के भतीजे रतनसेन की राजरानी!

रतनसेन की वीर मूर्त्ति की कल्पना-मात्र से भद्र महिला की छाती फूल उठी। प्रशस्त ललाट, विशाल वक्षःस्थल, दिव्य कांति। उन्हें देखते ही उसके पिता ने कहा था—"गंगा समुद्र में ही समा सकती है।"

किशोरावस्था में ही रतनसेन ने अपार कीर्ति अर्जित कर ली थी। खानखानाँ ने उन्हें पगड़ी बदल भाई बना लिया था। बादशाह हुमायूँ ने उन्हें बिलग्राम का सूबा बनाकर आगरा और जौनपुर के बीच एक

लोहे की दीवाल खड़ी कर दी थी। उसके कारण पश्चिम की ओर मुँह करके देखने का साहस भी पठानों को नहीं रहा था।

इसी वीरपुङ्गव की प्राणेश्वरी बनने का उसे सौभाग्य प्राप्त हुआ—वह सचमुच की राजरानी बन गई।

भद्र महिला की स्मृति कुछ धुँधली पड़ गई। सामने रखा शमादान भी धुँधला दीखने लगा। उसे प्रतीत हुआ—सामने रतनसेन खड़े हैं। उनकी आँखें लाल-लाल हैं। वे जैसे कह रहे हैं—हमारी राजरानी और थी, तू वह राजरानी नहीं है!

भद्र महिला ने दोनों हाथों से अपनी आँखें बन्द कर लीं।

कुछ देर बाद उसने अपनी आँखें खोलीं। स्मृति ने भी साथ दिया और एक उपद्रवी पठान की मूर्त्ति उसकी कल्पना के सामने आकर खड़ी हो गई। उस पठान का नाम शेरखाँ था। उसने मुगलों के सूबेदार को बंगाल से खदेड़ दिया था और उसकी जगह स्वयं सूबेदार बन बैठा था।

शेरखाँ की शक्ति बहुत बढ़ गई थी। पश्चिम की ओर बढ़ते-बढ़ते वह पटना तक आ गया। आगरा उसका लक्ष्य था। हुमायूँ बादशाह-को तख्त से उतार कर...!

काली-काली भयानक मूर्त्ति, बड़े-बड़े दाँत! भद्र महिला शेरखाँ के इस स्मृतिचित्र से सिहर उठी। उसे ध्यान हो आया अपने पति रतनसेन का। उसकी इस भीरुता पर वे हँस देते थे। वे कहते थे, "राजरानी बड़ी डरपोक है। राजपूतों की स्त्रियाँ ऐसी डरपोक नहीं होतीं।"

उसका डर दूर करने के लिए वे उसे हम्मीर की माँ की कहानियाँ सुनाते, राणा साँगा की वीरता का वर्णन करते। अपने रणमत्त हाथियों के नाम गिनाते, रणदूल्हा घोड़ों का उल्लेख करते, अपने वीर

बाँकुरों की प्रशंसा करते और फिर अपने भुजदंडों पर हाथ फेरते हुए कहते—"देखती हो ये भुजदंड, इन्हें तलवार कभी नहीं काट सकती।"

वह उन्हें ध्यान से देखती रहती। ऐसे विशाल और वज्र-से दृढ़ भुजदंड उसने कहीं न देखे थे। वह अपने वीर पति पर अभिमान करती थी।

अफगानों का उपद्रव बढ़ता जा रहा था। पूर्व का कोलाहल अधिक समीप आ रहा था। रतनसेन ने सीकरी पत्र भेजा और उसके उत्तर की प्रतीक्षा करने लगे। वे चिन्तित थे—हे भगवान्, अब क्या होगा!

पत्र का उत्तर आ गया। लिखा था—पठानों के दाँत तोड़ने के लिए शाहंशाह खुद तशरीफ ले जा रहे हैं। यह जानकर चिन्ता बहुत कुछ कम हो गई। पूर्व की भाँति सन्तोष की साँस ली। हाथियों की लड़ाई, बाज का शिकार, नौका-विहार—सभी पूर्ववत् शुरू हो गये।

फिर अचानक व्याघात! चौसा के पास बादशाह की सेना की पराजय! रतनसेन फिर चिन्तित! आठों पहर सेना सजाने में व्यस्त! युद्ध के लिए हाथी और घोड़ों की तैयारी, जवानों की भर्ती......! एक-एक कर सभी दृश्य चलचित्र की भाँति भद्र महिला के मस्तिष्क में घूम गये। घटनाओं का तेज प्रवाह—कुछ सोचने-समझने का अवकाश नहीं—भारी उथल-पुथल।

दोपहर का समय! रतनसेन की घबराई हुई आवाज—"राजरानी, हमारा सौभाग्य है कि आज सम्राट् हुमायूँ हमारे अतिथि हुए हैं। खानखानाँ और दूसरे सरदार भी उनके साथ हैं।"

चिकों की आड़ में से उसने अपने राजसी अतिथियों को देखा। सम्राट् हुमायूँ की मुद्रा के सामने उसका सिर अपने आप आदर से झुक गया।

एकाएक भद्र महिला का हृदय काँप उठा। उसका सिर चकराने लगा। आगे की घटनायें वह न सोच सकी। उसे लगा, शमादान बुझ-सा रहा है। अंधकार का एक घना काला पर्दा चारों ओर फैलता जा रहा है। उसने हाथ बढ़ाया कि शमादान का प्रकाश कुछ और तेज कर दे। पर काँपते हाथों के स्पर्श से वह बुझ गया। अंधकार पूर्ण रूप से पुञ्जीभूत हो गया। ऐसा प्रतीत हुआ मानो एक भयानक काला दैत्य सम्पूर्ण दृश्य-जगत् को अपने पंजे में दबोचकर बैठने का उपक्रम कर रहा है।

भद्र महिला का दम घुटने लगा। वह निकलकर बाहर की ओर भागी। महल की बाँदियाँ भी घबराई-सी उसके पीछे-पीछे हो लीं। उन्हें देखकर राजरानी कुछ सँभली। वह घूमकर खड़ी हो गई। बाँदियाँ जहाँ थीं, वहीं रुक गईं। उन्हें अपने पीछे न आने का आदेश दे वह धीरे-धीरे खानाबाग की ओर बढ़ गई।

राजरानी हँस रही थी। नरगिस मानो उसी की ओर देख रही थी। चाँदनी की डाल पर बैठे एक पक्षी ने पंख फटफटाये और 'भग-भग-भग' करता हुआ उड़ उया। भद्र महिला का हृदय जोर-जोर से धड़कने लगा। कलेजे पर हाथ रखकर वह एक स्फटिक-शिला पर बैठ गई। धीरे-धीरे चेतना वापस आई। बीते दिनों के दृश्य उभर-उभरकर फिर आँखों के सामने घूमने लगे।

कैसी भयावनी रात्रि थी। इधर सदर फाटक से लुटेरे अफगान घुस रहे थे; उधर खिड़की की राह नौकर-चाकर और बाँदियाँ भागी जा रही थीं। कोहराम मच गया था। उसे समझने में देर न लगी कि उसकी रक्षा करने वाले प्रतापी भुजदण्ड कटकर गिर पड़े हैं। अब वह निराश्रिता है। अन्त में वह भी बाँदियों के पीछे भागी—धन छोड़कर, घर छोड़कर।

नन्दिनी उस समय पेट में थी। तेज चलना असम्भव था। फिर भी वह भागी। इसके सिवा और कोई उपाय नहीं था।

वह फिर भी कुछ उत्तर न दे सकी। उसे मौन देखकर संन्यासिनी ने स्वयं ही अपने प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा—"जगदम्बा उस समय गर्भवती थीं। उनके आत्महत्या करने से पति का वंश नष्ट हो जाता। नारी-जीवन की चरम सार्थकता यही है।"

वह खड़ी न रह सकी। उसके पाँव लड़खड़ाये और वह संन्यासिनी के चरणों में गिर पड़ी। भद्र महिला की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। स्मृति-चित्र छिन्न-भिन्न होकर अंधकार में विलीन हो गये। कुछ देर बाद स्मृति-चित्रों का सिलसिला फिर शुरू हुआ और कात्यायनी माई के थान के दृश्य, एक-एक कर, आँखों के सामने घूमने लगे।

कात्यायनी देवी के सत्संग के दिन उसे अभी तक याद हैं। अपनी कुटिया के आगे बैठकर वे उसे धर्मोपदेश देती थीं। वे उसे गीता-रामायण सुनातीं, जप-पूजन सिखातीं। कुछ दिन इस तरह बीते और उसका मन आश्वस्त होने लगा।

समय आने पर नन्दा का जन्म हुआ। उसके चाँद जैसे मुखड़े को देखकर कात्यायनी देवी बहुत प्रसन्न हुईं। उनके मुँह से निकल पड़ा—"पारिजात पुष्प नन्दनवन में ही फूलता है।"

यदि वह वहीं बनी रहती तो अच्छा होता। पर उसका अभ्यन्तर तो उसका शत्रु हो रहा था।

बाद में उसे जब ज्ञात हुआ कि इस स्थान का निर्माण उन्हीं हाथों से हुआ है जो उसके पति के हत्यारे हैं तो उसने अनुभव किया, स्थान की ईंटें जिस गारे से जोड़ी गई हैं, वह उसके पति के रक्त से ही गीला किया गया है। इसके बाद स्थान में एक क्षण भी रहना उसके लिए भारी हो गया। उसने चाहा, किसी प्रकार काश्मीर में, अपने माता-पिता की गोद में, फिर से पहुँच जाय—शायद वहाँ उसे कुछ शान्ति मिले। पर काश्मीर बहुत दूर था और राजविप्लव के दिन थे। कात्यायनी देवी ने उसे किसी तरह न जाने दिया।

भीतर ही भीतर उसका हृदय पागल हो उठा। एक रात वह निकल भागी। उसने सुना था कि गंगा जी हिमालय से आती हैं। उसका घर भी तो हिमालय में ही है। गंगा जी की राह से वह जरूर अपने घर पहुँच जायगी।

पर वह जन्म-भूमि की गोद तक न पहुँच पाई। होनहार की कठपुतली बनकर वह ऐसी जगह पहुँची जहाँ उसे नहीं पहुँचना चाहिए था। वह रीवाँ पहुँच गई—जलाल खाँ की रखेली के रूप में।

जलाल खाँ शेरशाह का पुत्र। उसके पति के हत्यारे का पुत्र! वह खून का घूँट पीकर रह गई। विवशता के सम्मुख उसे सिर झुकाना पड़ा।

रीवाँ में उस पर क्या बीती, उसकी कल्पना करने का उसे साहस न हुआ। फिर कुछ दिन बाद वह आगरे पहुँच गई। जलाल खाँ अब इस्लामशाह बन गया था। उसके नाम पर खुतबा पढ़ा जाता था, सिक्के ढाले जाते थे। राजरानी अब बेगम मुअज्जिमा बन गई थी।

राजरानी—बेगम मुअज्जिमा—राजरानी—बेगम मुअज्जिमा! उसने कई बार मन ही मन कहा। उसे लगा राजरानी सोना थी, बेगम मुअज्जिमा पीतल है। सोना अब पीतल बन गया है।

उसने अपनी बाँहों को खोलकर देखा। ये बाँहें राजरानी की नहीं हैं। राजरानी की बाँहें तो रतनसिंह की ग्रीवा के साथ ही कटकर गिर गई थीं।

नन्दा का विक्षोभ उसके आँसुओं ने हलका कर दिया। आँसुओं का वेग धीरे-धीरे हिचकियों में बदला और कुछ देर बाद ठण्ढी साँसों में लुप्त हो गया। स्थिर चित्त होने पर वह मन ही मन पूरी परिस्थिति पर एक बार फिर से विचार कर गई। उसे लगा, जैसे माता जी ठीक रास्ते पर हैं और वह भूल कर रही है। एक सयानी लड़की से, जिसकी जिम्मेदारी उनके ऊपर डाल दी गई हो, किसी बाहरी आदमी की मेल-मुलाकात वे पसन्द न करेंगी। पर वह अपने मन को क्या करती। उसने विज़य को विचारतुला पर तौला, मन की कसौटी पर कसा। उसे उसमें कहीं परायापन न दिखाई दिया। पर माता जी को इसका कैसे विश्वास दिलाया जाय। वह कैसे उन्हें समझाये कि अनुकूल जल-वायु में प्रणय का वृक्ष अपनी जड़ें कितनी गहरी पहुँचा चुका है—नहीं तो फिर वह विजय से मिलने का विचार अभी त्याग दे और शान्ति के साथ अनुकूल अवसर की प्रतीक्षा करे। पर यदि इसी बीच विजय को कुछ हो गया तो...!

उसकी आँखों में आँसू आ गये। वह मन ही मन अपने आपको कोसने और विजय का कुशल मनाने लगी। इसी समय उसे अपने चाचा का ध्यान आ गया। पता नहीं, चाचा जी इस विचार को कैसा समझेंगे। योग्य पात्र को कन्या देना सभी चाहते हैं। वह योग्य पात्र यदि अनायास भाग्य से मिल जाय तो इससे उन्हें आनन्द ही होगा। पर योग्य पात्र की कसौटी सबकी अपनी-अपनी होती है। चाचा जी और मेरी

माता जी—यदि वे कहीं हुईं—तो मेरे विवाह के लिए चिन्तित अवश्य होंगी। मैं सबसे पहला काम यही करूँगी कि उनसे भेंट होने पर उन्हें इस चिन्ता से मुक्त कर दूँगी। मैं कह दूँगी कि मैं स्वयंवरा हूँ। सीता और सावित्री की भाँति मैंने अपना वर आप चुन लिया है। हिन्दुओं में कन्या एक बार ही दी जाती है। मुझे मेरे निश्चय से कोई नहीं डिगा सकता। यदि मेरा विवाह किसी के साथ होगा तो विजय के साथ—नहीं तो नहीं।

वह इन्हीं विचारों में तल्लीन थी कि गली की ओर की खिड़की पर हलकी-सी थाप पड़ी। उसने उठकर खिड़की खोल दी। विजय सामने था। नन्दा का रोम-रोम सिहर उठा। बिना एक क्षण का विलम्ब किये उसने हाथ पकड़कर विजय को भीतर खींच लिया और फिर खिड़की बन्द कर दी। विजय की उपस्थिति ने मानो उसकी सारी चिन्ताओं और सारे मिथ्या भय को दूर कर दिया। वह एकटक विजय के मुख की ओर देखने लगी।

उसका हाथ अपने हाथ में लेते हुए विजय ने कहा—"तुम्हारा महल तो बड़ा भव्य है, नन्दा। इसका साज-सामान भी बड़ा कीमती है।"

"माता जी कहती थीं कि यह सामान पुराना हो गया है। अगले वर्ष नया सामान मँगाया जायगा।" आँसू पोंछते-पोंछते नन्दा ने कहा।

तुम्हारे ये बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण बतला रहे हैं कि तुम्हारे माता-पिता बहुत धनवान हैं।"

एक फीकी मुस्कान नन्दा के ओंठों पर खेल गई।

"फिर भी तुम प्रसन्न नहीं दिखाई देती?" विजय ने कहा।

"और तुम भी तो दुबले हो रहे हो?"

"तो क्या हमारी और तुम्हारी परेशानी का एक ही कारण है?"

कहकर विजय मुस्करा दिया। नन्दा ने भी हलकी मुस्कराहट से उसका उत्तर दिया।

"देखता हूँ, तुम कुछ ही समय बाद रानी बनने जा रही हो। तब तो तुमसे भेंट करना भी दुष्कर हो जायगा। आज ही घण्टों से इस गली के चक्कर लगा रहा हूँ। समझ में ही न आता था कि किधर से तुम्हारे दर्शन होंगे।"

नन्दा ने मुस्करा कर कहा—"यह तो पुराना अभ्यास है। वहाँ भी यही सब करना होता था तुम्हें।"

"पर वहाँ बात दूसरी थी। वहाँ समझता था कि माता जी से छुटकारा पाने में तुम्हें विशेष कठिनाई न होगी। यहाँ तो...!"

"इसकी चिन्ता न करो विजय, कन्या और गऊ के भाग्य में बन्धन तो विधाता ने लिखा ही है।"

"स्नेह का बन्धन मीठा होता है, नन्दा ?"

"साथ ही कठोर भी !"

दोनों के मुख पर एक साथ मुस्कराहट खेल गई।

"जानते हो, यहाँ मुझे क्या-क्या मिला है ?" नन्दा ने बाल-सुलभ भोलेपन से कहा।

"कुछ देख रहा हूँ और कुछ के विषय में अनुमान कर सकता हूँ। शेष तुम्हें बतलाना होगा।"

"अच्छा, क्या जानते हो, पहले तुम बताओ !"

"बढ़िया महल, दासियाँ, हीरे-जवाहरात के आभूषण, ढेरों बढ़िया-बढ़िया वस्त्र !"

"ऊँह इतना ही ?"

"रुपया-पैसा, बढ़िया भोजन !"

"तब तुम बहुत कम जानते हो।"

"आगरे का सिंहासन !"

"धत्, नहीं नहीं, इससे भी बढ़कर...!"

"स्वर्ग-पाताल का राज्य !"

"तुम तो मेरी हँसी कर रहे हो ।"

"तुम्हीं बताओ न फिर ?"

"चाचा जी !"

"चाचा जी...?"

"हाँ, कल रात उनसे भेंट हुई थी ।"

"बधाई है । ईश्वर बड़ा दयालु है । मेरी चिन्ता बहुत कुछ हलकी हो गई । वे अब तुम्हारी खबर लेते रहेंगे ।"

"पर दूर से ही ।"

"क्या वे कहीं अन्यत्र रहते हैं ?"

"नहीं, पर शायद संसार हम दोनों को अलग ही रखना चाहता है ।"

"कोई असाधारण बाधा होगी । संभव है, खानदानवालों का भय हो ।"

"मैं उस भेद को नहीं जानती हूँ ।"

"भेद कुछ न कुछ जरूर है । मै चाहता हूँ कि यदि तुम्हारे चाचा जी ने किसी को बताने से मना कर दिया है तो तुम मुझे भी न बताओ । पर मैं कुछ पूछना चाहता हूँ ।"

"पूछिए न ।"

"कैसे हैं तुम्हारे चाचा जी ?"

"बहुत बड़े आदमी । जहाँपनाह, हुजूर, आलीजाह । उनकी वाणी ऐसी मधुर और गंभीर है कि जी चाहता है, उसे सुनती ही रहूँ ।"

वाणी मधुर है...पर मैं पूछता हूँ कि उनकी शक्ल-सूरत कैसी है ?"

"तुमसे मिलती-जुलती ?"

"कह नहीं सकती, मैंने उन्हें देखा नहीं।"

"देखा नहीं?"

"नहीं, अँधेरे में उन्हें देख कैसे सकती थी?"

"ओ हो, चाचा जी ने अपनी भतीजी का मुँह देखना भी पसन्द न किया! यह उदासीनता क्यों?"

"नहीं, उदासीनता की बात नहीं है। वे मुझे अच्छी तरह जानते हैं।"

"मेरी समझ में तुम्हारी बातें नहीं आतीं।"

"कहती तो हूँ, कमरे में अँधेरा था।"

"अँधेरा था तो उजाला क्यों नहीं किया गया?"

"उजाला तो तब किया जाता जब उनकी वैसी आज्ञा होती। उनकी आज्ञा अँधेरे में ही मिलने की थी।"

"अँधेरे में—भला कोई चाचा अपनी भतीजी से अँधेरे में क्यों मिलना चाहेगा?"

"कारण कुछ न कुछ अवश्य होगा। मैं बता नहीं सकती।"

"तुम मुझे परेशान करना चाहती हो, नन्दा।"

"मैं सच कह रही हूँ।"

"अच्छा तो तुम्हारे चाचा जी ने तुमसे क्या-क्या कहा?"

"वह मुझ पर अपना स्नेह प्रकट करते रहे।"

"स्नेह प्रकट करते रहे?" विजयपाल ने सहसा चौंक कर पूछा।

"जी हाँ, पर इसमें परेशान की कुछ बात नहीं है। उन्होंने कहा कि अनेक कारणों से वे अब तक मुझे घर पर न बुला सके, यद्यपि वे मेरी खोज-खबर बराबर रखते थे। उन्होंने यह भी विश्वास दिलाया कि भविष्य में मेरी सुख-सुविधाओं का वे पूरा-पूरा प्रबन्ध कर देंगे और मुझे अपने पास ही रक्खेंगे। वे मुझे पुत्री से भी अधिक प्यार करते हैं।"

"माफ करना नन्दा, मैं तुम्हारा शुभाकांक्षी हूँ। इसी लिए मुझे पूछना पड़ता है कि इसका क्या प्रमाण है कि वे तुम्हारे चाचा जी या कम से कम निकट के सम्बन्धी हैं।"

"यदि ऐसा न होता तो वे मुझे यहाँ क्यों बुला भेजते !"

"तुम बहुत भोली हो। तुम्हें यहाँ बुलाने के लिए और भी कारण हो सकता है। मैं नहीं चाहता कि तुम किसी ऐसे फन्दे में फँस जाओ जो तुम्हारे जीवन को ही नष्ट कर दे।"

नन्दा चौंक पड़ी। उसके हृदय में भी कम भय नहीं था। फिर भी वह अपनी कमजोरी विजय पर प्रकट होने देना नहीं चाहती थी।

उसने तत्परता से कहा—"मैं समझी नहीं।"

"क्या उन्होंने तुम्हारे प्रति बहुत स्नेह दिखलाया था?" अधर को दाँतों तले दबाते हुए विजय ने प्रश्न किया।

"हाँ।"

"अच्छा, अँधेरे में उन्होंने तुमसे बातचीत प्रारंभ किस तरह की।"

"उन्होंने कहा--बेटी, अपना हाथ बढ़ा दे। मैंने अपना हाथ आगे बढ़ाया तो उन्होंने उसे अपने हाथ में ले लिया। मैंने देखा, उनका भी हाथ काँप रहा था। उन्होंने कहा बेटी, डरने की जरूरत नहीं है।"

"उनका हाथ काँप रहा था? अच्छा, फिर क्या हुआ? उन्होंने तुम्हें अपनी गोद में बिठाया तथा तुम्हारे सिर पर स्नेहपूर्वक हाथ भी फेरा जिस तरह कोई पिता अपनी पुत्री पर फेरता है?"

"हाँ।"

विजयपाल का मुह कठोर हो उठा। उसने कुछ सँभलकर कहा--"नन्दा, तुम नहीं समझतीं। मुझे मामला दूसरा ही दिखाई देता है। तुम अभी ये बातें नहीं जानतीं। तुम्हें बहकाया गया है। तुम किसी शैतान के चंगुल में फँस गई हो। वह व्यक्ति जो प्रकाश से डरता है-

और अँधेरे में छिपना चाहता है, जो अपने को तुम्हारा चाचा बतलाता है, तुम्हारा चाचा नहीं।"

"तुम यह क्या कहते हो, विजय ?"

"बड़ी भोली हो नन्दा, तुम नहीं जानती कि दुनिया में ऐसे विषधर सर्प भी रहते हैं जिनकी फुंकार से चंदन भी जहरीला बन जाता है। तुमने संसार नहीं देखा। मैं पता लगाऊँगा कि तुम्हारा वह चाचा वास्तव में कौन है। हमें उसके चरणों पर गिरकर प्रणाम करना होगा या पृथ्वी पर पटककर उसकी छाती में तलवार भोंकना !"

नन्दा सहम गई। भय-चकित दृष्टि से वह विजय की ओर देखने लगी। उसने कहा—"मैं नहीं जानती कि तुम्हारे इस प्रकार के सन्देह का कारण क्या है। तुम्हारी बातों ने मुझे भयभीत कर दिया है। तुम नहीं जानते कि मेरे हृदय में कैसा द्वन्द्व उठ खड़ा हुआ है। जितना मैं सोचती हूँ, उतना ही उलझती हूँ। माता जी के आदेशानुसार थान से शचीदेवी मुझे यहाँ पहुँचा गई हैं। यहाँ भी मैं वैसी ही बन्धन में हूँ जैसी वहाँ थी। मैं चाचा जी के हाथ में हूँ। यहाँ के सब निवासी उनके आज्ञावर्त्ती हैं। ऐसी दशा में मैं कर ही क्या सकती हूँ ?"

"फिर भी तुम्हें कुछ सँभलकर चलना होगा—मेरा या कम से कम अपना तो ध्यान रखना ही होगा।"

"माता-पिता के स्नेह से वञ्चित रही हूँ। क्या इस बार भी वह मृगतृष्णा ही प्रमाणित होगा !" माथे पर झलक आनेवाले स्वेद कण पोंछते हुए नन्दा ने निराश स्वर में कहा।

"दुःखी होने की बात नहीं, नन्दा। सम्भव है मैं ही गलती पर होऊँ। इसमें अगर मेरी गलती साबित हुई तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। मेरे अनुभव से, प्रेम और सन्देह से, तुम्हें लाभ उठाना चाहिए। मुझे मालूम है कि चालाक शिकारी सदा ओट से प्रहार

करते हैं। वे शिकार पर सामने से आक्रमण कभी नहीं करते। पहले टट्टी की ओट में छिप जाते हैं। फिर कुछ हरा चारा डालकर ललचाते हैं। जब शिकार लालच में फँस जाता है, तब वे अपना अचूक निशाना लगाते हैं। तुम सहज ही समझ सकती हो कि तुम्हारे चाचा जी या माता जी के प्रति मेरे हृदय में कितनी श्रद्धा होनी चाहिए। पर मैं यह नहीं चाहता कि लालच में फँसाकर कोई तुम्हें अपमानित करे।"

नन्दा चुपचाप सुनती रही। विजय ने फिर कहा—"मेरे कहने का मतलब यह नहीं है कि तुम अभी कुछ कर गुजरो। धैर्य और शान्ति के साथ परिस्थिति का अध्ययन करती रहो। अपने खाने-पीने की वस्तुओं—सौन्दर्य-शृङ्गार के उपकरणों और यहाँ की प्रत्येक बात-चीत को सतर्कता के साथ जाँचती रहो। साथ ही यह भी न भूलो कि मेरी सम्पूर्ण आशा, प्रशन्नता और प्रतिष्ठा तुम्हीं पर अवलम्बित है।"

"आपके आदेशों का अक्षरशः पालन करूँगी। फिर भी मैं चाचा जी पर अविश्वास नहीं कर सकती।"

"अविश्वास करने को कहता कौन है?"

"ओह कितने अच्छे हो तुम, मेरे प्यारे विजय!"

"मैं कल सीकरी जा रहा हूँ। मैं चाहता हूँ कि मुझे तुम्हारी खबर बराबर मिलती रहे।"

"वहाँ मैं कैसे खबर भेज सकूंगी?"

"जिस तरह यहाँ भेजती रही हो। यह खिड़की तुम्हारा पत्र मेरे पास पहुँचा दिया करेगी।"

"वहाँ कहाँ ठहरेंगे आप?"

"शायद फिरोजी सराय में, पर मेरे वहाँ जाने और ठहरने के विषय में किसी से कुछ कहना मत।"

"इतनी सतर्कता की क्या आवश्यकता है?"

विजय ने तुरन्त बहाना बना दिया—"बात यह है कि मैं तुम्हारे घरवालों का ठीक-ठीक पता लगाना चाहता हूँ। यदि वास्तव में वे तुम्हारे घरवाले ही हुए तब तो कोई बात नहीं। पर यदि छल हुआ तो जो लोग इस षड्यंत्र में शामिल हैं, सन्देह हो जाने पर वे मेरे प्रयत्नों को निष्फल कर देंगे। या फिर तुम्हें ही ऐसी जगह पहुँचा देंगे जहाँ से निकाल सकना मेरे लिए असम्भव हो जायगा।"

इसी समय सहन में किसी के चलने-फिरने का शब्द सुनाई दिया। नन्दा ने कहा—"शायद माता जी इधर आ रही हैं।

यह कह वह उठ खड़ी हुई। आतुरता के साथ उसके कपोलों पर प्रेम-मुद्रा अंकित करते हुए विजय भी दृष्टि से ओझल हो गया।

अभी मुर्ग ने पहली बाँग भी नहीं दी थी कि मुल्ला पीर मोहम्मद ने खानखानाँ के शयनागार में प्रवेश किया। खानखानाँ अभी तक लम्बी ताने हुए पड़े थे, यद्यपि उनकी नींद कुछ पहले ही खुल चुकी थी। मुल्ला को इस तरह आया देखकर उन्हें आश्चर्य नहीं हुआ। वक्त बे वक्त पहुँचकर खानखानाँ को छेड़ना मुल्ला का स्वभाव-सा हो गया था। यह इस बात का परिचायक था कि मुगल राज्य के सर्वेसर्वा के साथ उसकी कैसी घनिष्ठता थी। फिर राज्य के पेचीदा मामलों के संबंध में भी खानखानाँ इसी समय विचार किया करते थे। उनका खयाल था कि इस समय बुद्धि स्थिर रहती है और पेचीदा मामलों को सरलता से सुलझाया जा सकता है। इसलिए इस समय मीर अदल मुल्ला पीर मोहम्मद की उपस्थिति अनिवार्य होती थी। महत्त्व-पूर्ण घटनाओं की सूचना बैरम खाँ को मुल्ला साहब द्वारा इसी समय मिला करती थी।

उस दिन बुधवार था। बैरम खाँ अपने नये नियम के अनुसार बुधवार के दिन राज्य-सम्बन्धी मामलों पर केवल इसी समय विचार करते थे। शेष दिन वे हजामत बनवाने, स्नान करने और दुआ इबादत में व्यतीत करते थे। उनकी हार्दिक अभिलाषा धर्म के मार्ग पर कुरबान होने की थी। बुधवार का दिन उन्होंने पवित्र कामों की तैयारी के लिए चुन रखा था!

मुल्ला के आगमन का आभास पाकर बैरम खाँ ने और भी लम्बी तान ली। ऐसा प्रतीत होता था कि मानो वे गहरी नींद में सो रहे हो।

एक क्षण प्रतीक्षा करने के बाद यह निश्चय करके कि सोनेवाला केवल बहाना किये पड़ा है, मुल्ला शय्या के पास पहुँच गया। बैरम खाँ इस समय भी जोर-जोर से खर्राटे ले रहे थे, मानो उन्हें मुल्ला की उपस्थिति का कुछ भी मान नहीं है। एक झटके के साथ उसने ऊपर की चादर उतारकर अलग फेंक दी। बैरम खाँ हड़बड़ाकर उठ बैठे। साथ ही उनके मुँह से निकला—"लाहौलविलाकूवत आज सबेरे-सबेरे क्या मनहूस सूरत देखने को मिली। सग नशीनद बजाय पीरो हुमा*। क्या दोजख में तुम्हारे लिए कोई जगह खाली नहीं थी?"

"सीधा वहीं से तो आ रहा हूँ जनाब—फातिहा पढ़ने के इरादे से। मगर खुदा की शान है कि यहाँ आपको जिन्दा पा रहा हूँ। अजी हजरत, आज बुधवार है बुधवार—आपके शहीद होने का दिन।" मुल्ला ने परिहास के स्वर में कहा।

"पर उसके लिए इतनी जल्दी क्या है?"

"यही कि अल्ला-ताला को आपके लिए अधिक इन्तजार न करना पड़े। उठो और एक बार दोहराओ अपना पुराना तराना—'अताये शमा वा लकाये शमा†।'

"मालूम होता है, आप बीबी-बच्चों को खैर आबाद' कहकर आ रहे हैं?" बैरम खाँ ने कृत्रिम झुँझलाहट के साथ कहा।

---

*एक फारसी कहावत, जिसके अर्थ है—गुरु और हुमा पक्षी (प्रातःकाल इनका दर्शन होना शुभ समझा जाता है) के स्थान पर कुत्ते के दर्शन हुए। (सबेरे-सबेरे कुत्ते का दर्शन मुसलमान अशुभ समझते हैं।)

†बैरम खाँ का एक प्रिय वाक्य, जिसके अर्थ हैं—(हे ईश्वर) तेरी दी हुई वस्तु तुझी को समर्पित कर रहा हूँ।

"मजाक नहीं, अब अपना परवाना आया ही समझिए।"

"सोने दो मुझे, अगर ऐसा ही जरूरत हो तो तुम आगे चल सकते हो।"

"दुश्मन सिर पर सवार है और..."

"और दोस्त बगल में खड़ा है। तराजू के दोनों पलड़े बराबर हैं— दोस्त गर दोस्त शवद हर दो जहाँ दुश्मन गीर*।"

यह कह बैरम खाँ पलँग से नीचे उतरे। फिर बोले—'तमाम बदन टूट रहा है। कुछ देर और आराम कर लेता तो अच्छा होता।"

"शायद रात बहुत देर से लौटे थे ?"

"नहीं, शिकारगाह से तो सूरज डूबने से पहले ही लौट आया था।

"और उसके बाद ?"

"उसके बाद क्या ?"

"उसके बाद घोड़े की पीठ पर बारह कोस का सफर !"

"आपके कहने का मतलब यह कि कराई का शिकारगाह यहाँ से बारह कोस के फासले पर है !"

"नहीं, लेकिन कभी-कभी ऐसा भी होता है कि चार कोस का मार्ग भी सोलह कोस का बन जाता है।"

"यानी ?"

"यानी यह कि आगरा होते हुए...।"

"ख्वाब तो नहीं देख रहे हैं आप ?

"शायद ! लेकिन आपको यह जानकर खुशी ही होगी कि मैं ख्वाब में भी बराबर आपको ही देखा करता हूँ।"

"जानता हूँ, ख्वाब देखने का तो आपको पुराना मर्ज है। यह कोई नई बात नहीं।"

---

*मित्र यदि सच्चा मित्र हो तो सारा संसार भी शत्रु बनकर कुछ बिगाड़ नहीं सकता।

"अगर मैं अपना ख्वाब आपको सुनाने लगूँ तो आप भी समझ जायँगे कि जो दिल का सच्चा होता है, उसे ख्वाब भी सच्चे ही आते हैं।

"कोई नई शरारत सूझी है क्या ?"

"नहीं नहीं, आप सुनिए न। मैंने देखा कि शिकारगाह में आपने एक जंगली हिरन के बच्चे के पीछे अपना घोड़ा छोड़ दिया। मासूम बच्चा अपनी जान बचाकर आगरा की ओर भागा।"

"दुरुस्त है। फिर क्या हुआ ?"

"भागता-भागता वह बच्चा सलीम शाह के महल में घुस गया और बेगम मुअज्जिमा की गोद में जाकर गिर पड़ा।"

बैरम खाँ ने आश्चर्य के साथ मुल्ला के मुख की ओर देखा।

"अभी और भी सुनिए। जनाब ने कुछ देर तक बाहर इन्तजार किया, इसके बाद......।"

"इसके बाद क्या ?"

"इसके बाद बेगम मुअज्जिमा से इजाजत लेकर महल में दाखिल हुए और अँधेरे में बच्चे को ढूँढ़ने लगे।"

"महल में झाड़-फानूसों और शमादानों की कमी नहीं है !"

"पर ख्वाब आखिर ख्वाब है। न जाने क्यों मुझे ख्वाब में रोशनी धुँधली दिखाई देती है।"

"यह तुम्हारे दिल की तारीकी की वजह से हो सकता है। खैर आगे कहो।"

"बेगम मुअज्जिमा की मदद से आप बच्चे को पकड़ पाने में कामयाब हुए।"

"अरे यह सब कहाँ से देख रहा था, नालायक ?"

"मैं अपने बिस्तर पर पड़ा-पड़ा ही यह सब देख रहा था।"

"क्या देख रहा था ?"

"सब्र से सुनते जाइए। ख्वाब का बाकी हिस्सा और भी मजेदार है। मगर डर लगता है कि हुजूर कहीं नाराज न हो जायँ।"

"अच्छा सुना तो शैतान !"

"खुदा की कुदरत, वह हिरन का बच्चा एक खूबसूरत भोली-भाली लड़की की शक्ल में बदल गया, गोरा-गोरा रंग, बड़ी-बड़ी काली आँखें, पन्द्रह-सोलह का सिन, मुलायम मक्खन-से हाथ और गावदुम उँगलियाँ। जनाब ने उसे देखकर अपनी सफेद दाढ़ी पर एक बार ऊपर से नीचे तक हाथ फेरा।"

"मैं समझता हूँ कि खुदा ने शैतान को ही तेरी शक्ल में पैदा किया है।"

"और आपकी शक्ल में आदम को—फिर यह तो आप जानते ही हैं कि आदम को भलाई-बुराई का बोध कराने के लिए शैतान की जरूरत होती है।"

"पर मेरे लिए तुम्हारी कतई जरूरत नहीं है।"

"अच्छा, अब यह तो बतलाओ कि क्या वह बहुत खूबसूरत है ?"

बैरम खाँ की भवों पर बल पड़ गये। पर यह सोचकर कि शायद मुल्ला को अधिक मालूम न हो, वे मुस्कराने लगे। फिर बोले—"बड़े घाघ हो तुम !"

"और आप भी तो गजब करते हैं जो अपनी मोहब्बत की बातें मुझसे छिपाना चाहते हैं !"

"खैर, जाने दो, जो कुछ हुआ वह हो गया !"

"मगर आपने मुझे पहले नहीं बताया कि काश्मीर की कलियाँ आपको इतनी पसन्द हैं। मुझसे अगर कहते तो डलियों लाकर कदमों पर लुटा देता।"

"बेशक !"

"वह लड़की......!"

"वह मेरी लड़की है।"

"आपकी लड़की . ?"

"हाँ, मेरी लड़की—मेरी बेटी।"

मुल्ला का मुँह उतर गया। वह कुछ देर खोया-सा बैठा रहा। फिर कानों पर हाथ रखकर दो बार तोबा की और अभिवादन करके बाहर चला गया।

जासूस से यह सूचना पाकर कि इस समय विजयपाल गली की खिड़की की राह सलीमशाह के महल में गया है, कादिरबख्श खुशी से उछल पड़ा। वह ऐसे ही अवसर की प्रतीक्षा में था। एक सिपाही को मामूली कपड़ों में गली के मुहारे पर तैनात कर, चाबियों का गुच्छा लिये, वह विजयपाल की कोठरी की ओर बढ़ा। पहले उसने ध्यान से देखा कि कोठरी के द्वार पर कोई विशेष प्रकार का चिह्न तो नहीं किया गया है। जब उस तरह की कोई चीज दिखाई न दी तब उसने ताले की चाबी मिलाई और सावधानी से भीतर पहुँच गया।

विजयपाल के पास अधिक सामान नहीं था। चमड़े का एक छोटा-सा थैला था जिसमें कुछ कपड़े रक्खे हुए थे। इनमें कुछ कपड़े ऐसे थे जिन्हें वह घोड़े की सवारी के समय पहना करता था। कुछ टोपियाँ और साफे, अपनी-अपनी जगह, खूँटियों पर टँगे थे। एक ईरानी पेशकब्ज म्यान में बन्द एक कोने से लगी थी। एक जोड़ी जूते की एक कोने में रखी थी, जो सम्भवतः सवारी के काम की थी। फटे कागज के कुछ टुकड़े इधर-उधर बिखरे थे। कुछ कागज एक ओर के ताक में रक्के थे और उनके पास ही कलम-दावात रक्खी थी। कागजों पर कुछ लिखा न था। केवल एक दफ्ती पर, जो कागजों के पीछे थी और जिससे लगाकर कागज बाँधे गये थे, एक कोने में 'सरदार कुशलपाल, सराय फिरोजी' लिखा हुआ था। घोड़े का साज एक तरफ को रखा था और उसका तसला-तोबड़ा दूसरी ओर। इन

सबके सिवा एक थाली, कुछ कटोरियाँ, एक आबखोरा और एक लोटा एक ताक में ढंग से रक्खे हुए थे। चारपाई पर मामूली-सा बिस्तर बिछा था। उस पर पड़ी सलवटें बतला रही थीं कि सोनेवाला अभी-अभी उठकर गया है। उसके नीचे एक कुरता और एक धोती पड़ी थी जो अपने पहननेवालों की लापरवाही की सूचना दे रही थी और साथ ही यह भी बतला रही थी कि बाहर जाने से पहले बिजयपाल उन्हें ही पहने था और जाने की हड़बड़ी में उनकी ओर ध्यान देने का उसे अवसर न मिला था।

कुछ देर की देख-भाल के बाद कादिरबख्श बाहर निकल आया और ताले को यथापूर्व बन्द करके मुल्ला साहब के महल में जा पहुँचा।

कादिरबख्श की सूचना में मुल्ला को कोई महत्त्वपूर्ण बात प्रतीत नहीं हुई; फिर भी उसका ध्यान दफ़्ती के पृष्ठ पर लिखे परिचय की ओर आकृष्ट हुआ। उसने मोहतिसब को बुलाकर सराय फिरोजी में ठहरे किसी सरदार कुशलपाल के विषय में अनुसन्धान करने का आदेश दिया।

थोड़ी दौड़-धूप और परेशानी के बाद मोहतिसब ने पता लगाकर बताया कि सीकरी की खास सराय 'सराये जामिया' का ही पुराना नाम 'सराय फिरोजी' है और सरदार कुशलपाल नाम का एक पछाँहीं जवान पिछले कुछ महीनों से उसमें ठहरा हुआ है। यह पता पाते ही कादिरबख्श दूसरे दिन पंजाबी सौदागर के भेष में सूरज निकलते-निकलते वहाँ जा पहुँचा। सराय का इमाम नमाज खत्म कर चुका था और इस वक्त पलँग पर बैठा-बैठा कुरान मजीद का स्वाध्याय कर रहा था।

बड़े अदब से इमाम को सलाम करके कादिरबख्श एक ओर खड़ा हो गया और उसने पूछा—"सराय फिरोजी क्या यही है?"

"जी, इसे ही सराय फिरोजी कहते हैं। वैसे आम लोग इसे सराय जामिया के नाम से जानते हैं। कहाँ से तशरीफ आ रही है?" इमाम ने लापरवाही से पूछा।

"लुधियाने से।"

"क्या ठहरिएगा?" इमाम ने उसी लापरवाही के ढंग से पूछा।

"जी, ठहरना तो चाहता हूँ, पर एक शर्त है। मैं घोड़ों का सौदागर हूँ मेरे पास कई अच्छे-अच्छे तुर्की ताजी हैं। अगर उनका प्रबन्ध हो सके तो ठहर जाऊँगा।"

"क्या दलाली मिलेगी?" सतर्क होते हुए इमाम ने पूछा।

"जो कुछ शरह होगी। बहरहाल कम से कम क्या दलाली फी रास आपको मंजूर होगी?"

"घोड़े कहाँ हैं आपके—कितने हैं?"

"पच्चीस रास हैं। सब असल खेत के, चार-चार साल। पीछे आ रहे हैं।"

मन में कुछ देर तक हिसाब जोड़ने के बाद इमाम ने कहा—"आप ठहर जाइए। दाने-चारे और आराम का मैं पूरा इन्तजाम कर दूँगा और सरदारों को खबर दूंगा। इन्शा-अल्ला दो-तीन दिन में सब रासें निकल जायँगी। जो मजदूरी मुनासिब समझें, मुझे दिला दें।"

"फिर भी मैं मामले को साफ कर लेना चाहता हूँ। पहले से तय कर लेना ठीक रहता है।"

"पच्चीस रुपये फी रास दिला दीजिए।"

"पच्चीस रुपये!"

कादिरबख्श ऐसे चौंका मानों यह अप्रत्याशित बात हो। फिर उसने कहा—"आप फरिश्ते हैं, फरिश्ते, इमाम साहब! जैसी तारीफ सुनी थी, ठीक वैसे ही आप हैं। सराय हाफिज का इमाम सचमुच पक्का घाघ है। अव्वल दर्जे का लालची!"

"क्यों-क्यों, क्या हुआ ?" इमाम ने सतर्क होकर पूछा।

"हुआ क्या, कुछ ठीक-ठिकाना है। कीमत पर पाँच रुपया सैकड़ा दलाली माँग रहा था। तिस पर इन्तजाम का यह हाल कि पीने का पानी भी ठीक से मुहय्या नहीं कर सकता।"

इमाम ने कुरान मजीद की पोथी बन्द कर दी और घुटनों के बल बैठ गया। पास पड़े मोढ़े पर कादिरबख्श को बैठने का संकेत करते हुए उसने पूछा—"आपकी रासें किस कीमत पर बिकती हैं ?"

"जैसे दाम उठ जायँ इमाम साहब। यह गाहक के पसन्द की बात है। दो हजार-तीन हजार--अगर कोई रास ज्यादा जँच गई और लेनेवाले की गाँठ में बाप-दादे की कमाई का पैसा हुआ तो पाँच-छः हजार तक मिल जाते हैं।"

इमाम ने मन ही मन हिसाब लगाया। दो हजार फी रास यदि दाम लगे तो पाँच रुपये सैकड़ा के हिसाब से सौ रुपये दलाली हुई। उसने पच्चीस रुपये फी रास माँगकर सचमुच बड़ी गलती की। पर अब उपाय ही क्या था। जबान से जो निकल चुका, उसे बदलना वाजिब न होगा। फिर भी बिगड़ी को सँभालने की नीयत से उसने कहा—"आप ठहर जाइए मिर्जा साहब, यह आपका घर है। यहाँ मोल-तोल की कोई बात नहीं। मैं आपकी हर तरह की खिदमत के लिए तैयार हूँ।"

फिर उसने अपने नौकर को आवाज देते हुए कहा—"अन्तू, अरे देख, मिर्जा साहब तशरीफ लाये हैं। २५ रास घोड़ों के लिए दाना-घास का जल्दी इन्तजाम कर। फी रास १०-१० सेर दिउली ! समझा न ! ठीक है, मीर साहब ?"

यह कहते हुए उसने मीर साहब को अपने पलँग पर बैठने का संकेत किया और खुद खिसककर पायताने को हो गया।

"आप बड़े शरीफ हैं, इमाम साहब, और ईमानदार भी ! वल्लाह, आपसे मिलकर बहुत खुशी हुई।"

से कहा—"मैं खुशी से आपकी सराय में ठहरूँगा। क्या-क्या इन्तजाम है आपके यहाँ ?"

"जी, सभी कुछ; यानी आप जो भी फर्मायिश करें। जर्दा-पुलाव, कलाँखुर्द, शीराजी-इस्तम्बोली सभी चीजें मौजूद रहती हैं।"

"बहुत खूब, बहुत खूब !" कहते हुए गद्‌गद् भाव से कादिरबख्श ने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरा। फिर कुछ झुककर इमाम के कान से मुँह छुपाते हुए संजीदगी के साथ फुसफुसाया—"कुछ और भी वल्लाह ?"

"जी, वह भी। मैंने अर्ज किया कि सीकरी में किसी चीज की कमी नहीं है। ख्वाह काश्मीरी तलब कीजिये, ख्वाह नैपाली। बस, आपके इशारे की देर है।" इमाम ने विश्वास दिलाते हुए कहा।

मूँछों पर ताव देते हुए कादिरबख्श ने कहा—"बस, अब रासें पहुँचने ही वाली हैं, इमाम साहब। क्या बतलाऊँ, इस साल यहाँ तक आना पड़ा, वर्ना हर साल लाहौर से अजमेर तक ही सब माल खत्म हो जाता था। मेरे एक दोस्त थे, उनकी पहुँच सरकार-दरबार में सभी जगह थी। लाहौर, अजमेर, कड़ा और बंगाले तक के रजवाड़े जानते-मानते थे। जब किसी राजा-बादशाह को घोड़ों की जरूरत हुई कि उन्होंने मुझे लिख भेजा। मैं हमेशा रजवाड़ों में माल बेचता रहा हूँ। हाँ, एक बात यह भी है कि मैं मामूली माल नहीं लाता हूँ। खुद जाकर खेत से आठों गाँठ दुरुस्त और बे-ऐब का माल लाता। बादशाह शेरशाह हर साल दस पन्द्रह रासें मुझसे लिया करते थे। सब उन्हीं दोस्त की मारफत। क्या बताऊँ, उनका पिछले साल इन्तकाल हो गया। जब सुना तो मानो सिर पर गम का पहाड़ टूट पड़ा। बेचारे मुझे बहुत मानते थे। हिन्दू थे और बड़े शाहखर्च। राजा थे, पूरे राजा। जब जाता, बिना पूड़ी-सिवइयाँ खिलाये न आने देते। ऐसे-ऐसे नफीस अर्क पिलाते कि बादशाहों को भी नसीब न होंगे। सब चीजें घर पर मौजूद रखते थे। सुना है, उनके साहबजादे इधर ही

कहीं तशरीफ रखते हैं। भला-सा नाम है उनका। मैंने उन्हें बचपन में गोद खिलाया है।"

"कैसी शक्ल-सूरत है उनकी—गोरे-गोरे, लम्बा कद बड़ी-बड़ी आँखें!"

"हाँ, कुछ ऐसी ही। नौजवान होंगे। बहुत दिनों से उन्हें नहीं देखा।"

"आपका मतलब सरदार कुशलपाल से तो नहीं है।"

"हाँ-हाँ, कुशलपाल—कु-श-ल-पा-ल। ठीक-ठीक, यही नाम था। कहाँ रहते हैं। मैं उनसे जरूर मुलाकात करूँगा।"

"जी, कई महीने से यहीं ठहरे हैं। अमीरजादे हैं।"

"जी, सो तो हैं ही।"

"देखिए, मुलाकात कराये देता हूँ।" कहकर इमाम उठा और सराय के सामनेवाले हिस्से में गया। फिर कुछ देर बाद लौटकर कहने लगा—"अभी सो रहे हैं। रात पचीसी में देर तक जागते रहे हैं। कुछ हर्ज नहीं, थोड़ी देर बाद मुलाकात हो जायगी।"

"ठीक है। तब तक मैं भी फारिग हो जाऊँगा। इजाजत हो तो रासों का पता ले आऊँ। पास ही कहीं होंगी।"

कहकर कादिरबख्श उठ खड़ा हुआ।

"जैसी मर्जी," कहकर इमाम ने भी उसके प्रस्ताव का अनुमोदन कर दिया।

कादिरबख्श को सराय से बाहर निकले एक घण्टा भी न हुआ होगा कि दो साइसों ने सराय में प्रवेश किया। वे अपने साथ तसलो-तोबड़े, खुरपियाँ व पिछाड़ियाँ बाँधे थे। इमाम ने उन्हें कादिरबख्श का साथी समझ कर पूछा—

"जी, पीछे आ रही हैं। मालिक ने अस्तबल साफ करने के लिए हमें पहले भेज दिया है।"

"तुम आराम करो। मैं अपने आदमियों से सफाई कराये देता हूँ।" कहकर इमाम ने आदर की निगाह से दोनों साईसों को देखा। फिर पूछा—"कैसी रासें हैं?"

"नायाब रासें हैं, गरीब परवर! दूर दिसावर का माल है। जीन सवारी में आपके दरवाजे को फाँद कर निकल जायँ। बादशाहों की सवारी लायक हैं।"

इसी समय चुस्त पाजामा, लम्बा अँगरखा, राजपूती पगड़ी और कमरबन्द में तलवार बाँधे एक पँचहथा जवान सराय के सहन में दिखाई दिया। आकृति-प्रकृति से वह राजकुमार-सा लगता था। दोनों साईसों की बातचीत की कुछ भनक शायद उसके कानों में पड़ गई थी। इमाम की ओर आते-आते उसने पूछा—"किस दिसावर के घोड़े आ रहे हैं, इमाम साहब?"

"जी," कहते हुए इमाम दाँत निपोरकर खड़ा हो गया और बड़े अदब से जुहार करता हुआ बोला—"खास ईरानी-तूरानी माल है, कुँवर साहब! आपकी सवारी के लायक है। मैं सरकार को खबर देने गया था, पर उस वक्त हुजूर सो रहे थे। एक रास जरूर लीजिए। सौदागर तो आपके वालिद साहब मरहूम का मुलाकाती है। कह रहा था कि मैंने कुँवर साहब को गोद में खिलाया है।"

"मुझे गोद में खिलाया है!" कह कर युवक मुस्कराया। फिर पूछा—"कहाँ है सौदागर?"

"रासें पीछे आ रही हैं। उन्हीं को लेने चला गया है। यह दोनों साईस भी वहीं से आ रहे हैं। कह रहे हैं कि बड़े अच्छे-अच्छे जानवर हैं।"

"आने दो। हम दोनों एक-एक जरूर लेंगे।" कहकर युवक ने इमाम की ओर मुस्कराकर देखा।

"मैं तो हुजूर का दिया खाता हूँ। मैं भला क्या तुर्की रास बाँधूँगा।" कहकर इमाम ने हाथ जोड़ दिये।

"मैं एक खास काम से शहर जा रहा हूँ। दोपहर तक लौटूँगा। मेरा एक मेहमान आने वाला है। अगर आये तो मेरे कमरे में ठहरा देना। चाबी यह रही।" कहकर कुशलपाल ने अपने कमरे की चाबी इमाम की ओर फेंक दी।

"कहाँ से तशरीफ ला रहे हैं, मेहमान साहब?" चाबी हाथ में लेते-लेते इमाम ने पूछा।

"पूर्व से।"

"मेहमान साहब का क्या नाम होगा, गरीब परवर?"

"विजयपाल। याद रहेगा न?"

"क्यों नहीं सरकार; राजा अजयपाल की कहानियाँ बचपन में बहुत कही-सुनी हैं। उन्हीं के नाम से याद रखूँगा—अजयपाल-विजयपाल।"

"हाँ ठीक है। अगर आ जाय तो उसे आराम से मेरे कमरे में ठहरा देना। समझ गये न!"

"बहुत अच्छा, सरकार।"

इमाम घोड़ों के सौदागर की प्रतीक्षा कर रहा था कि उसे एक और व्यक्ति, जो पश्चिमी सौदागर प्रतीत होता था, सराय में आता दिखाई दिया। लापरवाही से सिर से पाँव तक देखते हुए इमाम ने प्रश्न किया—"क्या चाहते हो ?"

"मैं सरदार कुशलपाल से मिलने आया हूँ।" सौदागर ने उत्तर दिया—"वे इसी सराय में रहते हैं न !"

"हाँ, रहते तो यहीं हैं, पर तुम उनसे क्यों मिलना चाहते हो ?"

सन्देह की दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए इमाम ने पूछा। उस व्यक्ति के वस्त्र ऐसे न थे कि इमाम उसे सरदार कुशलपाल का मेहमान समझ सकता।

"एक जरूरी काम है। उन्हीं से कह सकता हूँ।"

"नाम ठीक से याद है ?"

"यही नाम तो है—सरदार कुशलपाल !"

"अच्छा, उनका हुलिया बताओ।"

"अमीरजादे हैं। नौजवान। गोरा लम्बा कद। बड़ी-बड़ी आँखें। राजपूती लिबास।" आनेवाले ने कादिरबख्श के मुँह से सुना हुलिया दोहरा दिया।

"खाने-पीने के शौकीन ?" इमाम ने फिर प्रश्न किया।

"कह चुका हूँ—अमीरजादे ही ठहरे।"

"तुनुक मिजाज, बात-बात पर बिगड़ उठने वाले !"

"और नहीं तो क्या ?"

"अपने सामने किसी को नहीं गिनते !"

"ऐसे ही होंगे ।"

"क्या तुम उन्हें पहचानते हो ?"

"शक्ल से नहीं पहचानता ।"

"ठीक कहते हो । अगर पहचानते होते तो वे तुम्हें सराय के दरवाजे पर ही मिल जाते । अभी-अभी वे बाहर गये हैं ।"

"बाहर गये हैं । कब तक लौटेंगे ?" साईसों की ओर भेद-भरी दृष्टि से देखते हुए आगन्तुक ने प्रश्न किया ।

"दोपहर के करीब ।"

"इजाजत हो तो यहाँ बैठ कर उनका इन्तजार करूँ । दूर से आया हूँ । थक गया हूँ ।"

"ठहरना चाहो तो ठहर जाओ ।"

"ठहरना तो है नहीं, सरदार साहब से मिलकर आज ही आगरे लौट जाना है ।"

"तब तो मुश्किल है । बिना कुछ लिये-दिये सराय में ठहरने का दस्तूर नहीं है ।"

"क्या-क्या मिलता है आपके यहाँ ?"

"कुछ पीने-पिलाने का शौक है ?"

"राम-राम, हम बनिये लोग हैं । ऐसी बातें करते हो ?"

"माफ कीजिए । पीने की ऐसी चीजें भी होती हैं जिन्हें हिन्दू-मुसलमान, ठाकुर-ब्राह्मण, सब पी सकते हैं ।"

"यानी...?"

"यानी शर्बत, अर्क, गुलाब !"

"शर्बत कौन कौन से हैं ?"

"अंगूर, अनार, फालसा, केला, खूबानी, आड़ू, अनोशदारू, शीर खिश्त ।"

"एक प्याले का क्या दाम होगा ?"

"चार दिरम !"

"चार दिरम ! लाहौर में तो अनार का एक प्याला दो दिरम में-मिला था ।"

"यह सीकरी है । यहाँ सीधा काश्मीर से बना माल आता है । यह चीज लाहौर में नसीब नहीं हो सकती ।" आँखें घुमाते हुए इमाम ने कहा ।

"बेशक-बेशक अच्छा तो एक प्याला मँगा दीजिए ।" इमाम को खुश करने की नीयत से आगन्तुक ने कहा ।

"बस एक ही ?"

"पसन्द आने पर और मँगा लूँगा ?"

"बनिये-महाजन मालूम पड़ते हो ?"

"बेशक-बेशक, अपनी जात क्यों छिपायें !"

इमाम ने कहार को बुलाकर शर्बत लाने का आदेश दिया ।

"सीकरी में शर्बत का इस्तेमाल बहुत होता है क्या ?" शर्बत के स्वाद से सन्तुष्ट-सा होते हुए आगन्तुक ने कहा ।

"और नहीं तो क्या, पर यहाँ तुम्हारी तरह से आँखें बन्द कर निरा शर्बत गले के नीचे नहीं उतारे जाते !"

"यहाँ के लोग कैसे पीते हैं ?"

"इस्तम्बूली या शीराजी मिलाकर ।"

"राम-राम !" कानों पर हाथ रखकर आगन्तुक ने कहा ।

इमाम खिलखिलाकर हँस पड़ा ।

"क्या सरदार कुशलपाल भी ये चीजें पीते हैं ?"

"खूब पीते हैं । दिन में तीन-चार बार । तभी तो उनके गाल सेब जैसे लाल-लाल हैं !" इमाम ने कहा ।

"बड़े लोगों की बड़ी बातें हैं । हम गरीबों के भाग्य में यह चीजें कहाँ ।"

"सुनते हो मियाँ, बड़े-बड़े आदमी ही सराय फिरोजी में ठहरने का दिल भी रखते हैं।"

"बेशक-बेशक, बहुत दाम पड़ता होगा यहाँ ठहरने का।"

"अजी पचास दिरम रोज तो किराया ही लगता है।"

"पचास दिरम!" आश्चर्य से आँखें फाड़ते हुए आगन्तुक ने कहा।

"हाँ, पचास दिरम। खाने-पीने का अलग, खिदमतगारों का अलग!"

"और सरदार साहब इतना खर्च रोज करते हैं?" आश्चर्य का भाव प्रकट करते हुए आगन्तुक ने कहा।

"उनके बड़े-बड़े खर्च हैं। तीन कमरे किराये पर ले रक्खे हैं।"

"तीन कमरे!"

"हाँ तीन—एक नीचे, दो ऊपर। सराय की नाक यही तीन कमरे हैं।"

"तब तो उनका किराया भी बहुत होगा!"

"पर उनके लिए बहुत नहीं है। उनका खर्च बहुत ज्यादा है।"

"बेशक बेशक, बाप-दादों की कमाई होगी!"

इसी समय पास बैठे दोनों साईसों ने कहा—"इमाम साहब, हमें भी शर्बत चखाइए न। जिन्दगी में एक बार हम भी देखें।"

इमाम उठकर भीतर चला गया।

इमाम के जाने पर आगन्तुक ने दोनों सईसों से कहा—"यह लो चाबी और गली की ओर से उस कमरे में पहुँच कर छिप जाओ। तख्त के नीचे, आलमारियों के पीछे, चटाई में; जहाँ कहीं जगह पाओ। मैं भी वहाँ आऊँगा। मगर याद रखना, दोनों में से किसी का एक कान भी दिखलाई पड़ गया तो छः महीने की तलब जुर्माना!"

दोनों सईस उठकर निर्दिष्ट स्थल की ओर चल दिये। इसके बाद आगन्तुक ने सराय के दरवाजे पर खड़े तीसरे आदमी को पास बुलाकर

कहा—"कादिरबख्श से कह दो कि सराय की गली के सामने तैयार रहे। खिड़की पर ज्यों ही थाप पड़े, वह अपना काम कर दे।"

इसी समय दोनों हाथों में प्याले, शर्बत और अर्क की बोतलें लिये इमाम आ गया।

"कहाँ गये दोनों?" उसने आश्चर्य में आकर पूछा।

"एक आदमी बुलाने आया था, उसी के साथ चले गये।"

"बड़े नवाबजादे थे। शर्बत मँगाया और अब चले भी गये।"

"लाइए, मैं पी डालूँ। बड़ी लजीज चीज है। कमाता हूँ तो कुछ खर्च भी करना चाहिए। ऐसी नायाब चीजें तकदीरवाले को ही मुयस्सिर होती हैं।"

मुल्ला ने हाथ बढ़ाकर प्याला ले लिया और बारह दिरम निकाल कर इमाम के हाथ पर रख दिये।

"कहीं जायँगे नहीं। शायद अभी लौटकर आ जायेंगे। रासों की तरफ गये होंगे।" इमाम ने अपने मन को समझाने के लिए कहा।

"बेशक-बेशक; पराये चाकर जो ठहरे! क्या कह रहे थे आप, हमारे सरदार दिन में ऐसे-ऐसे कई प्याले पिया करते हैं?" आगन्तुक ने प्रसंग को बदलने के अभिप्राय से कहा।

"और नहीं तो क्या?"

"और हर प्याले के दाम चार दिरम नकद देते हैं?"

"सब सरदार ऐसा ही करते हैं।"

"स्वर्ग के जीव हैं, स्वर्ग के। बेशक, सीकरी स्वर्ग से कम नहीं। ऐसी-ऐसी नायाब चीजें और मिल भी कहाँ सकती हैं!"

"सरदार कुशलपाल का क्या कहना। शाही तबीअत पाई है—एकदम शाही!"

"आपकी बातें सुनकर बड़ी प्रसन्नता हो रही है।"

"क्यों, क्या सरदार साहब से कुछ माँगने आये हैं?"

"नहीं नहीं; उलटा उनका पावना मुझ पर है।"

"उनका पावना है—कितना?"

"सौ रुपये!"

"क्या तुम्हारा नाम अजयपाल-विजयपाल है?"

"विजयपाल!" आगन्तुक मन ही मन मुस्कराया—"नहीं-नहीं, मैं सरदार साहब की जाति का नहीं हूँ। मैं तो गरीब दूकानदार हूँ। मेरा नाम भिखारीदास है।"

"सरदार साहब सवेरे कह गये हैं कि उनके यहाँ आज कोई मेहमान आने वाले हैं—विजयपाल!"

"वे भी कोई सरदार ही होंगे। तब तो तुम्हारी चाँदी है, दोस्त। अच्छे-अच्छे सामान जुटा रखना।"

"यहाँ सब चीजें तैयार रहती हैं। रात-दिन सरदार, सूबेदार, अहलकार यहाँ आते-जाते रहते हैं।"

"बेशक-बेशक, दारुल्सल्तनत जो ठहरी। यहाँ तो बड़े-बड़े लोग आयँगे ही। सरदार साहब कैसे आदमी हैं। मेरा मतलब यह कि मिलने-जुलने में कैसे हैं।"

"ज्यादा मिलना-जुलना पसन्द नहीं करते। शायद ही कभी किसी से मुलाकात करते हों।"

"तब तो शायद मुझसे भी मिलना पसन्द न करेंगे?"

चेहरे पर निराशा का भाव लाते हुए आगन्तुक ने कहा—"नहीं-नहीं, मैं आपकी मुलाकात का इन्तजाम जरूर कराऊँगा। क्या काम है उनसे? आप कह रहे थे, आप पर उनका कुछ पावना है?"

"बेशक-बेशक; बात यह है कि मेरी दूकान में उनके नाम खाता है। मैंने हिसाब लगाकर देखा तो मालूम हुआ कि उनके सौ रुपये दूकान पर बकाया हैं। इधर बहुत दिनों से उनके साथ लेन-देन नहीं हुआ। सोचा, पिछला हिसाब साफ हो जाय तो ठीक है।"

"आप जैसे ईमानदार कम होते हैं।"

"बेशक-बेशक, यह साख का सवाल है—साख का। साख न रहे तो हमारी पुश्तों की दूकानदारी चौपट हो जाय। साख पर ही हजारों का कारबार चलता है। कभी एक दाम का फर्क नहीं पड़ता। देने-पावने में चौकस रहना हमारा धर्म है। हम अपना दाम नहीं छोड़ते, और दूसरे का भी नहीं रखते। अब तो खैर कुछ ज्यादा सख्ती नहीं है। पर सुल्तानी वक्त में तो बेईमान दूकानदारों और नादहिन्दा गाहकों को काठ में भरवा दिया जाता था। हमारे बाप-दादों के पास मूँछ का बाल गिरवीं रखकर लोग रुपया उधार लेते थे। देखिए, कोई नये सरदार सराय में तशरीफ लाये हैं।"

यह कह आगन्तुक ने इमाम का ध्यान एक नवागन्तुक की ओर आकृष्ट किया जो अभी-अभी सराय में घुसा था।

"यही हैं आपके सरदार कुशलपाल। सरदार साहब, यह बजाज बड़ी देर से आपका इन्तजार कर रहा है।"

"बजाज मेरा इन्तजार कर रहा है!" सन्देहपूर्ण स्वर में कुशलपाल ने कहा। आज सवेरे से ही दो नये आदमियों के मुँह से उसे अपना नाम सुनने को मिला था। इससे उसके मन में सन्देह उत्पन्न हो रहा था। आगन्तुक ने पास पहुँच कर ठीक बनियों के ढङ्ग से उसे जोहार किया।

"मेरा मेहमान नहीं आया क्या?" इमाम की ओर देखते हुए कुशलपाल ने प्रश्न किया।

"वे तो तशरीफ नहीं लाये, पर इसके आने से भी आप घाटे में नहीं रहेंगे। यह आपको कुछ देने आया है।"

आश्चर्यपूर्ण मुद्रा से कुशलपाल ने आगन्तुक की ओर देखा। आगन्तुक ने भी ऐसी सफाई से सारी कहानी दोहरा दी कि कुशलपाल को उसमें सन्देह करने की अधिक गुंजायश न दिखाई दी। उसे साथ

आने का आदेश देता हुआ वह अपने कमरे में चला गया। आगन्तुक भी उसके पीछे-पीछे कमरे में पहुँच गया। इसके बाद कमरे का दरवाजा भीतर से बन्द करके कुशलपाल ने उसे पीढ़े पर बैठने का संकेत किया और स्वयं तख्त पर मसनद के सहारे लेट गया।

तख्त पर हाथ से थपकी देते हुए आगन्तुक ने एक लम्बी बही कुशलपाल के सामने खोलकर रख दी जो महाजनी लिपि में लिखी थी और जिसमें अंकों को छोड़कर और कुछ जान सकना कुशलपाल के लिए असंभव था।

इसी समय सराय के सहन में एक दूसरा काण्ड आरम्भ हो गया। चार व्यक्तियों के साथ पहुँच कर कादिरबख्श ने इमाम और उसके दो नौकरों की मुश्कें बाँध लीं और उन्हें ले जाकर गाड़ी में डाल दिया। गाड़ी उन्हें लेकर चुपचाप एक ओर को चल दी।

बाहर के शोरगुल और गाड़ी की खड़खड़ाहट ने कुशलपाल को चौकन्ना कर दिया। अपनी तलवार को प्राप्त करने के लिए उसने सामने की खूँटी की ओर हाथ बढ़ाया ही था कि हें-हें करते हुए आगन्तुक ने उसे पकड़ लिया। कमरे में छिपे दोनों सिपाही भी बाहर निकल आये।

दोनों अभियुक्तों को लेकर जब गाड़ियाँ सराय से कुछ दूर पहुँच गईं तब मुल्ला ने निश्चिन्तता की साँस ली। फिर कुशलपाल के कमरे में पहुँचकर उसने अपने कपड़े बदले और सामने की सन्दूकची का ताला तोड़कर उसमें रक्खी प्रत्येक वस्तु की जाँच की। इससे निवृत्त होकर उसने क़ादिरबख्श को बुलाया जो आज्ञा की प्रतीक्षा में सराय के सहन में चक्कर लगा रहा था। मुस्कराते हुए कहा—"अब शीराजी का दूसरा दौर शुरू होता है। मतला है—आईनये मारूये तिरा अक्स पजीरास्त, गर तून नुमाई गुनह अजजानिबे मानेस्त।"*

उत्तर में अभिवादन करते हुए कादिरबख्श ने मुस्कराकर सिर झुका लिया। इसी समय सहन में किसी आगन्तुक की पद-चाप सुनाई दी। दोनों ने यह समझकर कि शायद विजयपाल आया है, उत्सुकता से झाँका। एक कुँजड़िन आई थी।

"सब्जी काफी होगी या और चाहिए!" पास पहुँचते-पहुँचते उसने प्रश्न किया।

"हाँ, काफी हो सकती है। मगर थोड़ी और आ जाय तो शायद ठीक रहेगा। आज कुछ खास मेहमान आने वाले हैं।" कादिरबख्श ने उत्तर दिया।

---

*मेरा दिलरूपी दर्पण तेरा प्रतिबिम्ब ग्रहण करने की सामर्थ्य रखता है। पर यदि तू न आये तो मेरा क्या दोष!

"और दिनों से आज ड्योढ़ी तो आई है। कोई खास चीज की जरूरत हो तो और भेजवा दूँ?" बात को और अधिक बढ़ाते हुए कुँजड़िन ने कहा।

सिर खुजलाते हुए कादिरबख्श ने उत्तर दिया—"अभी ठीक से कहना कठिन है। दोपहर को ठीक ठीक बता सकूँगा।"

"बूढ़े इमाम को वे लोग कहाँ ले गये हैं?" मुख्य प्रसंग पर पहुँचते हुए कुँजड़िन ने प्रश्न किया।

"मामू साहब को अचानक मिरगी का दौरा आ गया था। जब हम लोगों की तदबीर कारगर न हुई तब सरदार कुशलपाल साहब की सलाह से उन्हें चिश्ती साहब के पास भेजवा दिया है।"

"शरीर का क्या ठिकाना, जाने कब क्या हो जाय!" संवेदना प्रकट करते हुए कुँजड़िन ने कहा।

"फिर बुढ़ापा और कमजोरी भी है। ताक पर रक्खी बोतल उतारते-उतारते गिर पड़े और बेहोश हो गये। कल उनसे मुलाकात करने मेरठ से आया था। देखिए, कब तक ठीक होते हैं। तब तक उनका काम मुझे ही देखना-भालना पड़ेगा। मेरा कुछ भी समझा-बूझा नहीं है।"

"काम चल जायगा। मैं- पड़ोस में रहती हूँ। जरूरत पड़े तो बुला भेजिएगा। फौरन हाजिर हो जाऊँगी। पड़ोसी लोग तरह-तरह की बातें फैला रहे थे। मैंने कहा, खुद चलकर देखना चाहिए कि क्या मामला है। अब आपसे मिलकर दिलजमई हुई।"

"मामला कुछ नहीं है। मुश्किल यही है कि मैं यहाँ के काम से नावाकिफ हूँ। आज कुछ मेहमान भी आने वाले हैं।"

"शायद यह हजरत भी ठहरने आ रहे हैं।" कुँजड़िन ने एक नवयुवक की ओर संकेत करते हुए कहा जो अभी-अभी घोड़े से उतर कर सराय में आ रहा था। वेश-भूषा से वह राजपूत प्रतीत होता था।

कुँजड़िन ने जिस आगन्तुक की ओर संकेत किया था, वह विजयपाल ही है, यह पहचानने में कादिरबख्श को देर न लगी। एक विशेष प्रकार का संकेत कर यह कहते हुए कि कोई सरदार है, स्वागतार्थ वह आगे बढ़ गया। अवसर की सकीर्णता के विचार से कुँजड़िन भी चुपचाप वहाँ से खिसक गई।

"सराय फिरोजी क्या इसी का नाम है?" बरामदे की सिड्ढी पर पैर रखते-रखते विजयपाल ने प्रश्न किया।

"जी सरकार, इस सराय का पुराना नाम यही है।" कादिरबख्श ने अदब के साथ उत्तर दिया।

"इमाम कौन है?"

"बन्दा खिदमत में हाजिर है।"

"मैं यहाँ ठहरना चाहता हूँ।"

"जैसा हुक्म हो। अभी मुनासिब इन्तजाम किये देता हूँ।"

"मेरे एक दोस्त यहाँ रहते हैं—सरदार कुशलपाल!"

"जी हुजूर!"

क्या इस समय यहीं पर हैं?"

"जी सरकार अभी-अभी बाहर से लौटे हैं।"

"तो कृपा करके उनसे कह दीजिए कि विजयपाल आपसे मिलने आया है।"

कादिरबख्श ने विजयपाल के सामने एक पीढ़ा रख दिया और फिर स्वयं मुल्ला के कमरे में चला गया।

विजय ने अँगौछे से अपनी पोशाक और जूतों की गर्द झाड़ी और इसके बाद बरामदे में चहलकदमी करने लगा।

लौटकर कादिरबख्श ने कहा—"सरदार साहब आपको याद कर रहे हैं।"

इमाम के संकेत पर विजयपाल ने कमरे में प्रवेश किया। वहाँ एक व्यक्ति राजपूती लिबास में उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। सामने

पहुँचते ही विजयपाल ने दोनों हाथ जोड़कर उसे नमस्कार किया। उस व्यक्ति ने भी उठकर नमस्कार का उत्तर दिया।

"क्या मैं माछीबाड़े के सरदार के दर्शन कर रहा हूँ?" विजय ने शिष्टाचार के साथ निवेदन किया।

"हाँ इस अभागे ने एक बार वे दिन भी देखे हैं। अब आप अपना परिचय दीजिए।" हाथ पकड़कर विजयपाल को अपने बराबर बिठाते हुए उस व्यक्ति ने कहा।

"मैं कन्नौज से आया हूँ।" कहकर विजयपाल ने एक सिक्के का आधा टुकड़ा निकालकर सामने रख दिया।

सन्दूकची में से दूसरा आधा टुकड़ा निकालकर मुल्ला ने भी सामने रख दिया। दोनों को मिलाकर देखा तो पूरा सिक्का बन गया। सन्-संवत् भी ठीक ठीक मिल गये। मुल्ला के मुँह पर हलकी मुस्कराहट खेल गई। विजयपाल भी मुस्कराने लगा।

"वह खत!" कहकर विजयपाल ने एक पत्र जेब से निकाला। उस पर विचित्र स्याही से 'सरदार कुशलपाल' लिखा था। मुल्ला ने भी ठीक वैसा ही दूसरा कागज निकालकर दिखाया। उस पर 'विजयपाल' लिखा था। दोनों ने अपने अपने हस्ताक्षरों को पहचान लिया।

"यह चित्र भी", कहते हुए विजयपाल ने एक चित्र निकालकर सामने रख दिया। उसमें बैरमखाँ-द्वारा हेमू विक्रमादित्य के कत्ल किये जाने का दृश्य अंकित था। मुल्ला ने भी ठीक वैसा ही दूसरा चित्र सन्दूकची से निकालकर सामने रख दिया।

"सब ठीक है। अब हमें......!" कहते-कहते विजयपाल बीच में ही रुक गया।

"मामले की बातचीत करनी चाहिए। यही मतलब है न आपका वाक्य को पूरा करते हुए मुल्ला ने कहा।

"हाँ, यही। पर यहाँ कोई अन्देशा तो नहीं है?" विजयपाल ने इधर-उधर देखते हुए अपनी शंका प्रकट की।

"रत्ती भर भी नहीं!"

दोनों एक दूसरे की ओर मुँह किये हुए मसनद का सहारा लेकर उठङ्ग गये।

कुछ देर तक सोचते रहने के पश्चात् विजयपाल ने कहना प्रारम्भ किया—"सरदार साहब, हम लोग जिस महत्त्वपूर्ण कार्य को हाथ में ले रहे हैं, उसके लिए यह आवश्यक है कि हम एक दूसरे के गुणकर्म और स्वभाव से परिचित हो जायँ। नहीं तो हमारा उद्योग ठीक न बन पड़ेगा। हमारे मित्र और दल के नेता मुराद भाई ने मेरा परिचय आपको दिया होगा। फिर भी मैं बतलाना चाहता हूँ कि चाचा जी की निर्मम और निरंकुश हत्या के पश्चात् मैं भागकर चाची जी के पास पहुँचा। मेरा विचार उन्हें पूर्व के किसी सुरक्षित स्थान पर पहुँचा देने का था। आपको ज्ञात ही होगा कि चाचा जी की समस्त सम्पत्ति उन्हीं के पास थी। मैंने विचार कर रक्खा था कि यदि किसी प्रकार जौनपुर तक पहुँच सकूँ तो उस धन से फिर सेना एकत्र करूँ और एक बार अभागे बैरम को उसके पाप का फल चखाऊँ। हमारी पराजय की सूचना मुझसे पहले चाची जी के पास पहुँच गई थी और उन्होंने माल खजाने के हाथियों के साथ पूर्व की ओर भाग निकलने की पूरी तैयारी कर ली थी। हम लोग भागे तो राह में बड़ी-बड़ी विपत्तियाँ पड़ीं। पास-पड़ोस के सरदार मार्ग में ही हमें लूटने दौड़ आते। उन्हें रिश्वत देते-देते खजाने का बहुत-सा द्रव्य व्यय हो गया। फिर भी हमारे काम योग्य बहुत कुछ बच रहा। एक दिन सबेरे ही खबर मिली कि मुगलों के फौजदार हुसेन खाँ और मुल्ला पीर मोहम्मद खाँ हमारा पीछा करते हुए सिर पर आ पहुँचे हैं। (अपना नाम सुनकर मुल्ला ने एक बार दाँत-भींच लिये।) चाची को ईश्वर पर छोड़कर और जो कुछ सम्भव हो सका अपने साथ लेकर जौनपुर की राह ली। पीछे सूचना

मिली कि मुगल फौजदारों ने बजवाड़े के जंगल-पहाड़ों में कवादा गाँव के पास हमारे हाथियों को जा घेरा और जो कुछ माल-खजाना पाया सब लूट ले गये। दुर्दशा से पीड़ित मैं जौनपुर पहुँचा और एक जौहरी के पास धन-सम्पत्ति जमाकर, अपना नाम बदल, एक गाँव में दिन काटने लगा। वहीं मैंने सुना कि पूर्व के कुछ सरदार ख्वाजा कलाँबेग के पौत्र और ख्वाजा मुसाहिब बेग के पुत्र मुराद बेग के नेतृत्व में संगठित हो रहे हैं और उनका विचार मुगलों से एक बार फिर लोहा लेने का है। मैं भी धीरे-धीरे इस दल में शामिल हो गया। पिछले दिनों सूचना मिली कि शेख कमाल बियावानी—जो मुगल सल्तनत से पक्के विरोधी हैं—लाहौर से आकर शेख सलीम चिश्ती की खानकाह में ठहरे हैं और बैरम खाँ तथा अन्य कई मुगल सरदारों को अपना मुरीद-बनाने में उन्हें पूरी सफलता प्राप्त हुई है। साथ ही यह भी ज्ञात हुआ कि आप भी पिछले कुछ दिनों से इस सराय में ठहरे हुए हैं और शेख साहब के मुरीदों में से हैं। आप दोनों महानुभावों की योजना का पता लगाने और अपने दल के पथ-प्रदर्शन के लिए आपको निमंत्रण देने के इरादे से मुझे यहाँ भेजा गया है।"

मुल्ला शान्तिपूर्वक बैठा सुनता रहा। जब विजयपाल की कहानी पूरी हो गई तब उसने कहा—

"आपकी कहानी मैंने पहले से ही सुन रक्खी थी। अब आपकी जवानी सुनकर मेरा विश्वास और भी दृढ़ हो गया। आज्ञा हो तो अपनी कहानी भी सुनाऊँ। पर वह बहुत लम्बी और बदमजा है।"

"नहीं नहीं, अवश्य सुनाइए। हमारे लिए एक दूसरे के इतिवृत्ति का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।"

"यह तो आप जानते ही हैं कि मेरा नाम इस समय सरदार कुशलपाल है। आस-पास के लोग इसी नाम से मुझे जानते भी हैं। पर आपकी तरह मेरा नाम और भी है। पहले मैं उसी नाम से प्रसिद्ध था।"

"नाम बदले बिना हम लोगों का काम चल भी तो नहीं सकता।"

"हाँ तो मेरे पिता माछीवाड़ा के सरदार थे। हुमायूँ की सेना काबुल से कूच-दर-कूच करती हुई सतलज के किनारे तक आ पहुँची तब मेरे पिता ने उन्हें युद्ध के लिए ललकारा। उनके पास तीस हजार सेना थी। मेरी उम्र तब सिर्फ अठारह साल की थी। फिर भी मैं हरावल का सरदार था और काबुलियों से लड़ने के लिए मेरी भुजायें फड़का करती थीं।

"माछीवाड़े की सेना का सेनापति एक बदमिजाज पठान था। उससे मेरी पटती न थी। वह भी मुझे बुरी नजर से देखता था। लड़ाई से ठीक एक रात पहले मोर्चे के मामले पर मेरी उससे गर्मा-गर्म बहस हो गई। मेरी सलाह ठीक सतलज के किनारे पर मोर्चा जमाने की थी। पर उस कमबख्त ने एक गाँव के पास खेमे लगाये। जाड़े के दिन थे। रात आई तो उसके सैनिक खेमे के आगे लकड़ियाँ और घास जलाकर तापने लगे। उनका यह रंग देखकर मैं अपनी हरावल के साथ अलग हो गया और रातों-रात माछीवाड़े से पन्द्रह कोस दूर चला आया।

"दूसरे दिन खबर मिली कि सिर्फ एक हजार मुगलों ने रातों रात नदी पार करके हमारी सेना को काट डाला है और सब खजाने लूट लिये हैं। मैं अपने हरावल के साथ पूर्व की ओर बढ़ा और सिकन्दर शाह से जा मिला। सरहिन्द की लड़ाई मेरे सामने हुई थी। सिकन्दर की सेना में अस्सी हजार सिपाही थे और चार सौ अच्छे-अच्छे अफगान सरदार। पर मैं पहले से ही समझ गया था कि यह सेना भी मुगलों के मुकाबिले में ठहर न सकेगी।"

"आप यह कैसे जान गये थे?" विजय ने बीच में ही प्रश्न किया।

"मैं प्रतिदिन देखता था कि अफगान सरदार लड़ाई के दाँव-घात की बातें कम करते हैं और औरतों की अधिक। वे आपस में यही

चर्चा करते कि ज्यादा मजेदार औरत किस नस्ल की होती है। मुझे याद है, एक बार उनमें आपस में बहस पड़ गई। यहाँ तक कि स्वयं सुलतान को बीच में पड़कर समझौता कराना पड़ा। उस समय लश्कर सरहिन्द में पड़ा था।"

"सुलतान ने क्या फैसला किया?" उत्सुकता से विजय ने पूछा।

"उसने कहा कि तुममें से हर अमीर को कम से कम चार औरतें रखनी चाहिएँ। पास बिठाने और बातचीत करने के लिए ईरानी, घर गृहस्थी का काम करने के लिए खुरासानी, सेज के लिए हिन्दुस्तानी और एक चौथी तुरकानी जिसे हरदम केवल इसलिए मारते-पीटते रहें जिससे कि अन्य स्त्रियाँ डरती रहें।"

विजयपाल ठहाका लगाकर हँस पड़ा। मुल्ला ने भी उसका साथ दिया। "हाँ भाई जान," मुल्ला ने फिर कहना आरम्भ किया—"ऐसे ऐसे सरदार मुगलों का मुकाबिला क्या खाकर करते। उस लड़ाई में मेरे सारे सिपाही काम आ गये। मैं किसी तरह भाग निकला और लाहौर पहुँचा। वहाँ जाकर मैंने अपना नाम-धाम यहाँ तक कि खुद अपने को भी बदल डाला और शेख साहब का चेला हो गया। उन्हीं की आज्ञा से यहाँ आकर डेरा डाला है।"

"अब मुझे अधिक जानने की आवश्यकता नहीं है," विजय ने गम्भीरता से कहा—"अब प्रार्थना यही है कि आप मुझे शेख साहब से मिलाने का प्रबन्ध कर दीजिए, क्योंकि दल के आज्ञानुसार योजना की शेष बातें मैं केवल उन्हीं को बतला सकता हूँ।"

"आज ही मैं आपको उनसे मिला सकता हूँ। शाम का समय ठीक रहेगा। उस समय वे अकेले रहते हैं। पर यदि आप आवश्यक समझें तो.........।"

"जब भी आप उचित समझें। पर जहाँ तक हो, शीघ्र ही।"

"लेकिन," मुल्ला ने अपने को सँभालते हुए कहा—"मैं आपसे

वादा करते समय एक बात भूल ही गया। आज शायद उनसे भेंट न हो सकेगी।"

"ऐसा क्यों?"

"आज जुमेरात है। इस रात को चिश्ती साहब की हवेली में उर्स होता है। शेख साहब भी उसमें शामिल होते हैं। मुझे भी वहाँ जाना पड़ेगा। आज शायद मैं लौट भी न सकूँगा।"

"लौटने में क्या बाधा है?"

"आप आगरे पहली बार आये हैं। आपको यहाँ के रंग-ढंग का पता नहीं। हमारे आप जैसे लोगों का सर यहाँ हर समय तलवार की धार पर रखा रहता है। कदम-कदम पर सावधानी बरतनी पड़ती है। घर से बाहर निकले कि खुफिया आदमी पीछे पड़ गये। घर से बाहर खुली हवा में साँस तक लेना हराम हो जाता है। यहाँ बड़ी होशियारी से काम करना पड़ता है।"

"निस्सन्देह, मुझे इन बातों का अधिक पता नहीं है। अच्छा हो, आप मुझे कुछ जरूरी हिदायतें दे दें।

"पहली बात तो यही है कि हम दोनों का एक ही सराय में साथ-साथ ठहरना ठीक नहीं है।"

"तो क्या मैं आगरे ही लौट जाऊं? पर दल के मुखिया ने मुझे इसी सराय में ठहरने की आज्ञा दी थी!"

"तो आप यहीं ठहरिए। मैं दूसरी जगह चला जाऊंगा।"

"जैसा आप उचित समझें। इसके अलावा और क्या सावधानी रखनी होगी?"

"किसी अजनबी का विश्वास करके उसके साथ नहीं चल देना चाहिए।"

"यदि आपने किसी को मुझे बुलाने भेजा तो?"

"ऐसी दशा में मैं उसे एक चिट्ठी दे दूँगा।"

"मैं आपके अक्षर नहीं पहचानता !"

"मेरे अक्षर ऐसे होते हैं।"

यह कहकर मुल्ला ने कलम उठाया और एक कागज पर लिखा—
आँ खुशखबर कुजास्त कजी फतह मज्दह दारिद। ता जान फशानम्स चु जरोसीम दर कदम।*

कुछ देर रुककर फिर कहा—

"इसे आप अपने पास रखिए। जो आपको ऐसी लिखावट का दूसरा पत्र दे, आप उसका विश्वास करें।"

"इतना संकेत पर्याप्त होगा?"

"इतना ही काफी नहीं होगा। वह आपको सिक्के का आधा भाग भी दिखलायेगा।"

"ठीक है।"

"फिर भी सावधानी की जरूरत है। जिस मकान में मैं आपकी प्रतीक्षा करूंगा, उसके द्वार पर वही चित्र आपको देखने को मिलेगा।"

"तीन सकेत मिल जाने पर धोखा नहीं हो सकता।"

"बेशक। लेकिन यह तो बताइए, आज आप कहीं जायँगे तो नहीं?"

"जी नहीं।"

"तो आराम से यहीं रहिए! मैं इमाम से आपका परिचय कराये देता हूँ। आपको यहाँ हर तरह का आराम मिलेगा।"

इसके बाद मुल्ला ने किवाड़ खोलकर इमाम को पुकारा और उसके आने पर कहा—"देखो, यह मेरे मित्र हैं। यहीं रहेंगे। इन्हें किसी तरह की तकलीफ न हो। यह सोने से तौलने योग्य हैं। इनके नुकसान का मुआवजा तुम्हें अपने सिर से देना पड़ेगा।"

---

*हाफिज का एक प्रसिद्ध शेर; अर्थ है :—"विजय का शुभ संवाद लानेवाला वह दूत कहाँ है? मैं सोने और चाँदी की भाँति अपने प्राण भी उसके चरणों पर निछावर करना चाहता हूँ।"

दिन ढल रहा था। सूर्य की तिरछी किरणें समन बुर्ज के दक्षिणी झरोखे से आकर ईरानी कामदार कालीन पर गाव तकिये के सहारे बैठे किशोर बादशाह जलालुद्दीन मोहम्मद अकबर की जूतियाँ चूम रही थीं। जूतियों के अग्रभाग में लगे रुम्मानी लाल किरणों के स्पर्श से उत्तेजित होकर, दस गुना प्रकाश विकीर्ण कर, सरपेंच में जड़े कोहनूर से मानो होड़ लगाने की तैयारी कर रहे थे। रत्न-रश्मियों के आवर्त्तन-प्रत्यावर्त्तन ने बादशाह के सामने प्रकाश का एक पर्दा-सा तान दिया था जिसकी ओट से उनका शुभ्र मुखमंडल सूर्य-बिम्ब-सा देदीप्यमान लगता था। सामने खुला रक्खा था एक पुराना दीवान जिसके मोती जैसे सुन्दर अक्षरों से बादशाह के दाहिनी ओर दूसरे गाव तकिये के सहारे बैठे खानखानाँ की आँखें खेल रही थीं।

एक शेर की ओर नवयुवक बादशाह का ध्यान आकृष्ट करते हुए खानखानाँ ने पढ़ा—

"तू कारे जमीं रा नकू साख्ती
कि बा आसमाँ नीज परदाख्ती।"*

एक क्षण के लिए बादशाह की आँखें दीवान के पृष्ठ पर झुकीं; भवों में बल पड़े, मानो वे शेर के अर्थ पर विचार कर रहे हों। दूसरे

---

*तू पृथ्वी के कार्यों का ही नियंत्रण नहीं करता, आसमान पर भी तेरा अधिकार है।

ही क्षण उनकी दृष्टि दीवान के पृष्ठ पर से उठकर झरोखे को पार करतीं आसमान पर जा टिकी। सहसा उनके मुँह से निकला—

"खानबाबा, वह देखो, उजबक के गिरहबाज कबूतर किस शान से आसमान में चक्कर काट रहे हैं! तूरानी कबूतर गिरह देने में अपना सानी नहीं रखते।"

विवशतासूचक मुस्कान के साथ खानखनाँ ने दीवान बन्द कर दिया और आसमान की ओर देखने लगे। इसी समय एक दरबान पर्दा हटाकर भीतर आया और बड़े अदब से सलाम कर, एक पुर्जा खानखानाँ के हाथ पर रख, एक ओर खड़ा हो गया। खानखानाँ ने एक उचटती निगाह पुर्जे पर डाली।

सरदार कुशलपाल ने जरूरी काम से मुलाकात के लिए प्रार्थना की थी। एक अज्ञात व्यक्ति के इस प्रकार एकान्त में बाधा देने पर वकीले मुतलक को बड़ी झुँझलाहट हुई। उन्होंने बादशाह की ओर देखा जो अब भी कबूतरों की गिरहबाजी में उलझे हुए थे। फिर कहा—"कह दो, यह मौका मुलाकात का नहीं है।"

"मैंने कई बार कहा, पर वह मानता ही नहीं। कह रहा है कि अगर मुलाकात इसी वक्त न हुई तो सल्तनत का बहुत बड़ा नुकसान हो जायगा।" दरबान ने हाथ जोड़कर अर्ज किया।

"वह है कौन? क्या तुम उसे जानते हो?"

दरबान इस प्रश्न का कुछ उत्तर न दे सका और चुपचाप खान-खानाँ के मुँह की ओर देखने लगा। इसी समय द्वार का पर्दा फिर हिला और दो चमकती आँखें भीतर की ओर झाँकती दिखाई दीं।

तलवार के कब्जे पर हाथ रखते हुए खानखानाँ ने अपने स्थान पर से ही ललकारा—"कौन है—क्या चाहता है?"

झाँकनेवाले ने इस ललकार की कोई परवाह नहीं की। पर्दे को एक ओर हटाकर वह सीधा भीतर चला आया।

एक क्षण के लिए खानखानाँ सन्नाटे में आकर उसकी ओर देखने लगे। जयपुरिया ऐंठदार पगड़ी, लम्बा अँखरखा, गुजराती पटका और उससे लटकती हुई जड़ाऊ म्यानवाली तलवार, बनारसी ढाठे से बँधी डाढ़ी, लम्बी नोकवाले गुजराती गुरगाबी उसके राजपूत होने की सूचना दे रहे थे। बिना शिष्टाचार के उसे इस प्रकार अपने सामने आकर खड़ा होते देख खानखानाँ आपे से बाहर होने ही वाले थे कि उनकी आँखें आगन्तुक की हँसती हुई चमकीली आँखों से जा मिलीं। क्रोध हँसी में बदल गया और उनके मुँह से सहसा निकल पड़ा—

"वल्लाह, क्या वन्दरों जैसी सूरत बना रखी है, मुल्ला साहब!"

"अब बुतपरस्ती करने का इरादा है, आलीजाह!"

"तो कश्का,* चोटी, जिन्नार† ही क्यों बाकी रह गये?"

"रफ़्ता रफ़्ता वह भी सब करना पड़ेगा। इतमीनान रखिए।"

"आखिर इस कुफ्र की क्या जरूरत पड़ गई?" खानखानाँ ने व्यंग्य किया।

"यह हिन्दोस्तान है, आलीजाह। यहाँ बुतों की बहुतायत है। दीन-ईमाम खतरे में हैं। बुत बिना पुजापा लिये मानेंगे नहीं। जब पुजारी बनना है तो पूरी तरह बना जाय।" मुल्ला ने व्यंग्य का उत्तर व्यंग्य में देते हुए कहा।

"यह पुजापा किस तीरथ में चढ़ेगा—काशी में या कन्नौज में?" झेंप मिटाने के लिए खानखानाँ ने प्रसंग को बदलने के अभिप्राय से कहा।

"यही तय करने के लिए खिदमत में हाजिर हुआ हूँ। काशी भी आपकी सल्तनत में है और कन्नौज भी। आप जहाँ हुक्म देंगे, जा बसूँगा।"

---

* तिलक। † जनेऊ।

"मैं तो तुम्हारा सीकरी में बसना ही पसन्द करूँगा।"

"ऐसी हालत में सीकरी को ही काशी या कन्नौज बनना पड़ेगा।"

मुल्ला के इस कटाक्ष से खानखानाँ कट गये। फिर भी अपने को सँभालते हुए उन्होंने कहा—"दिलचस्पी और दिल्लगी में तुम उस्ताद हो। पर सच-सच बताओ, आज यह लिबास किसी खास मतलब से पहना है या यों ही मुझे छकाने के लिए।"

"जरूरी काम से पहनना पड़ा है। दूसरा लिबास आपके लिए भी तैयार है।"

"मेरे लिए भी तैयार है—आखिर मामला क्या है ?"

"आपकी शादी का पैगाम आया है !"

"मेरी शादी का पैगाम !" अपनी सफेद डाढ़ी पर हाथ फेरते हुए खानखानाँ हो-हो कर हँस पड़े। फिर बोले—"तेरे मुँह में घी-शकर। मेरी शादी का पैगाम किस रजवाड़े से आया है ?"

"यमराज के रजवाड़े से !"

"पर उसके लिए मेरी उम्र अभी बहुत कम है। साल दो साल बाद पैगाम आता तो ज्यादा अच्छा होता।"

"पण्डितों का कहना है कि शादी के लिए यही महूरत सबसे अच्छा है।"

"अगर निकाह पढ़ने तुम चलो तो मंजूर है। पर वह पयम्बर है कहाँ—उसकी कुछ खातिर-तवाजा भी हुई या नहीं ?"

"पयम्बर बहुत दूर नहीं है। आपसे मुलाकात करना चाहता है।"

"कैसा आदमी है ?"

"निहायत दिलचस्प जवान है।"

"नाम क्या है ?"

"असली नाम नाहरपाल है, पर मशहूर विजयपाल नाम से है।"

"यह नाम तो पहले भी कहीं सुना है !"

"जरूर सुना होगा।"

"क्यों आया है ?"

"कह तो दिया, शादी का पैगाम लेकर आया है।"

"कहाँ से ?"

"कन्नौज से।"

"कब मुलाकात करना चाहता है ?"

"कल, आज, अभी जितनी जल्दी मुमकिन हो।"

"तुमने क्या इन्तजाम किया है ?"

"आपसे मशविरा करके इन्तजाम करूँगा।"

"मुझे क्या करना होगा ?"

'मेरी तरह लिबास बदलना होगा। शेख की कफनी पहनकर पीर बनना पड़ेगा।"

"यह काम तुम ज्यादा ठीक कर सकते थे !"

"एक ही आदमी के सामने एक साथ मैं दो स्वाँग कैसे भर सकता हूँ !"

"तो कोई दूसरा आदमी चुन लो।

"सल्तनत का राज है। दूसरे पर उसका खुलना ठीक नहीं।"

"मेरे किये यह सब न होगा। बेहतर है, उसकी गर्दन उड़ा दो। मैं परवाने पर सही किये देता हूँ।"

"शादी का पैगाम लानेवाले की गर्दन पर आँच नहीं आने दी जाती।"

"तो इस तरह स्वाँग भरने से क्या फायदा होगा ?"

कई फायदे होंगे। अभी उसकी गर्दन पर हाथ साफ करने से उसके दूसरे साथी साफ बच जायँगे और फिर वक्त आने पर बदला लिये बिना न छोड़ेंगे। उससे बातें करने पर उन साथियों का और उनकी

साजिशों का पूरा भेद मिल जायगा। इसके बाद आपके इस हुक्म की तामील की जायगी।"

"तुम्हारी बातों पर यकीन नहीं होता। मुझे लगता है कि तुम या तो मुझे डराना चाहते हो, या बेवकूफ बनाना।"

"इस तरह का मेरा कोई इरादा नहीं है, ईमान से कहता हूँ।"

"अच्छी बात है, मगर यह याद रखना कि अगर कोई ऐसी-वैसी बात हुई तो तुम्हारे सर की खैरियत न होगी।" शाही रोब के साथ खानखानाँ ने धमकाया।

"मुझे मंजूर है।" सिर झुकाकर मुल्ला ने उत्तर दिया।

"खूब सोच-समझ लो।"

"मेरा सब सोचा-समझा हुआ है।"

यह कहकर मुल्ला आदाब बजाकर खानखानाँ को कुछ कहने का अवसर दिये बिना ही बुर्ज से नीचे उतर गया।

उसके चले जाने पर खानखानाँ छत पर टहलने और उसकी बातों पर विचार करने लगे। वे अपनी स्मृति पर जोर देकर सोचने लगे कि नाहरपाल या विजयपाल नाम उन्होंने पहले कहाँ सुना है। पर स्मृति ने उनका साथ न दिया। एक बार उन्हें यह भी सन्देह हुआ कि पिछली सुबह को नन्दा के मामले को लेकर उसने मुल्ला का जो तिरस्कार किया था, कहीं मुल्ला उसका बदला चुकाने की घात में तो नहीं है और इसी लिए सारे जोड़-तोड़ कर रहा है। अगर ऐसा हुआ तो पता जरूर लग जायगा। इसमें शक नहीं कि मुल्ला सल्तनत का शुभचिन्तक और वफादार नौकर है। उसकी नीयत बुरी नहीं है। ज्यादा से ज्यादा वह मुझे बेवकूफ बना सकता है। पर उसे इसका बदला भी दिया जा सकता है।

इसी बीच दरबान ने आकर सलाम किया। उसके हाथ में एक

लिफाफा था। लिफाफा हाथ में लेते हुए खानखानाँ ने पूछा—"कहाँ से आया है?"

"एक कासिद आगरे से लाया है।"

"बेगम मुअज्जिमा का है।" खानखानाँ ने लिफाफे के ऊपर की मुद्रा और हस्तलिपि को पहचानते हुए मन ही मन कहा। फिर दरबान को जाने का संकेत करते हुए लिफाफे को खोलकर पढ़ने लगे। बेगम मुअज्जिमा ने लिखा था—

"अनेक प्रणाम के पश्चात् आलीजाह की सेवा में निवेदन करना चाहती हूँ कि नन्दा जिस दिन से यहाँ आई है, बराबर उदास रहती है। किसी चीज से उसका मन नहीं बहलता। वह रात दिन न जाने क्या-क्या सोचा करती है। उसका यह रवैया देखकर मुझे बड़ा डर लगता है। वह मुझसे अनेक बार कह चुकी है कि मुझे मेरी माँ से मिला दो। वह अब काफी समझदार हो गई है। मुझे यह कहने की हिम्मत नहीं पड़ती कि मैं ही तेरी माँ हूँ। डर है कि कहीं वह मुझसे नफरत न करने लगे। पाप छिपाये नहीं छिपता। कभी न कभी प्रकट हो ही जाता है। यह सम्भव नहीं, कि मेरे पाप की कहानी सुन कर राजपूत की कन्या मुझे माफ कर दे। समझ में नहीं आता कि उसे किस तरह शान्त किया जाय। कभी-कभी विचार आता है कि मैं उसे लेकर किसी ऐसी जगह चली जाऊँ जहाँ मुझे कोई न जानता हो। वहाँ जाकर उससे कह दूँ कि मैं ही तेरी माँ हूँ। क्या ऐसा करना ठीक रहेगा? आज ही एक आदमी के मामले को लेकर—जो कन्नौज से उसकी गाड़ी के साथ आगरे तक आया है—वह मुझसे लड़ने को तैयार हो गई। वह उससे मुलाकात करने की आज्ञा चाहती थी। मैंने आज्ञा नहीं दी तो वह अपने शयनागार में जाकर बहुत देर तक फूट-फूटकर रोती रही। मैं नहीं जानती कि वह आदमी कौन है। उसके बारे में पता लगाना जरूरी है। आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा है।"

इस पत्र से खानखानाँ चिन्ता में पड़ गये। यदि केवल नन्दा का सवाल होता तो उसे फिर थान लौटाया जा सकता था। पर बेगमे मुअज्जिमा का उसके साथ कहीं चला जाना उन्हें स्वीकार न था। वैसे वे दोनों को प्रसन्न देखना चाहते थे—पर अपनी मरजी के मुताबिक़। उनके विचारों की पटरी बेगम मुअज्जिमा और नन्दा के साथ कैसे ठीक बैठे, यही उनकी चिन्ता का विषय था। कन्नौज से नन्दा के साथ आनेवाले व्यक्ति का उल्लेख भी कम चिन्ताजनक नहीं था। वह कौन है और क्यों नन्दा से मिलना चाहता है! स्वयं नन्दा भी उससे मिलने को इतनी उत्सुक क्यों है कि बेगम मुअज्जिमा की अवज्ञा तक करने को तैयार हो गई। उस व्यक्ति का सम्बन्ध मुल्ला के बतलाए हुए विजयपाल से तो नहीं है! यदि ऐसा हुआ तो यह मानना पड़ेगा कि नन्दा भी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से षड्यन्त्र में भाग ले रही है! इस दशा में उसे यहाँ से जाने देना और भी खतरनाक हो सकता है। इन सब बातों की पूरी जानकारी केवल मुल्ला को हो सकती है। पर उससे कुछ मालूम करना ठीक न होगा। प्रत्येक बात पर कल्पना का चमकीला आवरण चढ़ा देना उसका स्वभाव है। सम्भव है, इस प्रश्न को लेकर भी वह मुझे बेवकूफ बनाने का भी प्रयत्न करे! ऐसी दशा में कन्नौज से आये हुए व्यक्ति से भेंट करके उसके मन का रहस्य जान लेना अधिक ठीक होगा। नन्दा से भी शीघ्र ही भेंट करनी होगी। उस दिन की भेंट में नन्दा कुछ कहना चाहती थी, पर मैंने उसे अवसर न दिया। अच्छा हो, बेगम मुअज्जिमा के साथ उसे सीकरी में रक्खा जाय और प्रत्येक वस्तु को समीप से देखकर समझा जाय।

इस तरह के विचारों में तल्लीन खानखानाँ समन बुर्ज के सामनेवाले सहन में चहलक़दमी कर रहे थे कि सहसा किसी की आवाज सुनकर चौंक पड़े। युवक सम्राट् 'खबरदार खबरदार' कहते उनकी ओर चले आ रहे थे। निगाह आकाश की ओर थी। खानखानाँ ने

गर्दन मोड़कर देखा—एक बहरी एक कबूतर का पीछा करती हुई उसी ओर आ रही है।

अकबर ने एक बार फिर ललकारा—"खबरदार!" बहरी वहीं से लौट पड़ी और सहमा हुआ कबूतर छत की मुँडेर पर आ गिरा। अकबर ने उसे अपने हाथ में उठा लिया और थपथपाने लगे।

बैरम खाँ ने कहा—"इकबाल बुलन्द हो। खुदाबन्द की हुक्म उदूली करने की हिम्मत दरिन्दों-परिन्दों में भी नहीं है।"

कबूतर की पीठ पर हाथ फेरते हुए अकबर ने मुस्कराकर उत्तर दिया—

"तू कारे जमीं रा नकू साख्ती
कि बा आसमाँ नीज परदाख्ती!"

(१६)

सरदार कुशलपाल की ओर से सूचना पाने की प्रतीक्षा में विजयपाल का दिन कठिनाई से कटा। चिन्ता के कारण रात को उसे नींद भी अच्छी नहीं आई थी। दूसरा दिन भी यों ही कटा। आज नन्दा का पत्र लेकर रामपाल भी नहीं आया था। भोजनोंपरान्त वह तख्त पर लेटकर परिस्थिति पर विचार करने लगा।

कुशलपाल का व्यक्तित्व उसे आकर्षक नहीं लगा था। उसकी दृढ़ता, सच्चरित्रता और बुद्धिमत्ता के सम्बन्ध में उसे बहुत कुछ बताया गया था, पर आज कुशलपाल ने अपनी जो कहानी सुनाई थी, उससे यही प्रतीत हुआ कि वह भगोड़ा सरदार है। ऐसा व्यक्ति उत्तरदायित्व को अन्त तक नहीं निभा सकता। फिर वह बातूनी भी आवश्यकता से अधिक है। राजनीतिक षड्यंत्रों के लिए ऐसा व्यक्ति वाञ्छनीय नहीं होता।

इन विचारों से विजयपाल की आस्था कुशलपाल पर से बहुत कुछ कम होने लगी। उसने सोचा, एक बार आलमारी में रक्खी पुस्तकों को देखा जाय। शायद इससे कुशलपाल की रुचि और प्रकृति का कुछ पता लगाया जा सके। वह उठा और सामने रक्खी आलमारी के आगे जा खड़ा हुआ। सबसे पहले उसकी दृष्टि एक रेशमी पुट्ठे की सुन्दर जिल्द पर पड़ी। वह भगवद्गीता थी। हाशिये पर श्लोकों से भावसाम्य रखनेवाले सादी शीराजी के शेर उद्धृत थे। सादी उन दिनों रईसजादों के प्रिय कवि थे। विजयपाल के सामने भी

हो गई। दरवाजा खोलकर पत्रवाहक बाहर निकला। विजयपाल ने भी उसका अनुकरण किया। अब वे एक विशाल प्रासाद के सिंहद्वार पर खड़े थे।

शेख साहब के दर्शन यहीं होंगे क्या ?" उसने धड़कते हृदय से प्रश्न किया।

चुप रहने का संकेत करते हुए पत्रवाहक ने एक चित्र निकालकर दिखाते हुए अनुसरण करने का संकेत किया।

उसके पीछे-पीछे चलकर विजयपाल सिंहद्वार के अभ्यन्तरवर्त्ती सहन में जा पहुँचा जिसमें हरी दूब का मखमली फर्श बिछा हुआ था और जिसके ठीक बीच से होकर एक पक्का मार्ग सामने की ओर चला गया था। इसी मार्ग पर होकर दोनों सहन को पार करके सामने के चबूतरे पर पहुँचे। महल का मुख्य भाग यही था। चबूतरे की सीढ़ियों पर चढ़कर एक और द्वार मिला जो लाल पत्थर का महराबदार बना था। महराब के दोनों ओर सफेद पत्थरों की एक पंक्ति थी जिस पर कुरान की आयतें लिखी थीं। इस द्वार में प्रवेश करके पत्रवाहक ने विजयपाल को आगे कर लिया और स्वयं उसके पीछे-पीछे मार्ग बताता हुआ चलने लगा। महल की भीतरी रचना पेंचदार थी। ड्योढ़ी पार करने के बाद एक बरामदा था जिससे दो गलियारे विपरीत दिशाओं में चले गये थे। पत्रवाहक ने विजयपाल को दाहिनी ओर के गलियारे में मुड़ने का संकेत किया। गलियारे का फर्श सफेद बिल्लौरी पत्थर से बना था। उसकी चमक से मोटी दीवालों से घिरे गलियारे के अंधकार में आंशिक कमी हो जाती थी।

लगभग पचास कदम आगे जाकर गलियारा एक छोटी-सी बारहदरी में समाप्त हो गया। वहाँ पहुँचकर विजयपाल ने मार्ग-प्रदर्शन के लिए मुड़कर पत्रवाहक की ओर देखा। वहाँ कोई नहीं था।

विजयपाल के समस्त शरीर से एक साथ पसीना निकल पड़ा। उसकी समझ में न आया कि उसे अब किधर जाना चाहिए। जाल

में फँसे मृगराज की भाँति विवशतापूर्ण दृष्टि से एक बार उसने चारों ओर देखा। कहीं कोई नहीं था। अन्य उपाय न देख उसने होनहार के बलवान् हाथों में अपने को सौंप दिया और जहाँ खड़ा था, वहीं खड़े रहकर भावी की प्रतीक्षा करने लगा।

उसे इस प्रकार खड़े कुछ ही देर हुई थी कि दाहिनी ओर के एक कमरे से घंटी की कर्कश ध्वनि आई। फिर किवाड़ों के खुलने का शब्द हुआ। कुछ ही देर बाद सरदार कुशलपाल उसे अपनी ओर आते दिखाई दिये।

शेख साहब आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।" कहते हुए कुशलपाल ने विजयपाल के कंधे को स्पर्श किया और फिर पर्दे को हटाकर उसे उसी कमरे में ले गया।

भीतर पहुँचकर विजय ने आँखें फाड़कर चारों ओर देखा। प्रकाश बहुत कम था। पश्चिम की ओर केवल एक रोशनदान था जिससे छनकर दिवान्त की कुछ फीकी किरणें कमरे के फर्श के लगभग एक वर्ग हाथ में बिछल रही थीं।

"कहाँ हैं शेख साहब!" आतंकित मुद्रा में उसने कुशलपाल से प्रश्न किया।

कुशलपाल ने सामने की ओर संकेत कर दिया।

आँखें गड़ाकर विजयपाल ने देखा। पिछली दीवाल से सटी एक श्वेत मूर्त्ति, जिसके वस्त्र दूध-से उजले हैं, स्थिर मुद्रा में बैठी है। भारी-भारी दीवालों की दुर्भेद्य दृढ़ता, वातावरण की गम्भीरता और प्रकाश और अन्धकार की समानता ने एक साथ अपना सम्मिलित प्रभाव विजयपाल के मस्तिष्क पर डाला। सहमते-सहमते वह उस श्वेत मूर्ति की ओर बढ़ा। कुछ पास जाने पर उसने देखा—कम्बल के ऊँचे आसन पर एक शुभ्र-मूर्ति घुटनों के बल बैठी है। हाथ में एक माला है जिसके दाने अन्धकार में भी चमक रहे हैं। श्रद्धा-भाव से विजयपाल का मस्तक आपसे आप मूर्त्ति के चरणों में झुक गया।

"बड़ी उम्र हो !" मूर्त्ति ने स्नेहसिक्त स्वर से मधुवर्षण किया। तत्पश्चात् उसके संकेत पर विजयपाल दाहिनी ओर के आसन पर बैठ गया। कुशलपाल भी उसके पास ही बैठ गया।

अब विजयपाल की आँखें कमरे के अल्प प्रकाश में भी देख सकती थीं। उसने देखा, मुख को छोड़कर शेख का समस्त शरीर एक श्वेत वस्त्र से ढका है। डाढ़ी के बाल चितकबरे हैं। रंग स्फटिक की भाँति श्वेत है, और ललाट प्रशस्त। नासिका ऊँची और लम्बी है। विशाल नेत्रों से शान्ति और वात्सल्य की धारा प्रवाहित हो रही है। उसकी उपस्थिति में विजय का भय आपसे आप दूर हो गया और हृदय में श्रद्धा-भक्ति की पवित्र भावनायें उमड़ने लगीं।

"निःसन्देह यह महान् पुरुष है", उसने मन ही मन निश्चय किया। "यह दिव्य विभूति है", उसकी अन्तरात्मा ने साक्षी दी।

वह सिर झुकाये चुपचाप शेख के चरणों की ओर देखने लगा।

"खैर आफियत ?" शेख ने साधु-सुलभ ढंग से पूछा।

"आपके चरणों की कृपा है।" विजयपाल ने नम्रता से उत्तर दिया।

"इधर पहली बार आना हुआ है ?" शेख ने प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए पूछा।

"जी पहली बार ही आया हूँ।"

"शहर कैसा पसन्द आया ?"

"शहर तो बहुत सुन्दर है। पूरा स्वर्ग है। पर मुझे घूमने-फिरने का अधिक अवसर नहीं मिला है।"

"किस जगह कयाम किया है ?"

"कुछ दिन चौरंगी सराय में रहा, लेकिन अब यहीं पास... !" कहते-कहते विजय ने कुशलपाल की ओर देखा।

"जी, ये मेरे पास फिरोजी सराय में ठहर गये हैं। कन्नौज के सरदार विजयपाल जी यहीं हैं, जिनका जिक्र मैंने आपसे किया था।" कुशलपाल ने चपलता से विजयपाल के कथन को पूरा कर दिया।

"मेरे लायक खिदमत?" शेख ने साधुता में व्यावहारिकता का पुट देते हुए प्रश्न किया।

इस सीधे प्रश्न से विजयपाल असमंजस में पड़ गया। उसके भावों को ताड़ते हुए कुशलपाल ने उसकी ओर से उत्तर दिया—

"ये पूर्व के अमीरों के अजीज हैं। इधर आगरा आये थे। आपका नाम सुनकर दर्शन करने चले आये हैं। आपके शिष्य होना चाहते हैं।"

"सारी दुनिया फकीरों की शागिर्द है। फकीरों की शागिर्दी तालाब के पानी जैसी आसान है और आबे जमज़म जैसी मुश्किल!" शेख ने मुस्कराते हुए मधुर वाणी से कहा।

"श्री चरणों का परिचय अभी मुझे पूरा-पूरा नहीं मिला।" विजयपाल ने प्रसंग को अनुकूल बनाने के उद्देश्य से कहा।

"फकीरों का क्या परिचय! तस्बीह और किताब, रीश और दीन", शेख ने मुस्कराते हुए कहा और सामने रक्खी कुरानमजीद की पुस्तक विजयपाल की ओर बढ़ाई। आदर के साथ विजयपाल ने पुस्तक को हाथ में लिया। उसकी जिल्द को उठाकर देखा—लिपिकार के स्थान पर मोती जैसे अक्षरों में 'सेख-कमाल बयाबानी' लिखा था। मुखपृष्ठ पर लाहौर के वर्तमान हाकिम, अजमेर के पीर और आगरा के वकीले मुतलक व सदर-उस्सदूर की सद्दियाँ थीं।

"जी", पुस्तक पर से दृष्टि हटाते हुए विजयपाल ने कहा। आसन के नीचे से एक पत्र निकालकर शेख ने विजयपाल के सामने खिसका दिया जो लाहौर के हाकिम की तरफ से आया था और जिस पर 'शेख कमाल बयाबानी हाल मुकाम फतहपुर सीकरी, पता लिखा था।

"जी, समझ गया।" कहकर विजयपाल ने वह पत्र फिर शेख के चरणों के पास रख दिया।

"एक खत यह भी," कहते हुए शेख ने तीसरा एक और खत विजयपाल के आगे बढ़ा दिया। यह खत मुराद बेग की ओर से आया था और इसमें दल के सिद्धान्तों के साथ-साथ विजयपाल की यात्रा का अभिप्राय और उसका विस्तृत परिचय दिया गया था। विजयपाल को मुराद बेग के अक्षर पहचानने में देर न लगी। उसने कुछ खुलते हुए कहा—"साधु-संन्यासियों से कुछ छिपा नहीं रहता।"

"वह फकीर ही क्या जिसे दोनों आलमों की खबर न रहे।" शेख ने फकीरी भाषा में विजयपाल के कथन का समर्थन करते हुए कहा। विजयपाल ने उत्तर में केवल सिर झुका दिया।

"मजलिस का वक्त अब बहुत दूर नहीं है, इसलिए हम लोगों को सीधी मतलब की बातचीत करनी चाहिए।" शेख ने वार्त्तालाप को संक्षिप्त करने के अभिप्राय से कहा।

"सेवक उपस्थित है, आज्ञा कीजिए।" विजयपाल ने धैर्य के साथ उत्तर दिया।

"सिर्फ आज्ञा से काम न चलेगा। बातचीत दोनों तरफ से होती है।" शेख ने फिर प्रस्ताव किया।

"पर शिष्यों को बोलना कम चाहिए, सुनना अधिक, ऐसा वृद्धों ने कहा है।" विजयपाल ने आरम्भ को बचाने के उद्देश्य से कहा।

"ठीक है। पर असलियत को और ज्यादा ठीक से समझना जरूरी हो जाता है। क्या पूर्व के लोग बैरम खाँ की तलवार का लोहा मान चुके हैं?"

"कुछ लोग जरूर मान चुके हैं, पर सब नहीं।" विजय ने भी बचते हुए उत्तर दिया।

"सब नहीं! पर ज्यादा तादाद किन लोगों की है?"

"जो लोहा मानने को तैयार नहीं हैं, उनकी !"

शेख की त्योरियों पर बल पड़ गये। उसने भेद-भरी दृष्टि से कुशलपाल की ओर देखा।

कुशलपाल तुरन्त बोल उठा—"सरदार विजयपाल ठीक कहते हैं। पूर्व के पठानों में अभी दम बाकी है। सिकन्दर को शेरशाह के तख्त पर बैठाने का ख्वाब देखना अभी उन्होंने नहीं छोड़ा है।"

"मगर सिकन्दर को उधर से इम्दाद तो कोई नहीं मिल रही है ?" शेख ने विजयपाल की ओर देखते हुए प्रश्न किया।

"इसका कारण यह कि जौनपुर और मेवात के बीच में एक चौड़ी खाई बन गई है जिस पर बैरम खाँ के बलवान हाथों का अधिकार है।"

"फिर पठान अपने इरादे में किस तरह कामयाब हो सकते हैं ?"

"वे इसके लिए मेवात और लाहौर की ओर देख रहे हैं। पंजाब से सिकन्दर शाह को सहायता मिल सकती है और मिल भी रही है। यदि मेवात की ओर से आक्रमण करने का प्रबन्ध हो सके तो पूर्वी इलाके को मुगलों से छीन लेने को वहाँ के पठान काफी होंगे !"

"पर तुम तो पठान नहीं हो ?"

"मैं पठान जरूर नहीं हूँ पर उनकी ओर से बोलने का मुझे उतना ही अधिकार प्राप्त है जितना हिन्दुओं की ओर से बोलने का।"

वहाँ के हिन्दू तो बेजबान हैं। कम से कम मैंने ऐसा ही सुना है।"

"हिन्दू बेजबान हो सकते हैं, पर बेदिल नहीं हैं। और जहाँ तक मुगलों का सवाल है, वे पठानों के साथ हैं। वे मुगल-सल्तनत को नहीं चाहते। खास कर जब से मुगलों के चकलेदारों ने जौनपुर और कन्नौज के जौहरियों को लूटा-मारा है।"

शेख ने बनावटी कुशलपाल की ओर देखा। उनकी दृष्टि में इस बार क्रोध का आभास था।

"जी, सरदार विजयपाल ठीक कहते हैं। खानजमाँ ने जौहरियों और महाजनों को बहुत सता रक्खा है!" विजयपाल के कथन की पुष्टि करते हुए बनावटी कुशलपाल ने कहा।

"पूर्व के जौहरी पैसेवाले हैं। वे रुपये-पैसे से पठानों की मदद कर सकते हैं। पैसा होने पर सेना भी खड़ी हो सकती है, यही न?"

"हाँ यह बात भी है। पर पूर्व के हजारों राजपूत-पठान जवान अपनी खुशी से बैरम खाँ से लोहा लेने को तैयार हैं। हम सब देखते हैं कि पूर्व में मुगलों के पास कोई सेना ऐसी नहीं है जो उनके वहाँ टिकने में मदद दे सके। अगर आगरे की सेना पश्चिम की सेना से फँस जाय तो पूर्व के मुगल अमीर और चकलेदार चुटकी बजाते भाग खड़े होंगे।"

"आप थोड़ी-सी गलती कर रहे हैं।" शेख ने बीच ही में टोकते हुए कहा—"आप रुकन खाँ रूहानी के छक्के छुड़ानेवाले खानजमाँ को शायद भूल रहे हैं। यहाँ लोगों का विश्वास है कि जब तक सम्भल और जौनपुर खानजमाँ के हाथ में हैं, पूर्व से मुगल सल्तनत पर हमला नहीं हो सकता।"

'मैं खानजमाँ को बहुत समीप से जानता हूँ। रुकन खाँ रूहानी का मामला दूसरा था। उस समय आगरे की सेना साथ थी और तुर्कों में नया बलबला था। खानजमाँ भी अपनी जवानी के जौहर दिखाने का शौक रखते थे। पर आज का मामला दूसरा है। आज-कल खानजमाँ साहब शाहमबेग को लिए लखनऊ में पड़े हैं और मैदाने मुहब्बत में करिश्मे दिखा रहे हैं।"

"अव्वल तो शिया और दूसरे उजबक! करेला नीम पर चढ़ रहा है। खैर! तो पूर्व में ऐसे दिलेर अफगान सरदार कितने हैं जिनसे हम जरूरत के वक्त इम्दाद की उम्मीद रख सकते हैं?" बनावटी शेख ने फुसफुसाने के ढंग से कहा।

"सरदारों की गिनती नहीं है। संभल के इलाके के लिए हसन खाँ पचकोटी तैयार बैठा है। बंगाले में सुल्तानबहादुर का बोलवाला है ही, उसकी सेना जौनपुर तक चक्कर लगा रही है। चुनार में शेरखाँ अपने को बहुत मजबूत बना चुका है और आगरे पर सीधा हमला करने को तैयार है। कन्नौज में मुरादबेग की ताकत इन लोगों से कम नहीं है। फिर ये सब सरदार एक ही उद्देश्य और एक ही मत के हैं। खानजमाँ तो हवा में उड़ जायगा।"

"खानजमाँ के पास, सुनते हैं, सेना बहुत जबर्दस्त है?" बनावटी शेख ने योजना को अधिक स्पष्ट रूप में समझने के लिए प्रश्न किया।

"यह खयाल गलत है। रुकन खाँ की पराजय के बाद से यदि सच पूछा जाय तो खानजमाँ निश्चिन्त हो गया है। उसने अपने सिपाहियों को छुट्टी दे दी है और उनके वेतन आप डकारने लगा है। तहवील का रुपया शाहमबेग की जरूरियात पूरी करने में जाता है। हाँ बैरम खाँ जरूर समझते होंगे कि उसके पास बड़ी सेना है क्योंकि जब आगरे से मनसब की जाँच होने जाती है तब टुकड़खोरे, भटियारे, भिश्ती, धुनिए, जुलाहे और कुछ बाजारों में घूमनेवाले जङ्गली मुगल, पठान और तुर्क पकड़ लिए जाते हैं। उन्हीं को मँगनी के लिफाफे पहनाकर और घसियारों के घोड़ों व भटियारों के टट्टुओं पर चढ़ाकर हाजिर कर दिया जाता है। मनसबदारी की रस्म अदा हो जाती है। शाही खजाने से तनख्वाह पूरी चली आती है। तोप और तलवार के मुँह पर ऐसे सिपाही क्या कर सकते हैं?"

शेख की आँखें क्रोध से लाल हो गईं। वे बार बार बनावटी कुशलपाल की ओर देखने लगे। कुशलपाल गरदन झुकाये चुपचाप सुन रहा था। कुछ देर बाद शेख ने कहा—

"अगर तुम्हारा बयान सच है तो मुगल सल्तनत को मिट्टी में मिलते देर न लगेगी।"

"हमारा विश्वास यही है; पर हमारी योजना मूल से आरम्भ होती है। जो भूलें पहले हो चुकी हैं, हम उनसे लाभ उठाना चाहते हैं। इसी लिए मुझे सेवा में भेजा गया है।"

"सचमुच तुम्हारी जानकारी बहुत काम की है। पूर्व और पश्चिम की योजनायें यदि एक साथ काम करें तो कामयाबी में शक न रह जायगा। तुम लोग कहाँ से शुरू करना चाहते हो?" प्रश्नसूचक भाव से शेख ने विजयपाल की ओर देखा।

"केवल आपके सामने निवेदन कर सकता हूँ।" विजयपाल ने हाथ जोड़कर निवेदन किया।

"सरदार कुशलपाल अपने ही आदमी हैं। वे तुम्हारे भी मित्र हैं। इनके सुनने में कोई हानि नहीं है।" शेख ने प्रस्ताव किया।

"दल के मुखिया की आज्ञा का पालन मुझे अक्षर-प्रत्यक्षर करना है। आप पुर्वियों के स्वभाव से शायद परिचित नहीं हैं। हमें सिर से अधिक अपनी बात का खयाल रहता है।"

"कोई हर्ज नहीं," कहकर शेख ने बनावटी कुशलपाल की ओर देखा।

"जी, यही मुनासिब है। मैं जा रहा हूँ।" कहकर कुशलपाल उठा और कमरे से बाहर चला गया।

कुशलपाल के बाहर चले जाने पर शेख ने कहा—"अब तुम अपनी बात बेखटके कह सकते हो।"

"हमारा मामला अधिक पेचीदा नहीं है। पर एकान्त की आवश्यकता इसलिए थी कि मैं एक पत्र आपको दिखाना चाहता था जो सिकन्दर शाह सूरी ने पूर्व के सरदारों के पास भेजा है। आपके पास शायद वह न आया होगा। हमारे दल का विचार इस पर आपकी सम्मति जानने का है।"

यह कहकर विजयपाल ने एक पत्र जेब से निकाला और उसे शेख के चरणों के पास रख दिया।

एक उचटती नजर पत्र पर डालते हुए शेख ने कहा—"रोशनी कम है, इसलिए यहाँ पढ़ सकना मुमकिन न होगा। जबानी सुना दो कि इसमें लिखा क्या है?"

"सिकन्दर शाह ने कुछ सुझाव पेश किये हैं। उसका विश्वास है कि यदि उन पर अमल किया जाय तो सफलता अवश्य मिलेगी।"

"क्या सुझाव हैं?"

"पहला सुझाव यह है कि सबसे पहले खानजमाँ और खानखानाँ के व्यक्तियों से निबट लिया जाय। ये दो खम्भे टूट गये तो मुगल सल्तनत की इमारत आप से आप ढह जायगी। खानजमाँ से निबटना तो कुछ मुश्किल नहीं है, क्योंकि वह ऐयाश आदमी है और किसी हूर या गिलमा की परछाहीं में उसके समीप पहुँचा जा सकता है।

पेचीदा मामला खानखानाँ का है। उनके पास पहुँचने के लिए किसी बड़े जरिये की जरूरत होगी।"

"इसके बाद क्या होगा ?"

"इसके बाद मालवा और मेवाती पठानों के साथ वह दिल्ली की ओर बढ़ेगा। इधर चुनार से शेर खाँ और कन्नौज से मुराद बेग कालपी और सम्भल लेते हुए आगरे पर हमला कर देंगे। मुगल चारों ओर से घिर जायँगे और ईश्वर ने चाहा तो उन्हे इस बार ईरान और काबुल जाने का भी रास्ता न मिलेगा।"

"खानखानां और खानजमां से किस तरह निबटना होगा ? उन्हें गिरफ़्तार करने से ही काम चल जायगा या जान से मार देना होगा ?"

"गिरफ़्तारी के पक्ष में हम लोग नहीं हैं। जो भूल एक बार हो चुकी है, उसे दोहराना ठीक न होगा।"

"तुम्हारा इशारा किस भूल की तरफ है।"

"मेरा मतलब उस भूल से है जो सम्भल के हाकिम नसीर खाँ ने खानखानाँ को गिरफ़्तार करके की थी। बैरम खाँ को बच निकलने का मौका मिल गया, जिसका नतीजा हमें आज दिन भुगतना पड़ रहा है।"

"पर उसमें नसीर खाँ की गलती नहीं थी। नसीर खाँ तो बैरम खाँ को क़त्ल करना चाहता था और इसीलिए उसने लखनऊ के राजा मित्रसेन पर दबाव डालकर उसको सम्भल बुलवा लिया था। पर तक़दीरें खानखानाँ के साथ थी। शेरशाह की समझ में यह आया कि बैरम खाँ-सा वफ़ादार और सच्चा सिपहसालार अगर उसकी तरफ़ हो जाय तो पठानों की सल्तनत सूरज और चाँद की तरह कयामत तक रोशन रहेगी।"

"गलती गलती ही होती है, वह किसी की ओर से हो। दुश्मन पर विश्वास करना भारी गलती है। अगर नसीर खाँ की बात मान

ली जाती तो हुमायूँ को फिर हिन्दुस्तान की ओर रुख करने की हिम्मत न पड़ती।"

हर काम के लिए खुदा ने एक वक्त मुकर्रर कर दिया है। खैर, इस बहस से कुछ फायदा नहीं। अब तुम शायद नसीर खाँ या शेरशाह की गलती को दुरुस्त कर लेना चाहते हो जिससे बैरम खाँ फिर लौटकर इस मुल्क में न आ सके?"

सहज-स्निग्ध मुस्कान के साथ बनावटी शेख ने प्रश्न किया।

"हाँ।" कुछ काँपती आवाज में विजय ने स्वीकृति दी।

"तुम्हारे दोस्तों की राय जरूर काबिले गौर है। फिर भी अमल करने से पहले उसे अच्छी तरह समझ लेना चाहता हूँ। तुम्हें इसी लिए आगरे भेजा गया है कि खानखानाँ के जिस्म पर से गर्दन का बोझ हलका कर दिया जाय?"

"हाँ!" इस बार विजय के स्वर में दृढ़ता थी।

"किस तरह?"

"आरम्भ से सुनाना ठीक रहेगा। कन्नौज में हम चार दोस्तों की एक छोटी-सी गोष्ठी है जिसके नेता मुराद भाई हैं। हम सब एक जैसे विचार रखनेवाले हैं। बहुमत से हमारी गोष्ठी जो निर्णय कर देती है, उस पर अमल करना हममें से प्रत्येक का धर्म है।"

"ठीक; साजिश के मामलों में बिना ऐसी गोष्ठियों के कामयाबी नहीं हासिल होती। तुम्हारी इस गोष्ठी ने एक राय के बहुमत से खानखानाँ को छुट्टी देने का निश्चय किया। इसके बाद?"

"एक राय से नहीं, बल्कि राय कसरत से समझिए। क्योंकि हममें से तीन कत्ल करने के पक्ष में थे, पर एक की सम्मति विपक्ष में थी।"

"विपक्ष में कौन था?"

"उसका नाम सुनकर आपको आश्चर्य होगा और शायद आप मुझे क़ायर भी समझने लगें।"

"मतबल यह है कि तुम्हीं कत्ल करने के पक्ष में नहीं थे ! यह अपने-अपने खयाल की बात है। इसमें दिलेरी और बुजदिली की बात नहीं है। मगर ताज्जुब यह है कि जिस काम के लिए तुम्हारा दिल गवाही नहीं देता, उसे तुमने अपने सर पर क्यों लिया ?"

"अपनी इच्छा से नहीं लिया। पाँसा मेरे ही रुख पर पड़ गया।"

"मैं समझा नहीं। तुम्हारे रुख पर पाँसा कैसे पड़ गया ?"

"यह काम कौन करे, इसका निर्णय हम लोगों ने पाँसा फेंककर किया था। 'दस' मेरा दाँव था।"

"पाँसा फेंका गया और वह 'दस' के रुख पर गिरा—यही न ! मगर तुम्हें अफ़सोस तो जरूर हुआ होगा।"

"अफसोस तो हुआ था, पर ज्यादा उस वक्त नहीं हुआ। पीछे से कुछ ऐसी बातें हो गईं कि मुझे इस काम को अपने ऊपर आने का भारी रंज है।"

"तो तुम इनकार कर सकते थे !"

"यह हमारी गोष्ठी के नियमों के विरुद्ध था। वे लोग मुझे कायर समझते।"

"तो तुम्हें मजबूरन आगरे आना पड़ा, हालाँकि तुम्हारा दिल नहीं चाहता था ?"

"दिल तो अब भी नहीं चाहता, पर हाथ अपना कर्त्तव्य अवश्य पूरा करेंगे।"

"मुझसे तुम क्या मदद चाहते हो ?"

"यही कि मुझे ठीक मौके पर आप बैरम खाँ के पास तक पहुँचा दें। वह आपसे बहुधा मिलता-जुलता रहता है।"

"मगर इसमें जो खतरा है, तुमसे छिपा न होगा ?"

"मुझे आपकी योजनाओं का पूरा पता है और मैं यह भी जानता हूँ कि आप खतरों से डरनेवाले नहीं हैं।"

"ठीक है। मगर मैं हर एक काम को इतमीनान के साथ करना चाहता हूँ। मुझे जल्दबाजी पसन्द नहीं है।"

विजयपाल ने उत्तर नहीं दिया। वह सिर झुकाये चुपचाप बैठा रहा।

"मुल्ला पीरमोहम्मद के बारे में सुना ही होगा। आजकल मोहतिसब वही है। खुदा जानता है; ऐसा जालिम और मक्कार दुनिया की पीठ पर दूसरा न होगा। पूरा घाघ है। उसकी नजरों से बच निकलना आसान नहीं है।"

"शायद आप मुझे डराने की कोशिश कर रहे हैं।"

"नहीं, मेरा मतलब यही है कि ऐसे नाजुक काम में हाथ डालने से पहले खूब सोच-समझ लेना चाहिए। मान लो, तुम्हें कामयाबी न हुई?"

"उसके लिए हम सब तैयार हैं। राज्य न सही, स्वर्ग तो मिलेगा। गीता में कहा ही है—'हतोवा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।' ओंठों पर मुस्कराहट लाने का प्रयत्न करते हुए विजयपाल ने कहा।

"तुम बहादुर हो। पर मुझे भी तो मौका दो कि मैं अपने दिल को तैयार कर लूँ। तुम्हें खानखानाँ के पास, ठीक मौके पर पहुँचाना मेरा काम होगा, यही न। इस तरह इस साजिश में मेरी भी शिरकत हो जायगी!"

"और उसके फल में भी।"

"फल मीठा और कड़ुआ दोनों तरह का हो सकता है। पर हमें कड़ुए फल की बाबत पहले सोचना होगा। मान लो, अगर कुछ करने-धरने के पहले ही तुम गिरफ्तार हो गये!"

"तो...?"

"तुम्हें तरह-तरह की तकलीफें दी जायँगी—ऐसी तकलीफें जिनका तुम्हें गुमान भी न होगा, जिन पर इन्सान मौत को तरजीह

देता है। उस हालत में, मुमकिन है, तुम अपने साथियों का नाम बता दो!"

उत्तर में विजयपाल ने घृणासूचक भाव से मुस्करा दिया। फिर कहा—"मैं राजपूत हूँ। राजपूत के प्राण सदैव शरीर से बाहर ही रहते हैं।"

"फिर भी मुझे सोचना-समझना है। बहुत-सी बातें हैं। अच्छा, मान लो, मैं इस वक्त तुम्हारी इम्दाद न कर सका?"

"तो दूसरे उपाय से काम लिया जायग।"

"यानी उस सूरत के लिए भी तुम लोगों ने कोई रास्ता सोच रक्खा है। यह मुनासिब भी है। होशियार वही है जो अपने साथ एक से ज्यादा हथियार रखता है। एक धोखा दे जाय तो दूसरे से काम लिया जाय।"

"हम निश्चय कर चुके हैं।"

"तब कुछ कहना सुनना बेकार है।"

"आप शायद साफ बच जाना चाहते हैं?"

"कम से कम इस वक्त तो ऐसा ही है। आगे सोचने-समझने पर जो कुछ भी तय करूँ!"

"तो मैं फिर कब भेंट करूँ?"

"तकलीफ करने की क्या जरूरत है। मैं सरदार कुशलपाल के जरिये खबर भिजवा दूँगा।"

"गुस्ताखी माफ हो। मैं इस मामले में मुँह-दर-मुँह बात करना चाहता हूँ, किसी दूसरे आदमी को बीच में डालकर नहीं। अगर आप मुझे मुलाकात का फिर मौका दे सकें तो ठीक हो।"

"मुनासिब तो यही होगा। मगर बड़ी मुश्किलें हैं। मेरे पास हर तरह के आदमी आते-जाते रहते हैं। तखलिया कम होता है। यहाँ, जैसा कि तुम्हें मालूम होना चाहिए, खुफिया लोगों की बहुतायक है। लोग हवा सूँघते रहते हैं। यह मकान मेरा नहीं है। मैं तो चिश्ती साहब

की हवेली में रहता हूँ या खानकाह में। पर दोनों जगहें इस तरह की बातचीत के लिए मौजूँ नहीं हैं।"

"आप जहाँ सुविधापूर्वक मिल सकें, मैं हाजिर हो जाऊँगा।"

"यह ठीक है। सीकरी में तुम सब जगहों से वाकिफ तो होगे ही?"

"वाकफियत तो मेरी इतनी है कि यदि यहाँ पर मुझे अकेला छोड़ दिया जाय तो लौटकर अपने डेरे पर नहीं पहुँच सकता।"

"कोई हर्ज नहीं। नई जगह पर ऐसा ही होता है। अच्छा, तुम अपने डेरे पर ही रहना। मैं ही कोई इन्तजाम करूँगा। मौका मिलते ही तुम्हें गाड़ी भेजकर बुला लूँगा।"

"बड़ी कृपा होगी।" सिर झुकाते हुए विजयपाल ने कहा।

"शायद कल दोपहर तक ही तुम्हें बुला भेजूँ।"

"मैं तैयार रहूँगा।"

"बस, यह ठीक है।" कहकर शेख ने अपनी तस्बीह उठा ली। मनके खिसकने लगे। इसे समाप्ति की सूचना समझकर विजयपाल प्रणाम करके उठ खड़ा हुआ और बाहर निकल आया। बारहदरी के पास पूर्व-परिचित पथप्रदर्शक खड़ा मिला। वह विजयपाल को लेकर बाहर आया। द्वार के पास गाड़ी लगी थी। विजयपाल ने देखा, इस बार उसे पहलेवाला घास-भरा सहन नहीं मिला। फिर भी वह चुपचाप जाकर गाड़ी में बैठ गया।

गाड़ी पर बैठते-बैठते विजयपाल को नन्दा का ध्यान हो आया। कल से उसे नन्दा का कोई समाचार नहीं मिला था। न जाने वह कैसी होगी। रामपाल के आने में आज असाधारण विलम्ब हो गया था। फिर भी उसे आशा थी कि सराय में अपने डेरे तक पहुँचते-पहुँचते रामपाल नन्दा का पत्र लिये उसे अवश्य मिलेगा। इसी उत्सुक प्रतीक्षा में महलों से अपने डेरे तक का कुछ दूर का अन्तर भी उसे बहुत दिखाई दिया।

गाड़ी को सदर फाटक से ही लौटाकर वह सराय में गया। रामपाल कहीं नहीं था। उसका मन उदास हो गया। अपने कमरे के द्वार पर उसें इमाम खड़ा दिखाई दिया। आशा न रहने पर भी उसने उससे प्रश्न किया—'रामपाल आया था क्या?'

"जी नहीं।' अभिवादन करते हुए इमाम ने उत्तर दिया।

"मेरा कोई पत्र तो नहीं आया?" फिर आशा के कच्चे सूत्र का सहारा लेते हुए विजयपाल ने पूछा।

"नहीं, पत्र भी कोई नहीं आयाँ है।"

विजयपाल जानता था कि नन्दा के सिवाय उसे पत्र भेजनेवाला और कोई नहीं है। नन्दा का पत्र रामपाल के द्वारा ही आता-जाता है। जब रामपाल ही नहीं आया तब कोई पत्र भी कैसे आ सकता था। फिर भी उसने इमाम से उसके सम्बन्ध में प्रश्न कर दिया।

सचमुच उसने भूल की। इस अपने अनावश्यक उतावलेपन पर उसे बड़ी खिजलाहट हुई।

कमरे का द्वार बन्द कर वह अपने वस्त्र बदलने लगा। उसका ध्यान बराबर बाहर की ओर ही रहा। लगता था कि रामपाल अब आया, अब आया। सराय के सामने सड़क पर किसी घोड़े की टाप का शब्द होता तो वह खिड़की मे झाँककर उधर देखने लगता। बहुत देर प्रतीक्षा करने पर भी जब रामपाल न आया तब वह निराश होकर पलँग पर जा लेटा और अनेक प्रकार की चिन्ताओं में विलीन हो गया।

नन्दा ने पत्र क्यों नहीं भेजा। कहीं वह बीमार तो नहीं हो गई। उसकी भेंट का पता मकान की मालकिन को तो नहीं लग गया। यदि ऐसा हुआ तो उसने, निस्सन्देह, या तो उस खिड़की को बन्द करा दिया होगा, या नन्दा को ही किसी ऐसे कमरे में रख दिया होगा जहाँ से पत्र भेज सकना उसके लिए सम्भव न हो। पर रामपाल को तो लौट आना चाहिए था। उसके न लौटने से चिन्ता और भी होती है। वह स्वयं तो किसी दुर्घटना में नहीं फँस गया। आदमी वैसे तो सावधान और ठिकाने का है, फिर भी राजधानी में जरा से सन्देह पर किसी को गिरफ्तार करके जेलखाने पहुँचा देना मामूली बात है। परदेश में उसकी कहनेवाला या उसकी जमानत करनेवाला भी कोई नहीं है। जरूर ही वह किसी संकट में पड़ गया है। यदि यह सत्य हुआ हो तो वह उसकी सहायता किस प्रकार कर सकता है। उसका अपना परिचित भी आगरे में कोई नहीं है।

कुशलपाल से इतनी अभिन्नता नहीं है। उससे कोई ऐसी बात कहना, जिसका सम्बन्ध नन्दा से हो, उचित नहीं जँचता। न जाने कुशलपाल इसे सुनकर क्या कहे। अपने जैसा ही वह उसे भी समझने लगेगा। सम्भव है वह नन्दा पर भी कुछ छींटे कसे। उसे यह जरा भी अच्छा नहीं लगेगा। रोष में आकर यदि उसने भी कुछ कह-सुन दिया

तो मामला बिगड़ जायगा। नहीं, कुशलपाल से कुछ कहना ठीक न होगा।

सहसा उसका ध्यान शेख साहब की ओर गया। पहली मुलाकात में ही उनके प्रति उसके हृदय में श्रद्धा-भाव उत्पन्न हो गया था। उनके व्यक्तित्व में उसे अपूर्व महत्ता दिखाई दी थी। उनके मुँह से प्रत्येक शब्द नपा-तुला और सुघड़ बनकर निकलता है। उनकी आँखों की अपूर्व ज्योति में महत्ता, उदारता और दृढ़ता के एक साथ दर्शन होते हैं। उनके जैसे व्यक्ति सहसा किसी कार्य का आरम्भ नहीं करते। इसी लिए वे उसके विचारों को सुनकर, सरदार कुशलपाल की भाँति, एकदम उसका समर्थन न करके गम्भीर हो गये थे। आज रात को एकान्त में वे उस योजना पर विचार करेंगे। सम्भव है, जैसा कि उन्होंने कहा था, कल दोपहर से पहले ही वे उसे बुला भेजें। उस समय वे योजना के सम्बन्ध में अपना निश्चित मत अवश्य सूचित कर देंगे और जहाँ तक समझ में आता है, वे उसका समर्थन ही करेंगे। यदि किसी कारणवश, प्रत्यक्ष रूप में, इस समय कोई सहायता न कर सके तो कोई दूसरा सरल मार्ग ही बता देंगे।

उनकी सम्मति, उसके महान् उद्देश्य की सिद्धि के लिए, सहायक ही होगी। जिस लक्ष्य को सामने रखकर वह आगरे आया है, उसकी सिद्धि में अब देर नहीं है। उस ओर से अब उसे निश्चिन्त हो जाना चाहिए। नन्दा और रामपाल का मामला अवश्य अभी तक उलझा हुआ है। इस कार्य में क्या शेख साहब से सहायता नहीं मिल सकती। राजधानी में उनका जैसा प्रभाव है, उसके विचार से अपने इस व्यापार में भी उनसे पूरी सहायता मिल सकती है। जब वकीले मुतलक तक उनके इशारों पर नाचते हैं, तब वे क्या नहीं कर सकते। रामपाल यदि गिरफ़्तार भी हो गया होगा तो उनकी सहायता से छूट सकता है।

ऐसी स्थिति में कल दोपहर तक शान्ति के साथ प्रतीक्षा करनी

चाहिए। यदि इस समय तक नन्दा या रामपाल का कोई समाचार न मिले तो संकोच छोड़कर शेख साहब से अपनी कठिनाई कहनी चाहिए और उनसे सहायता लेनी चाहिए। वे महान् हैं। उनके जैसे आकृतिविशिष्ट जन स्वभावविरोधी नहीं होते। कमरे के अन्धकार में ही शेख की कल्पनामूर्त्ति के चरणों में विजयपाल का मस्तक श्रद्धा से झुक गया।

इन्हीं विचारों में डूबते-उतराते न जाने कब नींद ने विजयपाल को अपनी गोद में ले लिया। वह स्वप्न देखने लगा—नन्दा की चिट्ठी लिये एक देहाती साँड़िनी सवार, उसे तलाश करता-करता, सराय फिरोजी में आया है। इमाम उसे विजयपाल के कमरे में नहीं जाने देता। विजयपाल चाहता है कि कमरे का द्वार खोलकर बाहर निकले और चिट्ठी ले ले। पर नींद की जड़ता उसे वहीं लेटे रहने को विवश कर देती है।

इसके बाद स्वप्न की धारा दूसरा पथ ग्रहण करती है। वह काली नदी के तट पर खड़ा है। दूसरे तट पर कात्यायनी माई का थान है। नन्दा अपनी खिड़की में बैठी उसकी राह देख रही है। विजय नदी में उतरकर उसके निकट पहुँचना चाहता है, पर नदी का पानी बराबर बढ़ता जा रहा है—जैसे बरसाती बाढ़ आ गई हो।

नन्दा की भोली और व्याकुल प्रतीक्षा उसे अपनी ओर आकृष्ट करती है। वह नदी में उतरता है। उसके पैर सहसा दलदल में फँस जाते हैं। वह आगे नहीं बढ़ पाता, न पीछे ही लौट पाता है। वह जितना जोर लगाता है उतना ही दलदल में धँसता जाता है। सहारे के लिए वह रामपाल की ओर देखता है, पर रामपाल भी वहाँ नहीं दिखाई पड़ता!

इसी समय विजयपाल पर नन्दा की दृष्टि पड़ती है। उसको दुरवस्था में फँसा देखकर नन्दा के मुँह से चीख निकल जाती है। नन्दा की आतुरता और निराश दृष्टि विजय में दोगुने साहस का

संचार करती है। वह एक बार कीचड़ से बाहर निकलने की भरसक चेष्टा करता है। सहसा उसे एक भीषण हँसी सुनाई पड़ती है। पीछे खड़ा हुआ मुराद बेग मानो हँसकर कह रहा है—"यह कायरता है!"

नदी में पानी बढ़ रहा है। वह बढ़ते-बढ़ते नन्दा की खिड़की के किनारे तक पहुँच जाता है। खिड़की अब जलमग्न होना ही चाहती है। विवशता भरी दृष्टि से नन्दा विजय की ओर देख रही है—मानो आँखों की भाषा में कह रही है—"विजय, दुःख है कि मेरा प्रेम भी तुम्हारी सहायता नहीं कर सकता।"

सहसा विजय की दृष्टि एक डोंगी पर जा टिकती है। नदी का वक्ष चीरती हुई वह डोंगी नन्दा की खिड़की की ओर अग्रसर हो रही है। शेख कमाल बियावानी उस पर सवार हैं। उनकी स्निग्ध और शान्त दृष्टि नदी की उद्दाम लहरों को विनीत भाव धारण करने की मानो शिक्षा दे रही है। चप्पू कुशलपाल के हाथों में है। डोंगी नन्दा की खिड़की के सामने जाकर रुक जाती है। नन्दा निकलकर डोंगी पर सवार हो जाती है और कुशलपाल को विजयपाल की ओर डोंगी ले चलने का संकेत करती है। डोंगी उसकी ओर मुड़ती है। लहरों का वेग सहसा प्रबल हो उठता है। कुशलपाल के हाथों से चप्पू छूट जाते हैं। डोंगी लहरों के थपेड़े खाती हुई अज्ञात दिशा की ओर बह चलती है। नन्दा भय से चीख पड़ती है और बेहोश हो जाती है। विजय चुपचाप खड़ा नन्दा की ओर देखता रहता है। धीरे-धीरे डोंगी उसकी दृष्टि से ओझल हो जाती है।

सहसा कोई काली वस्तु धीरे-धीरे नदी की धारा से ऊपर को उभरती दिखाई देती है। क्रमशः वह एक भयानक नक्र के रूप में बदल जाती है। उन्मत्त हो जल के साथ हिलकोरें भरता वह नक्र विजयपाल की ओर बढ़ता है। विजयपाल भागकर भी उससे अपनी रक्षा नहीं कर सकता। उसके पैर दलदल में पूर्ववत् फँसे रहते हैं।

सहसा विजय को अपने साथियों का ध्यान आता है। वह अपने कार्य को पूरा नहीं कर सका। उसके मित्र उसे कायर कहेंगे। उसकी हँसी उड़ायेंगे। पर वह विवश है। वह करना कुछ और चाहता है, होता कुछ और है।

पास पहुँच कर नक्र अपना मुँह खोल देता है। उसकी कराल सफेद डाढ़ें चमक उठती हैं। विजय साहस करके एक बार इस प्रत्यक्ष काल की ओर देखता है। उसके सारे साथी भी जैसे इस नक्र के मुँह में पहुँच गये हैं। वे विजय को वहाँ से भाग जाने का संकेत करते हैं। पर विजय भागे भी तो कैसे!

विजय चौंक पड़ा। स्वप्न की विभीषिका ने नींद की जड़ता को भङ्ग कर दिया। वह उठ खड़ा हुआ। देखा कि प्रकाश की किरणें खिड़की की सन्धियों से कमरे के भीतर प्रवेश कर रही हैं। द्वार खोलकर वह बाहर आया। बरामदे के बीच में बिछे आबनूस के तख्त पर बैठा इमाम दूधवाले का हिसाब कर रहा था। विजयपाल को देखकर वह उठ खड़ा हुआ। बड़े अदब से एक लिफाफा सामने रखता हुआ बोला—"यह रात आया था।"

"कौन लाया था?"

"एक साँड़िनी का सवार। कहता था, सलीम शाह के महल में रहनेवाली लड़की ने भेजा है। आपको देने के लिए।"

"उसी समय मुझे क्यों नहीं दिया?" क्रोध-भरी झुँझलाहट के साथ विजय ने कहा।

"आप सो रहे थे। सोते मेहमान को जगाना अनुचित है।" इमाम ने सहज भाव से उत्तर दे दिया।

विजय चुप हो रहा। लिफाफा उठाकर वह अपने कमरे में चला गया। नन्दा ने लिखा था—

"प्यारे विजय,

"किसी प्रकार यह पत्र भेज रही हूँ। नहीं जानती, तुम्हारे पास तक

पहुँचेगा भी या नहीं। जब से तुम गये हो, कोई समाचार नहीं मिला। आज शाम को या कल सबेरे मैं सीकरी चली जाऊँगी। मालूम हुआ है कि चाचा जी ने हमें वहीं रहने को बुलाया है। गाड़ी आ गई है। उसमें दो सफेद घोड़े जुते हैं। अगर किसी प्रकार सम्भव हो सका तो सीकरी पहुँचकर अपना पता तुम्हें लिख भेजूँगी। मैं बहुत डर रही हूँ। भगवान् जाने, क्या होने जा रहा है।"

यह पत्र पढ़कर विजय का हृदय धड़क उठा। अब तक शायद वह सीकरी पहुँच चुकी होगी। रामपाल भी जाने कहाँ मर गया। विजय को उस पर बड़ा क्रोध आया। यदि सामने होता तो उसको अच्छी तरह खबर लेता। उल्लू को यह भी ख्याल नहीं कि परदेश में उसकी किसी समय जरूरत पड़ सकती है।

मन के उद्वेग में विजय कमरे से बाहर निकला और सराय के फाटक पर जाकर खड़ा हो गया। सम्भव है, सफेद घोड़ोंवाली गाड़ी उसे देखने को मिल जाय। एक पहर से अधिक समय तक वह वहीं खड़ा खड़ा आगरे की ओर देखता रहा। सफेद घोड़ोंवाली गाड़ी नहीं आई।

इसी समय रामपाल अस्तव्यस्त रूप में सामने से आता दिखाई दिया। उसके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रही थीं मानो कई दिन का भूखा और जागा हुआ है। उसकी इस विकृत मुद्रा पर विजयपाल को तरस आ गया। प्रश्नसूचक भाव से उसने रामपाल की ओर देखा। उत्तर में रामपाल ने एक लिफाफा उसके हाथ में रख दिया।

रामपाल को कमरे में जाकर स्वस्थ होने का आदेश देते हुए उसने वहीं खड़े-खड़े पत्र को खोला। नन्दा ने लिखा था—

"प्यारे विजय,

बड़ी परेशानी में पत्र भेज रही हूँ। न जाने ये लोग कल रात मुझे क्यों यहाँ लाये हैं। चौड़ी सड़क से दाहिनी ओर को मुड़नेवाली तीसरी

गली का बारहवाँ मकान है। पड़ोस में एक ऊँचा मकान है जिसके गुम्बद मुझे आँगन से दिखाई दे रहे हैं। दरवाजे पर ऊँचा चबूतरा है। फाटक ऊँचे और लोहे के हैं। मेरे कमरे में एक खिड़की है जो बगल की गली की ओर खुलती है। शीघ्र दर्शन दीजिए।

—तुम्हारी नन्दा।"

पत्र बड़ी जल्दी में लिखा गया था। स्पष्ट ज्ञात हो रहा था कि नन्दा इस आकस्मिक स्थान-परिवर्तन से बहुत अधिक घबरा गई है और प्रत्येक क्षण विजयपाल की सहायता की प्रतीक्षा कर रही है।

विजयपाल के लिए एक क्षण का विलम्ब भी अब असह्य था। वह सीधा अपने कमरे में पहुँचा। वस्त्र बदले। तलवार कमर से लटकाई और रामपाल या इमाम से बिना कुछ कहे सुने सराय से चल दिया।

सराय के फाटक पर ही उसे कुशलपाल मिला। इस समय उससे बात करने का विजयपाल को अवकाश न था। उसने चुपचाप निकल जाना चाहा। पर कुशलपाल सामने आ गया। कन्धे पर हाथ रख मुस्कराकर बोला—"सबेरे-सबेरे कहाँ जाने की तैयारी हो गई?"

"एक जरूरी काम से जा रहा हूँ।"

"दोपहर को शेख साहब से आपको भेंट भी तो करनी है न?"

"उससे पहले ही लौट आऊँगा।"

"मेरी जरूरत तो न होगी?"

"शायद नहीं।"

"अच्छा तो मैं जा रहा हूँ। ठीक समय पर आपको शेख साहब की गाड़ी तैयार मिलेगी। कलवाला कोचवान रहेगा।"

"मैं ठीक समय पर ही उनकी सेवा में पहुँच जाऊँगा।"

तेजी से कदम बढ़ाता हुआ विजयपाल नन्दा के पत्र में निर्देशित दिशा की ओर चला। पर उसे लगा, जैसे उसके हाथ-पैर ढीले पड़ गए हैं। वह जितना तेज चलता है, उतना तेज नहीं चल पाता। चौराहे पर पहुँच कर एक बार उसने इधर-उधर देखा। एक घोड़ा-गाड़ी खड़ी थी। कोचवान के पास पहुँच कर उसने उसे पत्र में लिखा पता समझाया, फिर शीघ्र चलने का आदेश देकर भीतर जा बैठा।

कुछ क्षण सड़क पर चलकर गाड़ी एक गली में मुड़ी और फिर एक मकान के समाने जाकर खड़ी हो गई। विजयपाल उतर पड़ा। उसने देखा, लोहे के फाटकवाला एक मकान सामने था। बगल में एक मसजिद थी जिसके गुम्बद सफेद संगमर्मर के बने थे। फाटक बन्द था। कोई दरबान भी नहीं था। गाड़ीवान को वहीं खड़े रहने का आदेश देकर वह मकान की बगलवाली गली में घूम गया और एक खिड़की के सामने जा खड़ा हुआ। खिड़की बन्द थी। कुछ देर तक इधर-उधर देखने के बाद उसने खिड़की पर हलके हाथ से थाप दी और धीमे स्वर में पुकारा—"नन्दा!"

नन्दा चौंक पड़ी। विजय का कण्ठ-स्वर पहचानने में उसे देर न लगी। खिड़की खोलकर उसने बाहर की ओर झाँका। विजय सामने खड़ा था। दोनों की निगाहें मिलीं। संकटावस्था में रहने पर भी दोनों के ओठों पर मुस्कान खेल गई।

दूसरे ही क्षण नन्दा फिर अपने कमरे में भाग गई। उसने पास रक्खी घण्टी को उठाकर इतनी जोर से बजाया कि दो बाँदियाँ और राजरानी स्वयं उसके कमरे में दौड़ आईं।

"सदर फाटक खोल दो। मेरे मेहमान आये हैं।" उसने अधिकार-पूर्ण स्वर में कहा।

सुनते ही एक बाँदी सदर फाटक की ओर लपकी।

"ठहर!" जाती हुई बाँदी को सम्बोधित कर राजरानी ने कहा। बाँदी रुक गई।

"मैं स्वयं जा रही हूँ।" राजरानी ने आदेश को स्पष्ट किया।

"आपके जाने की जरूरत नहीं। बीच में बाधा देते हुए नन्दा ने कहा—"आनेवाले व्यक्ति को मैं अच्छी तरह जानती हूँ।"

"फिर भी बिना जाने-पहचाने उसे अन्दर आने की आज्ञा मैं नहीं दे सकती।" राजरानी ने आपत्ति की।

"कह तो रही हूँ कि वे मेरे जाने-पहचाने हैं। आगरे में उन्हीं के सम्बन्ध में मैंने आप से जिक्र किया था।" आवेश और उत्सुकता के कारण कुछ हाँफती हुई-सी नन्दा बोली।

"तुम्हारे जानने-पहचानने से काम नहीं चलेगा। मुझे भी तो कुछ देखना-सुनना होगा।" राजरानी के स्वर में अधिकार का गर्व था।

"नहीं, उन्हें तुरन्त भीतर बुला लेना होगा।" उसी स्वर में नन्दा ने कहा।

रोष-रुद्ध नागिन की तरह राजरानी ने नन्दा की ओर देखा। उसने कुछ उत्तर नहीं दिया। बाँदियाँ एक-दूसरी से सटकर खड़ी हो गईं।

"वे कब तक बाहर खड़े रहेंगे?" क्रोधयुक्त मुद्रा में नन्दा ने कहा।

"मुझे जब तक उनका पूरा परिचय न मिले, मैं उन्हें भीतर न आने दूँगी।" राजरानी ने अपनी आपत्ति को दोहरा दिया।

"उनका नाम विजयपाल है। कन्नौज के रहनेवाले हैं। क्षत्रिय राजकुमार हैं। कन्नौज से आगरा आ रहे थे। मार्ग में परिचय हो गया। अब वापस कन्नौज जा रहे हैं। यही उनका परिचय है।" नन्दा ने भी पुराने परिचय को दोहरा दिया।

"नहीं; जापनाह ने किसी बाहरी व्यक्ति से तुम्हारी भेंट को मना किया है।" कहते हुए राजरानी ने एक पत्र नन्दा की ओर बढ़ा दिया। पत्र को जमीन पर पटककर जूतियों से कुचलती हुई नन्दा बोली—"मैं आज्ञा देती हूँ कि उन्हें भेंट के लिए तुरन्त भीतर बुलाया जाय।"

नन्दा की आँखें लाल हो रही थीं। नथनें फड़क रहे थे। राजरानी उसका यह रूप देखकर कुछ सहमी। फिर जरा नर्म पड़ती हुई बोली—"तुम न केवल मेरा, वरन् जापनाह का भी अपमान कर रही हो।"

"मैं किसी की लौंडी-बाँदी नहीं हूँ। न मैं किसी की कैद में हूँ। मैं जिससे चाहूँगी, उससे भेंट करूँगी। मुझे रोकनेवाला कोई नहीं है।" जोर से पत्थर के फर्श पर पैर पटकते हुए नन्दा ने कहा।

"वे तुम्हारे चाचा हैं, नन्दा!" राजरानी ने कुछ समझाने के स्वर में कहा, "वे तुम्हारे संरक्षक हैं। तुम्हारी रक्षा की जिम्मेदारी उन पर है।"

"अपनी संरक्षक मैं स्वयं हूँ। मेरी जिम्मेदारी स्वयं मुझ पर है।" कुछ तेज स्वर में नन्दा ने कहा।

"मैं कसम खाकर कहती हूँ कि तुम्हारे चाचा सुनेंगे तो......!" भय प्रदर्शित करते हुए राजरानी ने कहा।

"वे कुछ न कहेंगे, अगर वे सचमुच मेरे चाचा हैं तो!" 'मेरे' पर अधिक जोर देते हुए नन्दा ने कहा।

नन्दा के इस उग्र रूप में राजरानी को रतनसेन की तेजस्वी प्रतिमूर्त्ति दिखाई दी—क्षात्रतेज से उद्दीप्त, असहिष्णु और अधिकारपूर्ण! वह कुछ न कह सकी।

"मैं आज्ञा दे रही हूँ कि फाटक खोल दो। जा रही हो या नहीं?"

बाँदियों की ओर घूमकर नन्दा ने आदेश दिया। बाँदियाँ पत्थर की तरह अचल, राजरानी के मुँह की ओर देखतीं, पूर्ववत् खड़ी रहीं।

नन्दा के ओंठों पर व्यंग्यपूर्ण मुस्कान छितरा गई। दूसरे ही क्षण उसके चेहरे पर ऐसा भाव उदित हुआ कि राजरानी उसका मार्ग रोकने का साहस न कर सकी। नन्दा का मार्ग छोड़ वह एक ओर हट गई। गम्भीर चाल से नन्दा फाटक की ओर बढ़ी। पीछे-पीछे राजरानी भी चली। बाँदियों ने भी राजरानी का अनुसरण किया। कुछ दूर जाकर एक बाँदी ने दूसरी के कान में फुसफुसाकर कहा—"बहुत तेज पानी है।"

"किसी राजपूत की कन्या दिखाई देती है।" दूसरी ने धीमे स्वर में उत्तर दिया।

राजरानी ने भी बाँदियों की यह बात सुनी। उसने अपना कलेजा थाम लिया। उसकी आँखों में आँसू भर आये।

फाटक पर पहुँचकर क्षण भर के लिए नन्दा रुकी। फिर उसने हाथ बढ़ाकर कुंडी खोल दी। विजयपाल सामने खड़ा था। दोनों हाथ उसके स्वागत में बढ़ाते हुए नन्दा ने कहा—"आइए।"

स्थिर चरणों से विजयपाल भीतर आया। नन्दा ने उसका हाथ अपने हाथों में ले लिया। राजरानी ने सिर झुका लिया। बाँदियाँ एक ओर को हट गईं।

विजयपाल का हाथ पकड़े नन्दा अपने कमरे की ओर बढ़ी।

मार्ग में विजयपाल ने कहा—"तुम्हारे पत्र ने बड़ी परेशानी में डाल दिया था, नन्दा।"

"तुम्हारे सिवाय और कहती भी किससे?" यह कह नन्दा ने विजय के कन्धे पर अपने दोनों हाथ रख दिये।

"क्या बात थी?"

"तुम अपनी आँखों से देख लो न!"

दोनों एक कमरे में पहुँचे। विजयपाल ने ऊपर से नीचे तक कमरे पर निगाह डाली। बिल्लौरी पत्थर का फर्श शीशे की तरह चमक रहा था। ठीक बीच में एक चौपड़ की बिसात बनी थी, दूसरी शतरञ्ज की। बीच में हरे और लाल पत्थर की पच्चीकारी से गुलाब के चार गुलदस्ते सजाये गये थे। दीवालों पर भी पच्चीकारी का सुन्दर प्रदर्शन था। सामने की दीवाल पर एक विशाल तैल चित्र-लगा था जिसका चौखटा बहुमूल्य हाथीदाँत का बना था। चित्र में सम्राट् हुमायूँ सम्मनबुर्ज पर खड़े अंकित किये गये थे। उनकी बाईं मुट्ठी पर बाज बैठा था। दाहिने हाथ की तर्जनी सामने की ओर संकेत कर रही थी। चौखटे पर नीचे कीमती और रंग-बिरंगे पत्थरों से यह शेर लिखा हुआ था—

गाफिल मनशी न वक्त बाजीस्त
वक्त हुनरस्तो कारसाज़ीस्त*।

दीवालों पर भी अनेक सुन्दर चित्र बने हुए थे। इन चित्रों में अनेक प्रकार के पशु-पक्षी जोड़ों में प्रेम-मुद्रा में अंकित थे। उनके रंगों की जगमगाहट सहज ही अपनी ओर ध्यान आकृष्ट कर लेती थी। नन्दा की शय्या के सुनहरी पाये मीना जड़े थे। बिछावन ऐसा नर्म, बहुमूल्य और कामदार था कि विजय बहुत देर तक एक-

---

*गाफिल न बैठ! समय बेकार खोने के लिए नहीं है बल्कि कुछ हुनर सीखने या कार्य करने के लिए है।

टक उसी की ओर देखता रह गया। इसी बीच उसकी निगाह सिरहाने की ओर कोनों में तरतीब से सजी दो रुपहली तिपाइयों से टकराई जिन पर सुनहली सुराहियाँ व बिल्लौरी प्याले सजे थे। पास ही, एक ऊँची चौकी पर, सोने का पानदान रक्खा हुआ था। उस पर कीमखाब का झीना जड़ाऊ आवरण पड़ा हुआ था।

"यहाँ के रंग-ढंग ने मुझे विचित्र स्थिति में डाल दिया है!" एक बहुमूल्य पिटारे को खोलकर दिखाते हुए नन्दा ने कहा। पिटारे में रक्खे सुसज्जित रत्न-जटित आभूषणों से विजय की आँखें चौंधिया गईं।

"और भी देखिए!" कहकर नन्दा विजयपाल को इस कमरे से सटे एक दूसरे कमरे में ले गई। वह स्नानागार था। संगमर्मर के हौज़ों में भरे ठंडे और गर्म गुलाबजल से सारा स्थान सुवासित था। चारों दीवालों पर एक एक आदमक़द चीनी आईना लगा था। विजय के साथ अपना प्रतिबिम्ब उन दर्पणों में देखकर नन्दा कुछ शरमा-सी गई। उसने अपनी आँखें नीची कर लीं।

यहाँ से निकलकर दोनों खानबाग में पहुँचे और हाथ में हाथ दिये हुए रौंसों पर टहल-टहलकर बातें करने लगे। किनारे किनारे संगमर्मर की चौकियों पर नाचते मोरों की ऐसी सुन्दर प्रस्तर मूर्त्तियाँ बिठाई गई थीं कि विजय को उसके सजीव होने का भ्रम होने लगा। एक मोर को हाथ से छूते हुए विजयपाल ने कहा—"कमाल है!"

नन्दा उत्तर में मुस्कराकर रह गई। इसी समय दोनों की आँखें उठीं तो देखा—उद्यान के दूसरे छोर पर खड़ी राजरानी अग्निमय नेत्रों से उन्हीं को घूर रही है।

"जापनाह सुनेंगे तो दोनों का सिर उड़वा देंगे!" राजरानी ने कहा।

"जापनाह...सुनती हो नन्दा!" विजय ने सहसा आवेश में आकर कहा—"यह महल, यह साजो-सामान, किसी जापनाह का है!

सचमुच, यह किसी ऐसे व्यक्ति का है जिसका सारे भोग-विलासों पर पूरा अधिकार है। मुझे पहले भी सन्देह हो रहा था। अब तो सभी कुछ प्रत्यक्ष हो गया है। मैं तुम्हें एक क्षण भी ऐसे स्थान पर देखना नहीं चाहता।"

"पर यदि मुझे बलपूर्वक यहाँ रक्खा जाय तो...!" राजरानी की ओर उपेक्षा की दृष्टि से देखते हुए नन्दा ने कहा।

"मेरे जीते जी तुम्हें बलपूर्वक रोककर कौन रख सकता है?" कहते हुए विजयपाल ने कमर में झूलती अपनी तलवार की ओर देखा। उसकी भुजायें फड़क उठीं।

राजरानी वहाँ से चली गई।

"अपने प्रियजनों से मिलने की मधुर कल्पना अब मुझे छोड़ देनी चाहिए!" कुछ आगे बढ़कर निराशा के स्वर में नन्दा ने कहा।

"मैं सब समझता हूँ नन्दा! तुम्हारा मतलब यही है न कि हमें यह स्थान छोड़कर तुरन्त चल देना चाहिए?"

यह कहते-कहते विजय का मुँह कुछ उतर गया। वह जैसे कुछ सोच-विचार में पड़ गया। यह नन्दा को अच्छा न लगा। आवेश में आकर उसने कहा—"अब भी कुछ सोचना-विचारना शेष है क्या?"

"नहीं नहीं, सोचना-विचारना तो कुछ नहीं है। मैं वास्तव में यहाँ की स्थिति देखकर चिन्ता में पड़ गया हूँ।" खानबाग के दूसरे सिरे से महलों की ओर जाती हुई राजरानी को देखते हुए विजय ने कहा।

"किस चिन्ता में?" उत्सुकता से नन्दा ने पूछा।

"तुम जिस व्यक्ति के संरक्षण में यहाँ हो, वह शक्तिशाली दिखाई दे रहा है। इधर मैं अकेला हूँ। ठीक से तुम्हारी रक्षा कर सकूँगा या नहीं, यही सोचने लगा था।"

"ठीक कहते हो। लेकिन यह भी उतना ही ठीक है कि इस शक्तिशाली संरक्षण को आँखों की ओट कर हमें यहाँ से चल देना है—फिर चाहे जो भी हो।" नन्दा ने दृढ़ स्वर में कहा।

विजय के नेत्रों में सहसा आनन्द की चमक आ गई। पर दूसरे ही क्षण वह फिर चिन्ता में पड़ गया। नन्दा यह भाव-परिवर्तन सावधानी से देख रही थी। विजय को पुनः उत्तेजित करने के उद्देश्य से जैसे उसने कहा—"क्या मैं तुम्हारी पत्नी नहीं हूँ—क्या मेरी इज्जत तुम्हारी इज्जत नहीं है ?"

"बेशक; पर तुम्हें रक्खूँगा कहाँ, यह सोच रहा हूँ।"

"मैं कुछ नहीं जानती। मैं कुछ नहीं कह सकती। मैं यहाँ किसी को नहीं जानती। मैं सारे संसार में किसी को नहीं जानती। मैं जानती हूँ केवल तुम्हें और अपने को। तुमने मेरी आँखें खोल दी हैं। तुम्हें छोड़कर अब मैं किसी का विश्वास नहीं कर सकती।"

विजय और अधिक विचार में पड़ गया। छः महीने पहले यदि नन्दा के मुँह से ये शब्द निकले होते तो वह इनका मूल्य ठीक से चुका सकता। उसके विश्वास और प्रेम का प्रतिदान कर सकता। पर आज...?

"एक बार अच्छी तरह सोच-समझ लेने दो नन्दा। मान लो, अगर हम लोग गलती पर हुए और ये लोग वास्तव में तुम्हारे कुटुम्ब ही हुए तो...!"

"यह क्या कह रहे हो, प्यारे विजय ! क्या तुम भूल रहे हो कि अविश्वास का बीज मेरे मन में तुम्हीं ने डाला है ?"

"ठीक है। अच्छा तो चलो, अब चलें।" साहस संचय करते हुए विजय ने कहा।

"कहाँ चलेंगे ?...पर नहीं, मुझे यह सब जानने की जरूरत नहीं। तुम जानते हो, यही काफी है।" नन्दा ने दृढ़ता से कहा।

"सुनो नन्दा," अपने को रोकते हुए विजय ने कहा—"एक बार फिर सोच-समझ लो। जो विश्वास तुम आज दिखा रही हो, उसका अनुभव मैं पहले से कर रहा हूँ। तुम्हारा यह विश्वास मेरे लिए

अमूल्य निधि है। तुम जानती ही हो कि मैं एक ऐसा कार्य करने जा रहा हूँ जिसमें सफलता मिली तो राजलक्ष्मी, सुख, वैभव, सभी मेरे चरण चूमेंगे। पर यदि मैं असफल हो गया, जिसकी सम्भावना भी कम नहीं है, तो जेलखाना, कालकोठरी, सूली, सभी जैसे मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। अगले कुछ दिनों में ही सब कुछ स्पष्ट हो जायगा। अब तुम्हीं बताओ, यह सब जानते-समझते हुए भी क्या तुम मेरे साथ चलने को तैयार हो?"

"मैं तैयार हूँ। आप मुझे अपने साथ ले चलिए।"

"अच्छी बात है। मैं तुम्हें एक ऐसे व्यक्ति के संरक्षण में रख दूँगा जो तुम्हारे सम्मान की पूर्ण रूप से रक्षा करेगा और जो सचमुच तुम्हें अपनी पुत्री बनाकर रक्खेगा।"

"कौन है वह?" नन्दा ने मुस्कराते हुए कहा— "यह न समझना कि तुम्हारे इस कथन में मुझको सन्देह है। मैं केवल उत्सुकता के कारण पूछ रही हूँ।"

"एक राजर्षि हैं। उनकी मुझ पर बड़ी कृपा है। मैं उन्हीं का कार्य करने जा रहा हूँ।"

"तुम फिर वैसी ही रहस्य-भरी बातें करने लगे। न जाने क्यों, मुझे ऐसी बातें सुन कर डर लगता है।" नन्दा ने कहा।

"इस बार और माफ करो। वह दिन अब दूर नहीं है जब मेरा कोई भी रहस्य तुमसे छिपा न रहेगा।"

"तो क्या निश्चय रहा?"

"यही कि चलो!"

"अच्छा तो चलो।" कहकर नन्दा ने विजयपाल का हाथ पकड़ लिया और दोनों फाटक की ओर चले। सामने बरामदे में बैठी राजरानी द्रुतगति से एक पत्र लिख रही थी। नन्दा को इस तरह फाटक की ओर जाते देख वह पत्र को बीच में ही छोड़ उठ खड़ी हुई और क्रोध से काँपते स्वर में बोली—

"कहाँ जा रही है—बदतमीज लड़की !"

"जहाँ मैं निश्चिन्त होकर सुख से रह सकूँ !" विजयपाल के साथ आगे बढ़ते हुए नन्दा ने कहा।

"न जाने किस आवारे के साथ भागी जा रही है ?" क्रोध से उबलते हुए राजरानी ने कहा।

"आप भूल रही हैं," नन्दा ने दृढ़ स्वर में कहा—"मैं अपने पति के साथ जा रही हूँ।"

"नही तू नहीं जा सकती। चाहे इसके लिए मुझे बल-प्रयोग क्यों न करना पड़े।" राजरानी ने धमकाते हुए कहा।

"जो आपके जी में आये !" नन्दा ने लापरवाही से उत्तर दिया और विजय से और भी सटकर खड़ी हो गई।

पास पड़ी घंटी को राजरानी ने उठाकर जोर से बजाया। दो तातारी कलमाकनियाँ नङ्गी तलवारें लिये आ उपस्थित हुईं।

"इन्हें पकड़ लो !" राजरानी ने आज्ञा दी।

"खबरदार जो इधर कदम बढ़ाया तो !" तलवार म्यान से बाहर करते हुए विजय ने कहा। कलमाकनियाँ वहीं रुक गईं। विजय की बाँह में बाँह डाले नन्दा फाटक की ओर बढ़ी ! फाटक पर पहुँच कर नन्दा ने वहाँ खड़ी तातारी उदाबेगनी को डाटकर कहा—"रास्ता छोड़......!"

उदाबेगनी को नन्दा की आज्ञा टालने का साहस न हुआ।

नन्दा को लेकर विजय गाड़ी पर बैठ गया। गाड़ी दोनों को लेकर चल दी।

इशराक की नमाज के बाद बैरम खाँ ने दरबारी वस्त्र उतार दिये और वही कफनी पहन ली जो कल विजयपाल से भेंट करते समय पहने थे। इसके बाद वे चुपचाप मजलिस की ओर चले। ड्योढ़ी पर ही मुल्ला से भेंट हो गई। खानखानाँ के लिबास की ओर संकेत करते हुए उसने व्यंग्य किया—"उस्ताद आखिर उस्ताद ही होता है।"

"यह तुम्हारी लियाकत का नमूना है!" ड्योढ़ी के भीतर पैर बढ़ाते हुए खानखानाँ ने उत्तर दिया।

"रिश्ता तो तय हो गया न?"

"कुछ कसर रह गई है। वह भी आज पूरी हो जायगी।"

"गाड़ी शायद करार दाद पर आकर अटकी है।"

"हाँ, लेने-देने को उसके पास ज्यादा नहीं है।"

"मगर रिश्ता बराबरी का है। तय हो जाय तो अच्छा है।"

"आदमी निहायत शरीफ है, साथ ही दिलेर और इमानदार भी।"

"मालूम होता है, तुर्कमानों की पुरानी बीमारी आपको भी लग रही है।"

"वह क्या?"

"दोस्तों से मुँह छिपाना और दुश्मनों की तारीफ करना।"

"हीरा जहाँ रहता है, चमकता है। इसमें दोस्त-दुश्मन का सवाल नहीं।" अपनी जगह पर बैठते हुए खानखानाँ ने कहा।

"मामला तय हो गया है शायद, इसी लिए यह तारीफें हो रही हैं।"

"मामला तय हो जाता तो फिर झगड़ा ही क्या था?"

"अगर तय हो गया तो…?"

"तो न साजिश रहेगी न साजिश करनेवाले। फिर हम सब भी चैन से सो सकेंगे।"

"अपने साथियों के लिए वह कैसे जिम्मेदार हो सकता है?"

"यह सही है। पर समझौता जैसा एक के साथ हुआ, वैसा दस के साथ हुआ।"

"और अगर तय न हुआ?"

"इसका पूरा-पूरा अन्देशा है, क्योंकि वह इरादे का पक्का मालूम होता है। उस हालत में तुम्हें माझी बनना पड़ेगा।"

"तब मुझे अपने तरीके से काम करने की पूरी आजादी रहेगी न?"

"बेशक, पर शेख की इस सफेद दाढ़ी का ख्याल करते हुए!" बैरम खाँ ने मुस्कराते हुए कहा।

आपका इरादा क्या है! क्या उसे गिरफ़ार न किया जाय?"

"अगर इसकी जरूरत आ पड़े तो करना ही पड़ेगा, पर जरा बचाकर।"

"क्या मतलब है?"

"यही, कि मेरी मौजूदगी में उससे इस तरह की छेड़-छाड़ न की जाय। बेहतर तो यह होगा कि तुम्हें जो कुछ करना हो, उसके डेरे पर करो।"

"वहाँ ठीक न रहेगा। इमाम और सरदार कुशलपाल की चर्चा अभी लोगों में ताजी है। एक नई वारदात और हो जायगी तो सब चौकन्ने हो जायँगे।"

"तब तुम जैसा मुनासिब समझो।"

"परेशान होने की बात नहीं। मैं जो कुछ करूँगा, ढंग से करूँगा।"

"पूरे घाघ हो तुम! जरा सुनूँ तो कि दिमाग में क्या शैतानी है?"

"तीसरे दरवाजे के सामने गाड़ी लगी रहेगी। अगर मामला तय न हो तो उधर से जाने का इशारा कर दीजिए और वह हजरत बजाय सराय फिरोजी के बादलगढ़ पहुँच जायँगे। किसी को कानों-कान खबर न होगी।"

"फरेब और मक्कारी तो तुम्हारे हिस्से में पड़ी है।"

"और उसके मीठे फल आपके हिस्से में।"

"अब दूसरी सूरत पर भी गौर कर लीजिये। मान लीजिये कि वह आपके बहकाने में आ गया और अपना इरादा छोड़ बैठा!"

"तब सिर्फ उसके दोस्तों से निपटने का काम रह जायगा।"

"ज्यादा मुश्किल न होगा, क्योंकि एक मुखबिर मिल जायगा। सिर्फ थोड़ी-सी जाब्ते की जरूरत होगी।" यह कह मुल्ला ने एक लिखित आज्ञापत्र हस्ताक्षरों के लिए सामने रख दिया।

"तुम उन सबको एक साथ हिरासत में ले लेना चाहते हो?"

"दूसरा उपाय नहीं है।"

"पूरब का पूरा इलाका भड़क उठेगा। गदर हो जायगा। बड़ी खूनखराबी होगी!"

"कोशिश यही की जायगी कि वह सब न हो, पर अगर हुआ ही तो उसके लिए भी तैयारी कर ली है। ऊमस से आँधी अच्छी होती है।"

"उससे क्या होगा?"

"एक बार ही सब साफ हो जायगा। जो बचेंगे उन्हें साँस लेने को साफ हवा मिलेगी, रहने को साफ जमीन मिलेगी, साफ आसमान मिलेगा।"

"मामला ज्यादा संगीन और गौरतलब है। बंगाला, कड़ा, चुनार, जौनपुर, संभल सभी जगह तो दुश्मन मौजूद हैं। मौका पाते ही लड़ाई छिड़ जायेगी।"

"इसके लिए दूसरी तरकीब सोच ली जायेगी। मेरा खयाल है कि अगर कन्नौज का इलाका सर हो गया तो साजिश की कमर टूट जायगी। फिर बंगाले और संभल के बीच ऐसी जबर्दस्त खाई पड़ जायगी कि उसे पार कर आपस में मिल जाना अफगानों के लिए संभव न होगा।"

"हिरासत में लेने के लिए उन्हें किसी जुर्म का मुजरिम करार देना होगा।"

"जुर्म साफ है। वे सल्तनत के दुश्मन हैं और अल्लाह के जानशीन को गद्दी से महरूम करना चाहते हैं।"

"मामला अगर खाली पठानों का होता तो तुम्हारा कहना सही था। लेकिन उनके दल में मुराद बेग जो शामिल है—जानते हो, मुसाहब बेग का लड़का मुराद बेग?"

"लेकिन अपने लड़के की पैरवी करने के लिए मुसाहब बेग कयामत से पहले इस दुनिया में नहीं आ सकता।"

"पर दरबार में कुछ ऐसे मुर्दे भी हैं जो कयामत से पहले जाग उठते हैं। याद है मुसाहब बेग के कत्ल की दास्तान। तैमूरी सरदारों और अमीरों से लेकर जापनाह तक कुड़कुड़ा उठे थे कि बैरम खाँ शिया है, इसलिए अमीर तैमूर के खानदानवालों को चुन-चुनकर मार रहा है।"

"तरदी बेग भी तो अमीर तैमूर का नाती-पोता कुछ न कुछ लगता होगा ?"

"उस वक्त मौका दूसरा था। पानीपत सामने था और हेमूँ बक्काल सिर पर।"

"इसके माने यही हैं न कि दुश्मन हमारे दरवाजे पर पहुँचकर जो चाहे—कर गुजरे और हम टुकुर-टुकुर देखते रहें ?"

"नहीं, पर हाथ-पैर बचाकर काम करना होगा। साँप मर जाय और लाठी भी न टूटे।"

मुल्ला सिर झुकाकर कुछ सोचने लगा। खानखानाँ का अभिप्राय उसकी समझ में ठीक से न आया था।

कुछ देर तक दोनों चुपचाप एक-दूसरे की ओर देखते रहे। फिर खानखानाँ ने कहा—"मान लो, उन्हें अगर गिरफ़ार भी कर लिया तो रक्खेंगे कहाँ ?"

"कन्नौज में।"

"पठान धावा बोलकर उन्हें छुड़ा ले जायेंगे ?"

"तो फिर आगरे में ?"

"तैमूरी अमीर कान भरेंगे और जापनाह को खुद जेलखाने तक जाने और उसका दरवाजा खुद अपने ही हाथों से खोलने की जहमत उठानी पड़ेगी।"

"तो फिर जहन्नुम में ?"

"वहाँ अलबत्ता कोई नहीं पहुँचेगा। पर गिरफ़ार करने के बाद और जहन्नुम के दरवाजे तक पहुँचाने से पहले उन्हें कहाँ रक्खा जायगा ?"

"ग्वालियर में।"

"हाँ, यह ठीक हो सकता है। अब यह फैसला करना बाकी है कि उनका मुकदमा कौन करेगा ?"

"मुकदमा कोई कर सकता है।"

शेख लोग मुराद बेग को बचाने की कोशिश करेंगे, अफगान लोग इम्दाद को और राजा लोग चम्पालाल को ?"

"और आप शायद विजयपाल को ?" मुल्ला ने व्यंग किया।

"हाँ, अगर मुमकिन हो सका, पर हर सूरत में नहीं।"

"एक ऐसा मीर अद्ल भी हो सकता है—जो इनमें से किसी पर भी रिआयत न करे। दूध का दूध और पानी का पानी कर दे।"

"कौन ?"

"मेरा मतलब हाजी मोहम्मद सीस्तानी से है। मीर अद्ल का पद उसे हाल में ही आपने दिलाया है। आदमी निहायत मुंसिफ मिजाज और अक्लमन्द है। अगर इन्साफ का तकाजा हो तो अपने लड़के को भी मौत की सजा देने में पीछे न हटेगा।"

"तुम्हारी इस सूझ-बूझ का मैं कायल हूँ। वह आज-कल जापनाह का उस्ताद और तूरानी अमीरों का नाक का बाल बना हुआ है। यह खून उसी के सिर पर डालना ठीक होगा। किसी को कुछ कहने का मौका न मिलेगा।"

बैरम खाँ ने सामने रखे हुए कागज पर हस्ताक्षर कर दिये। उसे मोड़कर जेब में रखते-रखते मुल्ला ने कहा—"अब आज्ञा दीजिए। तीसरे दरवाजे का इंतज़ाम सँभालना है।" यह कह, सलाम करने के बाद, वह बाहर हो गया।

× × ×

नन्दा के साथ सराय फिरोजी के फाटक पर पहुँचते-पहुँचते विजय-पाल ने देखा कि पहले दिनवाला मार्गप्रदर्शक गाड़ी लिए उसकी प्रतीक्षा कर रहा है। विजयपाल ने उससे पूछा—"मैं जिस गाड़ी पर आया हूँ, उसी पर चलूँ तो कुछ हानि होगी ?"

वह नहीं चाहता था कि गाड़ी बदलने के लिए नन्दा को नीचे उतरना पड़े। पथप्रदर्शक ने स्वीकृति दे दी और वह जाकर कोचवान

राह में नन्दा ने देखा, विजयपाल बहुत अधिक चिन्तित और घबड़ाया हुआ-सा है मानो नन्दा उसके कन्धों पर अनावश्यक भार बन रही हो। उसने विजयपाल का हाथ दबाते हुए कहा—"इतनी उदासी का क्या कारण है? तुम्हारी इस चुप्पी से मुझे बड़ा डर लगता है।"

"तुम्हारे ही हित की बात सोच रहा हूँ, नन्दा।" विजयपाल ने नन्दा के हृदय को निश्चिन्त करने के उद्देश्य से उत्तर दिया।

गाड़ी गली में मुड़ी और एक चौड़े फाटक के सामने जाकर रुक गई।

"वे राजर्षि यहीं रहते हैं।" महल की ओर संकेत करते हुए विजयपाल ने कहा।

"कौन राजर्षि?" नन्दा ने अज्ञात आशंका से सिहरते हुए पूछा।

"जिनके पास तुम्हें रखने को कह रहा था।"

नन्दा को ऐसा प्रतीत हुआ मानो उसके सारे शरीर में एक साथ हिमालय के शीत का प्रवेश हो गया है। भीतर से थरथराती हुई बोली—"क्या आप मुझे यहाँ पर अकेली छोड़ देंगे?"

"कुछ देर प्रतीक्षा करो। राजर्षि से तुम्हारे सम्बन्ध में बातचीत करके मैं अभी आता हूँ।" कहकर विजयपाल गाड़ी से उतर पड़ा। नन्दा कुछ न कह सकी। उसने अपना हाथ गाड़ी से बाहर निकालकर विजय की ओर बढ़ा दिया। विजयपाल ने नन्दा के हाथ को अपने होंठों से लगा लिया। फिर जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाता हुआ वह महल में चला गया।

निर्दिष्ट कमरे के द्वार पर पहुँचकर उसने दस्तक दी। भीतर से बनावटी शेख ने मृदुकंठ में कहा—"आइए।"

उस कंठस्वर को विजय पहचानता था। वह सीधा अन्दर चला गया और अभिवादन करके दाहिनी ओर बिछे आसन पर बैठ गया।

"आप ठीक समय पर आ गये।" स्वागत में मुस्कराते हुए बैरम खाँ ने कहा।

जब तक काम पूरा न हो जाय, मेरे लिए एक-एक क्षण का मूल्य है। मैं पश्चात्ताप से डरता हूँ। आप समझ सकते हैं कि मेरे जैसे व्यक्ति को पश्चात्ताप कितना बुरा लग सकता है।

"ठीक!" प्रसन्न होते हुए बैरम खाँ ने कहा—"अब शायद आपको अपनी भूल मालूम हो गई है और आपका इरादा बदल रहा है!"

"जी नहीं, ऐसी बात नहीं है।"

"तो फिर आप अपने पहले इरादे पर कायम हैं न?" कुछ उदास होते हुए बैरम खाँ ने प्रश्न किया।

"मैंने मन, वचन और कार्य की एकता का पाठ पढ़ा है। जो इरादा एक बार पक्का हो गया, वह पूरा होने पर ही बदला जा सकता है।"

"यानी बैरम खाँ के कत्ल का आपका इरादा अब भी है?" अधिक स्पष्टता से समझने का प्रयत्न करते हुए खानखानाँ ने पूछा।

"जी, मैं निवेदन कर चुका हूँ।" दृढ़ता से विजयपाल ने उत्तर दिया।

"मेरी सलाह यह है कि एक बार पूरे मामले पर तुम फिर गौर कर लो। अच्छी तरह सोच-समझ लो। बुजुर्गों का कौल है कि गुनाह करने के लिए बीस गुनी हिम्मत चाहिए और सौ गुनी अक्ल।"

"आप इसे गुनाह कहते हैं?" आश्चर्य से बैरम खाँ की ओर देखते हुए विजयपाल ने कहा।

"खुदा की बनाई शक्ल को बिगाड़ना गुनाह नहीं तो फिर क्या है—एक ऐसी शक्ल को जो इन्सान की है—अशरफुलमखलूकात की है—सो भी बादशाह। तुम्हारे धर्म में भी राजहत्या को बड़ा पाप माना गया है।"

"पर दूसरे के धन व राज्य को छीन लेनेवाले को हमारे धर्म में आततायी कहा गया है। बैरम खाँ आततायी है। आततायी को मारना धर्म है।"

"अगर यह ठीक हो तो भी वह काम तुम्हीं को क्यों करना चाहिये? कोई दूसरा शख्श वह काम ज्यादा सहूलियत से कर सकता था।"

"इत्तफाक से पाँसा मेरे रुख गिरा। भगवान् की इच्छा यही है कि मैं ही इस कार्य को करूँ।"

"तुम्हारा इरादा बेशक बहुत ऊँचा है। पर हमें यह भी खयाल रखना होगा कि तुम वह रुम्मानी गुहर हो, जो जहाँ रहेगा, वहीं रोशनी देगा। ऐसी खुशकिस्मत और खुशइखलाक हस्तियाँ सदियों में एक दो ही होती हैं। मेरी समझ से तुम्हारा चुनाव मुनासिब नहीं हुआ है। अगर तुम्हारी राय हो तो मैं अपना सुझाव तुम्हारे साथियों के पास भेज दूँ। मुझे पूरी उम्मीद है कि वे लोग अगर जरा भी समझदार हुए तो मेरी इस सिफारिश को जरूर मंजूर कर लेंगे। रही काम की बात, उसके लिए मेरे पास ऐसे दर्जनों आदमी हैं जो चुटकी बजाते उसे कीड़े-मकोड़े की तरह मसल देंगे और अगर जरूरत पड़ गई तो खुशी-खुशी सूली पर भी चढ़ जायँगे। उनके न रहने से किसी का कुछ नुकसान न होगा। पर तुम्हारी जैसी अहम हस्ती की कुरबानी मेरा दिल गवारा नहीं करता। इस वक्त यहाँ पर सिर्फ हमी दो हैं, तीसरा कोई नहीं है। मैं अपनी दिली बात कह रहा हूँ।

"आप मेरे शुभचिन्तक हैं, मेरे धर्म पिता हैं।" बैरम खाँ के चरणों की ओर हाथ बढ़ाते हुए विजयपाल ने कहा—"मेरी प्रार्थना आपके चरणों में यही है कि आप मुझे कर्त्तव्य से हटाने का प्रयत्न न करें। मैं विश्वासघात नहीं कर सकता। मैं अपने साथियों के सामने लज्जित होना नहीं चाहता।"

"अच्छा तो जाने दो।" गहरी साँस लेते हुए बैरम खाँ ने कहा—"अब यह बताओ कि तुम अपना काम किस तरह करोगे?"

"मैं पहले उसके समीप पहुँचने की कोशिश करूँगा। जब पास पहुँच जाऊँगा तब एक बार उसके मुँह की ओर ध्यान से देखूँगा जिससे उसकी आकृति जीवन भर के लिए मेरे हृदय-पटल पर अंकित हो जाय। उसके बाद......।" अपने वाक्य को पूरा करने के लिए विजय ने सोने की मूठवाला अपना छुरा बैरम खाँ के सामने कर दिया। उसका फौलादी फलक कमरे के अर्द्ध प्रकाश में बिजली जैसी कौंध पैदा कर रहा था।

"ठीक है!" कुछ सिहरते हुए बैरम खाँ ने कहा।

विजयपाल चुप रहा।

"तुम्हारा तरीका मुझे पसन्द है। मगर एक बात फिर भी पूछने को बाकी है। मान लो कि तुम मौके पर गिरफ्तार हो गये और तुमसे पूछ-ताँछ हुई?"

"श्रीमान् को यह बताने की शायद आवश्यकता न होगी कि मेरे जैसे मनुष्य ऐसे अवसर पर क्या करते हैं। वे मर जाते हैं, पर भेद की बात जबान पर नहीं लाते।"

विजयपाल का यह उत्तर सुनकर बैरम खाँ के मुँह पर प्रसन्नता के भाव झलकने लगे जो विजयपाल से छिपे न रह सके।

"तब मैं मान लूँ कि तुम अपने इरादे पर कायम हो?"

विजयपाल ने सिर झुका दिया।

"ठीक है। तुम अपने इरादे पर चट्टान की तरह कायम हो।"

"हाँ, अब आपकी आज्ञा की प्रतीक्षा है।"

"मेरी आज्ञा की?"

बैरम खाँ उठकर खड़े हो गये और एक गलियारे की ओर संकेत करते हुए बोले—"उस रास्ते से जाने पर तुम्हें एक दरवाजा मिलेगा। वहीं मेरी गाड़ी खड़ी है। मेरा आदमी उसी में बैठा मिलेगा। वह तुम्हें बैरम खाँ के महलों में पहुँचा देगा और उससे तुम्हारी भेंट का भी प्रबन्ध कर देगा।"

"बस, इतना ही मैं आप से......।" विजय ने कुछ ठिठकते हुए कहा।

"कहो-कहो, जो कुछ भी कहना चाहते हो?" विजय की हिचकिचाहट को लक्ष्य करते हुए बैरम खाँ ने कहा।

"पीरो मुरशिद, मेरी दुबिधा से आपको आश्चर्य न होना चाहिये। मुझे जिस चीज की आवश्यकता है, वह मेरे पास मौजूद है। उसके सिवाय मुझे और कुछ नहीं चाहिए। पर शरीर के साथ साथ मैं अपनी आत्मा का बलिदान नहीं कर सकता। आप मेरे पूज्य हैं; पिता हैं; गुरु हैं। आपसे कहते मुझे शर्म लगती है, पर मौका ही ऐसा आ गया है। मैं संसार में केवल दो वस्तुओं को प्रेम करता हूँ। ऊपर परमेश्वर को और पृथ्वी पर एक लड़की को। आपको सुनकर दुःख ही होगा कि हमारा प्रेम ऐसे बुरे क्षण में जुड़ा, जब मेरे गले में मौत का फन्दा पड़ चुका था। उसे छोड़ना मेरे लिए अग्नि-परीक्षा हो रहा है। मेरे मरने के बाद उसका क्या होगा, यह चिन्ता मेरे हाथ-पैरों को ढीला कर रही है। अपने जीवन की वह पवित्र धरोहर मैं आपके हाथों में सौंप जाना चाहता हूँ। आपके पास साधन हैं, शक्ति है। आपने मुझे पिता का स्नेह प्रदान किया है। आपसे उसी पैतृक स्नेह की भीख मैं उस लड़की के लिए माँग रहा हूँ।"

"मैं वचन देता हूँ।" भावावेश में बैरम खाँ के मुँह से निकल गया।

"मैं आपका जन्म-जन्म ऋणी रहूँगा। मैं मौत से लड़ने जा रहा हूँ। नहीं जानता कि जीत किसकी होगी। जीवन में मैं उसे कुछ सुख न दे सका। पर विवशता है। अपने पीछे मैं उसके लिए तीन वस्तुएँ छोड़े जा रहा हूँ—आंपका स्नेह, अपना नाम और अपने बाप-दादों की शेष सम्पत्ति।"

"वह उसे मिलेगी।"

"यही चाहता हूँ। कौन जानता है, मैं गिरफ्तार ही हो जाऊँ—शायद आज शाम ही तक—शायद इस घर से बाहर होते ही।"

इस बात ने बैरम खाँ को चौंका दिया।

"मैं चाहता हूँ कि आप अपने प्रभाव से ऐसा प्रबन्ध करा दें कि गिरफ़्तारी के बाद और मौत की सजा से पहले हम दोनों विवाह के पवित्र सम्बन्ध में बँध सकें। ऐसा होने पर लोक-परलोक में उसे मेरी विधवा होने का अधिकार प्राप्त हो जायगा। साथ ही मुझे यह भी विश्वास दिला दीजिए कि मुगलों के नियम के अनुसार मेरी सम्पत्ति जब्त करके शाही खजाने में नहीं पहुँचा दी जायगी और आप उसे नन्दा के लिए सुरक्षित करा देंगे?"

"नन्दा के लिए?" आश्चर्य से बैरम खाँ ने पूछा।

"हाँ, यही उस लड़की का नाम है।"

"रसूल-पाक के नाम पर मैं कसम खाकर कहता हूँ कि जैसा तुम चाहते हो, वैसा ही होगा।"

"एक प्रार्थना और है?"

"कहो-कहो!"

"नन्दा मेरे इस कार्य के विषय में कुछ भी नहीं जानती। वह यह भी नहीं जानती कि मैं सीकरी क्यों आया हूँ। उसे कुछ बताने का मुझे साहस ही नहीं हुआ। आप उसे यह सब बातें बता दें जिससे आनेवाले संकट के लिए वह तैयार हो सके। मुझे आज्ञा दीजिये।

अब मैं नन्दा से मिलना भी नहीं चाहता। संभव है, उसे देख लेने पर मेरे हाथ काँपने लगें और मैं अपना काम ठीक से न कर सकूँ।"

"दिलेर शाहजादे, मैं अपनी बात दोहराना पसन्द नहीं करता। फिर भी तुम्हारे इतमीनान के लिए कह रहा हूँ कि वह लड़की मेरे दिल में अपने लिए पिता की उन्सियत पायेगी। मेरे दिल में तुम्हारे लिए जितनी कुछ उन्सियत है, उस पर आज से अकेली उसका हक होगा। वह मेरी आँख की पुतली और अपने दिलेर पति की यादगार बनकर रहेगी।"

"आज्ञा दीजिए।" पैर छूते हुए विजय ने कहा।

"खुदा हाफिज।"

"आपका आशीर्वाद मिल गया। अब मैं निर्भय हूँ।" सीधे खड़े होकर विजय ने कहा।

"कहाँ है वह लड़की ?" बैरम खाँ ने पूछा।

"नीचे गाड़ी में। मुझे आज्ञा दीजिए! केवल यह और बता दीजिए कि आप उसे कहाँ रक्खेंगे।"

"उस महल में।" सामने के एक सुन्दर महल की ओर संकेत करते हुए बैरम खाँ ने कहा—"वह खाली है। मेरे और नौकर-चाकरों के सिवा वहाँ और कोई नहीं जा सकता।"

"अच्छा तो अब चलता हूँ। कृपया इसका ध्यान रखिए कि वह लड़की अत्यन्त भोली-भाली है। उसे अभी संसार की हवा तक नहीं लगी है।"

"तो क्या मैं उससे कह दूँ कि तुम एक बहुत बड़े आदमी की जान लेने जा रहे हो ?" स्वर को साधकर बैरम खाँ ने अन्तिम तीर छोड़ा।

"आपको अधिकार है। पर साथ में यह भी कह दीजिए कि मैं आततायियों के हाथ से देश को बचाने के लिए ही ऐसा कर रहा हूँ।"

विजयपाल बैरम खाँ के बताये मार्ग से बाहर चला गया।

— —

एक रास्ते से विजयपाल मजलिस से बाहर हुआ और दूसरे रास्ते से मुल्ला भीतर पहुँचा। बैरम खाँ अब भी अपने आसन पर बैठे थे। विजयपाल की शिष्टतापूर्ण दृढ़ता से वे अभी तक प्रभावित थे। पहुँचते ही मुल्ला ने कहा—"इस तरह की जाती है बादशाहत !"

"क्या मतलब है तुम्हारा ?" उसकी ओर आश्चर्य से देखते हुए बैरम खाँ ने कहा।

"यही कि अब आप बादशाहत के रग व रेशे को अच्छी तरह जान गये हैं।"

"मैं समझा नहीं।" अनजान भाव से मुल्ला की ओर देखते हुए बैरम खाँ ने कहा।

"शेख ने कहा है कि बादशाह वह है जो हर चीज को उसकी मुनासिब जगह पर रखना जानता है।"

"तुम्हारा इशारा किस तरफ है ?" कुछ उद्विग्नता प्रकट करते हुए बैरम खाँ ने पूछा।

"किसी खास चीज की तरफ नहीं। मैं सिर्फ यह कहना चाहता हूँ कि बकौल शेख के एक बादशाह में जो गुण होने चाहिए, वे सब आप में मौजूद हैं।" होंठों पर उभरती हुई व्यंग्यपूर्ण मुस्कराहट को छिपाने का प्रयत्न करते हुए मुल्ला ने कहा।

बैरम खाँ कुछ न समझ सके। वे जिज्ञासापूर्ण दृष्टि से मुल्ला की ओर देखते रहे। मुल्ला की इस प्रकार की व्यंग्योक्तियों में कोई रहस्य

छिपा हुआ रहता है, यह वे जानते थे। पर उस रहस्य को समझ सकना उनके लिए आसान न था।

कुछ देर रुककर मुल्ला ने फिर कहा—"आप मिसाल चाहते होंगे शायद। मिसालों की कमी नहीं। यही आज का मामला ले लीजिए। विजयपाल आखिर क्या चाहता था? यही न कि जो चीज उसकी समझ से मुनासिब जगह पर नहीं है, उसे हटा दिया जाय और उसकी जगह मुनासिब चीज को रख दिया जाय।"

"हर एक आदमी यही चाहता है!"

"बेशक-बेशक, पर चाहने पर भी हर एक आदमी ऐसा कर नहीं सकता। ऐसा करने की अक्ल खुदा ने बादशाह को ही दी है। इसीलिए तो शेख ने कहा है......।"

"हाँ तो बादशाह ने क्या किया?" मुल्ला को असल बात पर लाने के अभिप्राय से बैरम खाँ ने कहा।

"बादशाह ने क्या किया!" यही कि बादशाह ने मुनासिब चीज को मुनासिब जगह पर रख दिया। यही उसका काम है। तभी तो उसे खुदाबन्द कहा जाता है।"

"मगर उसमें तुम्हारी समझ का भी तो हाथ है!"

"मेरी समझ!...पर वह तो महज एक हीला थी। शेख ने कहा है कि खुदाबन्द को हर काम के लिए एक न एक हीला चाहिए, जिससे उस पर कोई तोहमत न आ सके! इस बार बदकिस्मती से मैं मौजूद था। मैं न होता तो कोई दूसरा होता। तोहमत लेने के लिए तो कोई न कोई होना चाहिए ही।"

"मैं जो कुछ करता हूँ, तुम्हारी राय लेकर!" बैरम खाँ ने मुल्ला के कथन में संशोधन करते हुए कहा।

"बेशक-बेशक, पर इसके मानी यह हर्गिज नहीं हैं कि खुदाबन्द के सारे काम मेरी राय से ही होते हैं। ऐसा होना जरूरी भी नहीं है।

बहुत से काम ऐसे होते हैं जिन्हें समझने में मुझे काफी परेशानी उठानी पड़ती है, पर जो बजाहिरा खुदावन्द के 'वाहदहू ला शरीक' होने की तसदीक करते हैं।"

"मुझे किसी ऐसे काम का इल्म नहीं है जो तुम्हारी सलाह के बिना किया गया हो।"

"बेशक-बेशक, मैं भी यह मानता हूँ। इस खाकसार को ऐसा रुतबा देने के लिए मैं आपका मशकूर हूँ। फिर भी हाँ, कुछ छोटे-छोटे काम ऐसे जरूर हैं जो खुदाबन्द की खुदाई का इजहार करते हैं।"

"कोई मिसाल?"

"मिसाल देनी होगी!...खैर, कोशिश करने पर मिसाल भी मिल जायेगी। मेरी निगाह ज्यादा अच्छी नहीं है, इसलिए पाँव के नीचे की जमीन को देख-देखकर कदम रखता हूँ। जन्नताबाद की तीसरी गली का बारहवाँ मकान जहाँपनाह ने जरूर देखा होगा। वही जो मसजिद के पड़ोस में है और जिस पर लोहे का फाटक चढ़ा है?"

"नहीं, मैंने नहीं देखा। हाँ तो क्या बात है उस मकान में!" आश्चर्य का भाव प्रकट करते हुए बैरम खाँ ने कहा।

"नहीं देखा तो कोई हर्ज नहीं। वकीले मुतलक का काम गलियों के मकान गिनना नहीं है। यह काम मेरा है। पाँव तले से कितनी चिउँटियाँ रेंगती निकल गईं, इस तक की कैफियत भी मुझे देनी पड़ती है।"

"हाँ तो कैसा है वह मकान?"

"बहुत खूबसूरत है—निहायत महफूज, मोटी-मोटी दीवारें, लोहे का फाटक, अन्दर से निहायत आरामदेह, ईरानी कालीन, अस्पहानी पलँग, कारचोबी के परदे—खासा हरम समझिए हम्माम, खाना बाग, शीराजी और इस्तम्बोली के झरने—गुलिस्ताँ-बोस्ताँ—शाहजादों के काबिल!"

"पूरे शैतान हो......क्यों गये थे उधर ?"

"क्यों गया था...अर्ज कर चुका हूँ कि मेरे जिम्मे काम ही ऐसा सौंपा गया है। सबेरे उठकर मुझे सबसे पहले यह पता लगाना होता है कि किस तुर्कमान अमीर की दाढ़ी के कितने बाल पक गये हैं और कितने अभी पकने को बाकी हैं।"

वैरम खाँ चुपचाप एकटक मुल्ला की ओर देखते रहे। वे जानते थे कि मुल्ला की इस लम्बी-चौड़ी भूमिका के पीछे कोई नई शरारत अवश्य है।

वैरम खाँ को इस तरह अपनी ओर देखते हुए देखकर मुल्ला ने कहा—"हाँ तो उधर जाने की एक खास वजह थी। एक रोज जहाँपनाह ने हुक्म दिया था कि सैदे हयात अब्दुर्रहीम के मकतब के लिए सीकरी में कोई मुनासिब मकान तलाश किया जाय। वह मकान मेरी निगाह में ठीक जँचा था। मसजिद का पड़ोस, रात-दिन नमाज और नजात की अर्जां। मैं दरख्वास्त करनेवाला था कि किसी शाही मुल्ला के नाम उस मकान में डेरा जमाने के लिए फौरन रोबकार कर दिया जाय।"

"अब क्या हो गया ?"

"हुआ कुछ नहीं, अब मेरी समझ में आ गया है कि मैं गलती पर था। बादशाह ने एक दूसरी ही मुनासिब चीज को उस मुनासिब जगह पर रख दिया है।"

"अरे साँप की तरह लहरें लेते हुए बातें करते हो !"

"तालीमो तरबियत का मतलब हल भी हो जायगा। साहबजादी की तालीमो तरबियत वहाँ अच्छी तरह हो जायगी। बहरहाल, मकान की बाबत मेरा खयाल ठीक ही निकला।"

"अच्छा-अच्छा, समझ लिया ! और जो कहना बाकी हो, उसे भी जल्द कह डालो। एक दूसरा आदमी मुलाकात के लिए बाहर इन्तजार कर रहा है !"

"मैं हुजूर का ज्यादा वक्त खराब न करूँगा। पर गुस्ताखी माफ हो, एक अर्ज जरूर करूँगा, वकीले मुतलक बाहरी आदमियों से क्या इस जगह और इस लिबास में मुलाकात करेंगे?"

"कोई हर्ज नहीं। मौके का तकाजा यही है।"

"जो इरशाद; इसी लिए तो कहता हूँ कि अब बादशाहत मुकम्मिल है।"

"तुम अपनी बात जल्द पूरी कर डालो।"

"जो हुक्म; मैं सिर्फ यह कहना चाहता था कि खुदावन्द का चुनाव निहायत दुरुस्त था। जंगली कली को खिलाने के लिए ऐसी जगह रखना ही मुनासिब है जहाँ बाहर की हवा तक न लग सके।"

बैरम खाँ ने तीखी दृष्टि से मुल्ला की ओर देखा। मुल्ला की इस बात से वे कुछ क्षुब्ध-से हो उठे थे।

मुल्ला उनके मनोभाव को ताड़ गया। उसने तुरन्त बात बदलते हुए कहा—"हाँ तो वह लड़की उस महल में निहायत अमनो-अमान से थी!"

"थी क्यों?........ क्या मतलब है तुम्हारा?"

सहसा चौंककर बैरम खाँ ने पूछा।

"वही तो अर्ज कर रहा हूँ। शाहजादों और शाहजादियों को अल्लाहताला ने जहाँ हजारों नियामतें अता फर्माई हैं, वहाँ एक 'मतलून मिजाजी' भी अता की है।"

"क्या उसे वह मकान पसन्द नहीं है?"

"नहीं था, यह कहना ज्यादा मौजूँ होगा!"

"यानी अब वह वहाँ नहीं है?"

"जी हाँ, और अब मेरी समझ में यह भी आ गया है कि शाहजादे का दिल भी शायद वहाँ न लगता।"

"कहाँ गई वह?"

"किसी मुनासिब जगह पर ही गई होगी। शाही खानदान के लोग गैर मुनासिब जगह पर नहीं जा सकते।"

"पर वह चली कैसे गई?"

"कैसे चली गई—शाहजादियाँ जैसे चली जाती हैं—दिन-दहाड़े, सबके सामने, सदर फाटक से!"

"और बेगम मुअज्जिमा?"

"वे बैठी खत लिख रही थीं।"

"उन्होंने उसे रोका नहीं?"

"जरूर रोका होगा।"

"तब...?"

"वे अपनी भवों में शायद उतना बल नहीं दे सकीं जितना कि उस लड़की को रोकने के लिए जरूरी था।"

"नौकरों से फाटक बन्द करवा सकती थीं।"

"फाटक तो बन्द रहे होंगे। वे सिर्फ जाने के लिए ही खुले होंगे?"

"बेगम मुअज्जिमा के हुक्म के बगैर फाटक किसने खोल दिये?"

"खोले तो बाँदियों ने ही होंगे, हुक्म चाहे किसी ने दिया हो।"

"बाँदियों ने किसी दूसरे के हुक्म की तामील कैसे की?"

"हुक्म के पीछे तलवार का जोर जरूर रहा होगा।"

"तलवार!......तलवार कहाँ से आ गई!"

"उसके पास तो बेशक नहीं थी। वह किसी और के पास रही होगी।"

"दूसरे के पास!......यानी कोई और भी उसके साथ था?"

"जरूर रहा होगा। शाहजादियाँ महल से बाहर अकेली कदम नहीं निकालतीं।"

"कौन था वह!......कोई मर्द?"

"मर्द ही रहा होगा; नहीं तो इतनी हिम्मत और किसमें हो सकती है!"

"अच्छा तो वह गई कहाँ ?"

"किसी मुनासिब जगह पर ही गई होगी।"

"मजाक का मौका नहीं है। तुम नहीं जानते कि उसका यहाँ रहना कितना जरूरी है।"

"पहले मैं नही जानता था, पर अब समझ में आ रहा है कि 'फिर्दौस मकानी'* और 'जन्नत आशियानी'† के तख्त की मजबूती के लिए एक पन्द्रह-सोलह साल की लड़की का उसके पाये से बाँध रखना बहुत जरूरी है।"

"मैं चाहता हूँ कि वह जहाँ कहीं भी हो, फौरन गिरफ़ार कर ली जाय!" वातावरण को गम्भीर बनाने का प्रयत्न करते हुए बैरम खाँ ने कहा।

"बजा इरशाद, मैं सारे शहर में अभी मुनादी कराये देता हूँ कि एक खूबसूरत नौजवान लड़की किसी जवान के साथ जहाँ कहीं······।"

मुल्ला की इस चोट से बैरम खाँ बुरी तरह तिलमिला गये। वे बिगड़कर कुछ उत्तर देनेवाले ही थे कि मजलिस के द्वार पर हलकी-सी थाप पड़ी। अपने आसन से ही उन्होंने कहा—"कौन है ?"

"नीचे गाड़ी में बैठी लड़की जानता चाहती है कि उसका साथी कितनी देर और लगायेगा!"

बिजयपाल के शब्द तुरन्त बैरम खाँ को याद आये। सचेत होकर वे द्वार खोलने के लिए बढ़े। पर मुल्ला सामने आ गया और नम्रता-पूर्वक बोला—

"गुलाम की मौजूदगी में तकलीफ करने की जरूरत नहीं है।"

"मैं खुद उसका इस्तकबाल करना चाहता हूँ।"

"यह वकीले मुतलक के तर्जे अमल के खिलाफ होगा।"

---

*स्वर्गीय बाबर †स्वर्गीय हुमायूँ

"मैं वचन दे चुका हूँ। उसके प्रेमी को मैंने आफत में डाला है तो उसे धीरज देने का काम भी मुझे करना होगा। यह इन्सानियत का तकाजा है।"

"मैं समझता हूँ।" शरारत-भरी दृष्टि से बैरम खाँ की ओर देखते हुए मुल्ला ने कहा।

"जबान बन्द करो और चुपचाप अपनी जगह पर खड़े रहो।" आँखें टेढ़ी करते हुए बैरम खाँ ने कहा।

उनके इस प्रकार के रुख से मुल्ला सहम गया। और अपनी जगह पर खड़े-खड़े ही बोला—"मैं उससे सिर्फ दो बातें करनी की इजाजत चाहता हूँ।"

"एक हर्फ नहीं। उससे मैं खुद बातचीत करूँगा।"

मुल्ला और कुछ कहना चाहता था पर खानखानाँ का रुख अचानक बिगड़ते देख उसे हिम्मत न हुई। दीवार से पीठ लगाकर वह चुपचाप खड़ा हो गया। बैरम खाँ ने जाकर द्वार खोल दिया।

अपनी जड़ाऊ और भड़कीली पोशाक से मजलिस के स्तब्ध वातावरण को स्पन्दित-सी करती हुई एक षोडशी भीतर आई। अपनी कजरीरी आँखों को उठाकर एक बार उसने कमरे में चारों ओर देखा। फिर हाथ जोड़कर बैरम खाँ से बोली—"धृष्टता की क्षमा चाहती हूँ, पिता जी! आप ही शायद वे राजर्षि हैं, जिनके सम्बन्ध में मुझसे कहा गया था।"

कण्ठस्वर सुनकर बैरम खाँ भौचक्के रह गये। बेगम मुअज्जिमा के महल में उस रात को सुना हुआ कण्ठस्वर उन्हें भूला नहीं था। आँखें उठाकर एक बार उन्होंने नन्दिनी को ऊपर से नीचे तक अच्छी तरह देखा। फिर बोला—"किसे चाहती है, बेटी!"

इस बार नन्दा की चौंकने की बारी थी। उसके चाचा का कण्ठ-स्वर भी तो ठीक ऐसा ही था।

"माफी चाहती हूँ, पिता जी ! मैं अपने साथी को खोजने आई थी। वे शीघ्र लौट जाने का वचन देकर यहाँ आये थे। पर यहाँ उन्हें असाधारण रूप से विलम्ब हो गया। मुझे भय लगा कि कहीं कोई दुर्घटना न हो गई हो !"

तेरा मतलब सरदार विजयपाल जी से तो नहीं है ! वे मुझसे मिलकर अभी-अभी यहाँ से गये हैं !"

बैरम खाँ के कण्ठस्वर ने इस बार नन्दा को अत्यधिक आश्चर्य में डाल दिया। कुछ पीछे हटती हुई वह बोली—"आश्चर्य की बात है।"

"क्या ?"

"आपकी बोली ठीक मेरे चाचा जी जैसी है।" नन्दा के चेहरे पर शिशु-सुलभ भोलापन खेलने लगा।

"कौन हैं तेरे चाचा जी; कहाँ रहते हैं वे ?"

बैरम खाँ ने भी उसे भोलापन के साथ पूछा।

"उनका घर मैं नहीं जानती। वे बहुत बड़े आदमी हैं। जापनाह, आलीजाह। मैंने उनसे सिर्फ एक बार बातचीत की है !"

"अच्छा, उनकी शक्ल-सूरत क्या मेरी जैसी ही है ?"

"मैंने उनका मुँह तो देखा नहीं। पर उनकी आवाज पहचानती हूँ।"

"मासूम बच्ची।" बैरम खाँ के मुँह से निकला।

मुल्ला ने कनखियों से उनकी ओर देखा।

"तेरा साथी यहाँ क्यों आया था ?" बैरम खाँ ने पूछा।

"वे मुझे एक राजर्षि के—शायद आपके ही—पास छोड़ने के लिए लाये थे। कह रहे थे कि आपके पास रहने से मेरी मुसीबत टल जायगी।"

"तुझ पर क्या मुसीबत है ?" भूमि की ओर आँखें गड़ाये बैरम

नन्दा ने आँखें उठाकर कमरे में चारों ओर देखा। मुल्ला उसी की ओर टकटकी लगाये था। वह सहसा सकुच गई मानो अपने वस्त्रों में ही छिप जाना चाहती हो। फिर लड़खड़ाती आवाज में बोली—"हमारे शास्त्रों में लिखा है कि ऋषियों और राजाओं से पर्दा नहीं करना चाहिए क्योंकि वे पिता के तुल्य होते हैं।"

"तू मेरी बेटी है।" बैरम खाँ ने आश्वासन के स्वर में कहा। इन शब्दों में कुछ अद्भुत जादू था। नन्दा के हृदय का भय बहुत कुछ दूर हो गया। पर मुल्ला की उपस्थित अब भी उसके संकोच का कारण बन रही थी। अपने पैरों में आँखें जमाये वह अँगूठे से फर्श कुरेदने का प्रयास करने लगी।

उसके मन की द्विविधा को ताड़ते हुए ही जैसे मुल्ला ने प्रार्थना की—"जहाँपनाह को शायद अब मेरी जरूरत नहीं है। मैं इजाजत चाहता हूँ।"

"जहाँपनाह!" नन्दा ने मन ही मन दोहराया और साहस करके एक बार बैरम खाँ के मुँह की ओर देखा।

मुल्ला कमरे से बाहर हो गया था।

"आसन पर बैठ जा बेटी! तुझसे बहुत सी बातें करनी हैं।" आसन की ओर संकेत करते हुए खानखानाँ ने कहा।

"कृपा कर पहले यह बता दीजिए कि मेरे साथी कहाँ हैं और वे सुरक्षित हैं या नहीं?" निर्दिष्ट आसन पर बैठते हुए नन्दा ने दोनों हाथ जोड़कर कहा। उसकी आँखें भर आई थीं।

"मैं सब बतला रहा हूँ। पर उससे पहले तुझसे दो-एक बात कर लेना जरूरी है। वे तुझे मेरी हिफाजत में छोड़ गये हैं, इसलिए अव्वल मैं यह जान लेना चाहता हूँ कि तुझ पर क्या मुसीबत है?"

"यों खास मुसीबत तो कोई नहीं है, पर पिछले कुछ दिनों से कुछ ऐसी बातें हुई हैं जिनके कारण मैं बहुत डर गई हूँ।" नन्दा ने नारी-सुलभ शैली से उत्तर दिया।

"तब उस छल से बचने के लिए ही तुम उस मकान से निकल आईं; उस व्यक्ति के फुसलाने से नहीं ?" संतोष की साँस लेते हुए बैरम खाँ ने पूछा।

"फुसलाने की जरूरत उन्हें क्या थी। वे मेरे सच्चे शुभचिन्तक हैं। मकान के रहस्यपूर्ण वातावरण से मुझे डर लगा। मैंने पत्र भेजकर उन्हें बुलाया, और बुलाती ही किसे! वे मुझे निकाल लाये!"

"तू अपने चाचा को पत्र लिख सकती थी!"

"चाचा जी दुबारा मुझसे मिले ही नहीं। न मैं यही जानती थी कि वे कहाँ रहते हैं! फिर मैं उन्हें पत्र कैसे भेजती!"

"मासूम बच्ची!" बैरम खाँ के मुँह से फिर सहसा निकल पड़ा। फिर अपने को सहसा सँभालकर उन्होंने कहा—"फिर भी यह मानना पड़ेगा कि संदेह का बीज तेरे मन में विजयपाल ने ही डाला था। क्योंकि तू तो इतनी भोली-भाली है कि तुझे किसी चीज पर सन्देह नहीं हो सकता।"

"हाँ; सौभाग्य से वे यहीं थे। उन्हें संसार का ज्ञान मुझसे अधिक है।"

"क्या तुझे विश्वास है कि उन्होंने तुझे जो कुछ बतलाया वह सच था?"

"जिससे प्रेम होता है उसकी बात पर सहज ही विश्वास हो जाता है।"

"तू विजयपाल से प्रेम करती है?"

नन्दा ने लज्जा से सिर झुका लिया।

"कब से?"

नन्दा फिर भी चुप रही।

"कात्यायनी माई के थान में रहते हुए तुम दोनों की भेंट कैसे हो जाती थी?"

"वे नदी पार करके उधर के जंगले के नीचे आ जाते थे ?"

"रोज आया करते थे ?"

"सप्ताह में एक बार !"

"क्या तू नहीं जानती कि हिन्दू लड़कियों की शादी उनके भाई-बाप करते हैं ?"

"जानती थी ! पर पन्द्रह साल में मुझे यह किसी ने नहीं बताया कि मेरा भी कोई कहीं है। थान के अन्य लड़के-लड़कियों की भाँति मैं भी अपने को अनाथ-लावारिस समझती थी। उस अवस्था में अपने साथ जो थोड़ी-सी भी सहानुभूति दिखलाता है, वह अपना हो जाता है।" नन्दा ने सफ़ाई देते हुए कहा।

"अब तो तुझे मालूम हो गया कि तेरे भी घरवाले हैं ?"

"ठीक से कुछ समझ में नहीं आता। मुझे तो ऐसा लगता है, मानो मैं स्वप्न देख रही हूँ।"

"अच्छा, दूसरों के कहने-सुनने को छोड़ दे। अपने दिल की बात बता ! तेरा दिल क्या कहता है कि वह शख्स तुझे चाचा लगा था या नहीं ?'

"उस समय तो वैसा ही लगा था।"

"और अब ?"

नन्दा सोच में पड़ गई।

"अब शायद वह चाचा नहीं लगता होगा ! यही न ? जब तक वह पास रहा, उसकी मुहब्बत का तुझ पर असर रहा। जब वह चला गया तब दूसरे की मुहब्बत का असर हो गया जिसमें उससे ज्यादा गर्मी, उससे ज्यादा जोश था !" कुछ उत्तेजित से होते हुए खानखानाँ ने कहा। भय से नन्दा उनके तमतमाये चेहरे की ओर देखने लगी।

"आप अजब तरह की बातें कर रहे हैं, पिता जी !" उठने की चेष्टा करते हुए उसने कहा।

दूसरे ही क्षण वैरम खाँ सँभल गये और अत्यन्त विनीत स्वर में बोले—"बेटी ! शायद मैं गलती कर रहा हूँ। सारा दोष तेरे चाचा का है। अगर वह तुझे मिलने-जुलने का काफी मौका देता तो तू बाहर निकलने की गलती न करती !" नन्दा चुपचाप द्वार की ओर देखती रही। उसे लग रहा था कि शायद विजयपाल आ जाय !

"फिर भी तूने उन्हें मना नहीं किया ?"

चौंककर नन्दा ने फिर खानखानाँ की ओर देखा और पूछा—"किसे ? क्यों ?"

"तू जानती है कि विजयपाल आगरे क्यों आये हैं ?"

"नहीं। जब मैंने उनसे कहा था कि मैं आगरे जा रही हूँ तब वे प्रसन्न होकर कहने लगे थे कि मुझे भी वहाँ जाना है।"

"इस साजिश का तुझे कोई इल्म नहीं है ?"

"साजिश का ?" भयभीत होकर नन्दा ने पूछा।

"नहीं-नहीं। मेरा मतलब दूसरा था। तू समझी नहीं।" प्रसंग को बदलने की इच्छा से बैरम खाँ ने कहा।

"मैं समझ गई ! मैं समझ गई ! आपने मुझे बतला दिया ! मेरी समझ में आ गया कि क्यों वे पिछले कुछ दिनों से इतने गम्भीर और चिन्तित दिखाई देते थे। क्यों वे सदा बैरम खाँ, मुराद बेग और चम्पालाल की ही बातें किया करते थे; भविष्य-जीवन की चर्चा करने पर क्यों वे उदास से होकर कहने लगते थे कि 'नन्दा, मैं नहीं जानता कि कल क्या होनेवाला है।' क्यों वे अपने भाग्य को अनिश्चित समझते थे। वे षड्यंत्रकारी हैं। वे यहाँ षड्यन्त्र करने आये हैं !" नन्दा का स्वर सहसा उत्तेजना की चरम सीमा पर पहुँच गया। ऐसा लगता था मानो वह अभी फूट पड़ेगी !

"तू उन पर इतना विश्वास करती है, और उन्होंने यह छोटी सी बात तुझे नहीं बतलाई !" भेद-नीति से काम लेते हुए बैरम खाँ ने कहा।

"शायद इसलिए कि मैं स्त्री थी। नीति का वचन है कि रहस्य की बात स्त्री को नहीं बतानी चाहिए।" कुछ सँभलते हुए नन्दा ने कहा।

"अच्छा ही हुआ। अब अगर मेरी बात मान—क्योंकि तू मुझे पिता कह चुकी है—तो उन्हें उनकी राह जाने दे और वे जो कुछ करना चाहते हैं, उसके लिए उन्हें आजाद छोड़ दे।"

"मैं आपकी आज्ञा मानने को तैयार हूँ, पिता जी! पर, हम दोनों ही संसार में अकेले हैं। एक-दूसरे के सिवाय हमारा संसार में और कोई नहीं है। मा-बाप उनके भी नहीं हैं, मेरे भी नहीं। और अगर होंगे भी तो पन्द्रह साल से मुझसे अलग हैं। इस लम्बे समय में मुझसे अलग रहने की उनकी आदत पड़ गई होगी और मेरा वियोग उन्हें अधिक कष्टदायक न होगा। मतलब यह है कि हम दोनों यदि साथ-साथ मर भी जायँ तो हमारे शोक में किसी को एक आँसू भी बहाना न पड़ेगा। मैं आपसे झूठ कह रही थी कि उस साजिश में मेरा हाथ नहीं है। उन्होंने जो कुछ किया है—या करने जा रहे हैं—उसमें मैं भी शामिल हूँ।"

एक गहरी साँस के साथ बैरम खाँ ने गुनगुनाया—'नेस्त जंजीरे जनूँ दर गरदने मजनूने जार। इश्क दस्ते दोस्ती दर गरदनश अफ-गन्दह अस्त*।" फिर प्रकट रूप में कहा—"तू बड़ी वफादार और लायक लड़की है। तेरी एक-एक बात अनमोल है। मैं सिर्फ एक बात और जानना चाहता हूँ। थान से चलते वक्त तूने क्या सोचा था? मेरा मतलब यह है कि क्या तूने उस वक्त मन ही मन में यह तय

---

*यह साँकल जो बेचारे मजनूँ की गर्दन में पड़ी हुई है, वह साँकल नहीं है, जिससे पागल को बाँधा जाता है। यह साँकल उस इश्क का प्रतीक है जिसने दोस्ती का हाथ उसकी गर्दन में डाल दिया है।

नहीं कर लिया था कि अगर तेरे मा-बाप तेरी शादी किसी और के साथ करना चाहेंगे तो तू विजयपाल का ख्याल छोड़ देगी ?"

"शायद सोचा हो; मैं ठीक से कह नहीं सकती। वह हालत दूसरी थी। उस हालत में मैं जानती थी कि मेरे लिए उन्हें दुःख जरूर होगा, पर इससे उनके जीवन पर कोई प्रभाव न पड़ेगा। उन्हें छोड़ने का मुझे दुःख हो सकता था, पश्चात्ताप नहीं। अब परिस्थिति दूसरी है। अब मैं जानती हूँ कि उनका जीवन खतरे में है। अब मुझे अनुभव हो रहा है कि हम दोनों का जीवन एक ही है।"

"यह महज इसलिए कि अभी मामला ताजा है। धीरे-धीरे सब भूल जायगा।"

"कदापि नहीं! उनकी शीतल छाया मुझे उस समय प्राप्त हुई थी जब माता-पिता के स्नेह का मैंने स्वप्न भी नहीं देखा था। जीवन की सूनी घड़ियों में मेरे वे आकाश-दीप रहे हैं। मेरा जीवन—मेरी आशा—मेरा सब कुछ—उन्हीं पर आधारित है—उन्हीं के चरणों पर समर्पित है। पिता जी, मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ—आपके चरणों पर सिर रखकर भीख माँगती हूँ—कि आप उन्हें उस काम से अलग कर दीजिए। वे आपकी आज्ञा अवश्य मान लेंगे। वे आप पर श्रद्धा रखते हैं—आपको राजर्षि कहते हैं, आपको पिता समझते हैं। आपको इसीलिए उन्होंने भेद की सारी बातें बतलाई हैं। यदि वे वैसे न मानें तो उनसे कहिए कि आपकी नन्दा आपके बिना क्षण भर नहीं रह सकती। जो कुछ आपको होगा, वही नन्दा को भी अवश्य होगा। आपको देश निकाला हुआ तो वह भी देश से निकल जायगी; जेलखाना हुआ तो वह भी जेल का जीवन व्यतीत करेगी—और अगर फाँसी हुई तो वह भी फाँसी लगा लेगी।" कहकर नन्दा बैरम ए के पैरों पर लोट गई और फफक-फफककर रोने लगी। नन्दा को अपन

विजयपाल जी को बचाने की भरसक कोशिश करूँगा। मैं वचन देता हूँ।"

नन्दा फिर भी पैरों से लिपटी ही रही। उसे लगता था कि जैसे उसकी सारी आशायें, उसका सारा भविष्य, उसके जीवनाधार विजय का समस्त कुशल-क्षेम उन्हीं दो चरणों में केन्द्रीभूत होकर रह गया है।

कुछ क्षण तक अपने भावावेश को सँभालने के पश्चात् बैरम खाँ फिर बोले—"सबसे पहले हमें जरूरी कामों की ओर ध्यान देना है। यह तो कह ही चुका हूँ कि विजयपाल का जीवन खतरे में है। पर वह खतरा अभी दूर है। इसलिए अव्वल तेरे बारे में इन्तजाम करना जरूरी है। विजयपाल जी तुझे मेरी हिफाजत में छोड़ गये हैं। तू मुझ पर विश्वास करेगी?"

"अवश्य; 'वे' मुझे यहाँ लाये थे!"

"हमेशा 'वे'!" ठंडी साँस लेते हुए धीरे से बैरम खाँ ने गुनगुनाया। फिर बोले—"यह जो सामने छोटी-सी सुन्दर हवेली दिखाई दे रही है; तुझे वहीं रहना है। वहाँ तुझे किसी प्रकार का खतरा नहीं हो सकता। मैं तेरे पढ़ने के लिए कुछ अच्छी-अच्छी किताबें रखवा दूँगा और अकसर तुझसे मिलता-जुलता भी रहूँगा, बशर्ते कि तुझे कुछ ऐतराज न हो!"

नन्दा ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह धैर्य के साथ बैरम खाँ की बात सुनती रही।

उसके मौन को सम्मति का लक्षण मानते हुए बैरम खाँ फिर बोले—"उस हवेली में विजयपाल जी से भेंट करने का मौका भी तुझे मिल सकता है।"

नन्दा विचलित हो उठी, फिर भी कुछ बोली नहीं। बैरम खाँ ने आगे कहा—"हवेली की बगल में एक छोटा-सा शिवाला है। तू

चाहे तो वहाँ बैठकर भजन-पूजन भी कर सकती है। इससे तेरे चित्त को कुछ शान्ति मिलेगी।"

"मैं राजी हूँ पिता जी; आपके उपकारों के लिए हम दोनों जीवन भर आपके ऋणी रहेंगे।"

सिर झुकाते हुए बैरम खाँ ने कहा—"अब तू समझ ले कि तू अपने पिता के घर पर है जहाँ तेरा कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता। मैं दो-एक बाँदियाँ भेज दूँगा जो तेरी सब तरह से टहल करेंगी।"

"आप बड़े दयालु हैं, पिता जी!"

"और अपने चाचा जी व माता जी को तू छोड़ ही देगी?" मुस्कराते हुए बैरम खाँ ने कहा।

नन्दा हाथ जोड़कर बोली—"आप मेरे भय को क्या नहीं समझ रहे हैं, पिता जी! क्या मेरा सन्देह अनुचित था?"

"अनुचित न होने पर भी उसकी बुनियाद कमजोर है। मकान को देखकर ही किसी की नीयत पर शुबह कैसे किया जा सकता है!"

"मैं अपनी बात आपसे कह चुकी हूँ।"

"अच्छा मान ले, तेरे चाचा जी तेरा पता लगाते-लगाते यहाँ आ पहुँचे और उन्होंने तुझे ले जाना चाहा?"

"उस हालत में आप कृपा करके 'उन्हें' सूचना कर दीजिए। 'वे' जो आज्ञा देंगे वही करूँगी।"

"यही ठीक होगा।" कहते हुए बैरम खाँ मुस्कराकर उठ खड़े हुए। नन्दा भी उठ खड़ी हुई। उसे हवेली की ओर जाने का संकेत करते हुए वे स्वयं दाहिनी ओर के एक फाटक की ओर बढ़े। कुछ कदम आगे चलकर नन्दा ठिठकी और मुड़कर पीछे की ओर देखने लगी। बैरम खाँ लौटकर उसके पास आये और बोले—"कुछ कहना चाहती है?"

" 'वे' हैं कहाँ?"

"इतना उतावलापन ठीक न होगा।" धीरे से बैरम खाँ ने कहा। नन्दा ने सिर झुका लिया।

उसे चिन्ता में पड़ी देखकर बैरम खाँ ने कहा—"वे सफर पर गये हैं। दो या तीन दिन में लौटेंगे।"

"लौटने पर तो दर्शन हो जायँगे?" अर्द्धस्पष्ट स्वर में नन्दा ने कहा।

"जरूर, इसका मैं वादा करता हूँ।"

इसके बाद वह धीरे-धीरे हवेली की ओर चली गई।

"यह अढ़ाई घड़ी की भद्रा भी आज निबट जाय तो ठीक रहेगा।" कहते हुए मुराद बेग घुटनों के बल फर्श पर बैठ गया और मसनद को खींचकर उसने अपने पीछे कर लिया। उसके दोनों साथी भी अगल-बगल बैठ गये।

"इतनी कोशिश हुई तब कहीं जाकर प्याला लबालब भरा।" कहकर इम्दाद ने मुराद के मुँह की ओर देखा।

"मैं तुम्हारी तारीफ करता हूँ, इम्दाद भाई, तुम इतनी कोशिश न करते तो धरती के दोनों छोर न मिलते।" प्रशंसासूचक दृष्टि से इम्दाद की ओर देखते हुए मुराद ने कहा।

"खानजमाँवाला मामला फिर भी रहा जाता है।" चम्पालाल ने धीरे से कहा।

"आज की बैठक में वह भी तय हो जायगा। देखो न यह खत!" कहते हुए मुराद बेग ने एक खत निकाला और सामने रख दिया।

"शाहम बेग का दस्तखती है।" खत पर एक निगाह डालते हुए चम्पालाल ने कहा।

"हाँ, और नहीं तो क्या! इसी लिए तो मैं कहता हूँ कि मुगल सल्तनत की इमारत की पहली ईंट लाहौर में रक्खी गई थी और लखनऊ से गिरनी शुरू होगी।"

"कितने पर सौदा हुआ है?" चम्पालाल ने प्रश्न किया।

"दो हजार अशर्फियों पर।" मुराद ने मूँछों पर ताव देते हुए कहा।

"बगल का काँटा इसे ही तो कहते हैं।" इम्दाद ने समर्थन किया।

"आगरे से खबर मिलने के पेश्तर ही यह काम कर डालना होगा, नहीं तो खानजमाँ हमारी सम्भल की राह में रोड़ा बन जायगा।" चम्पालाल ने सम्मति दी।

"मैं कल ही कुछ बन्दोबस्त करने की सोच रहा हूँ।" मुराद ने कुछ धीरे से कहा।

"योजना क्या रहेगी?" चम्पालाल ने फिर पूछा।

"उसकी बाबत कुछ सोच चुका हूँ, कुछ सोचना बाकी है।" मुराद ने उत्तर दिया।

"अशर्फियों की बाबत क्या इन्तजाम हुआ।"

दौलतराम जौहरी से तय हो गया है। उसने कह दिया है कि वह सब दाम भर देगा।"

"बहादुर बनिया है।"

"खानजमाँ ने उसे बेइज्जत भी बहुत किया है।"

इसी समय कोठरी में कुछ खटके की आवाज हुई। मुराद ने उधर मुड़कर देखा। गुप्त-द्वार से पाँच मूर्त्तियाँ भीतर आ रही थीं। तीनों एक साथ उठकर खड़े हो गये।

"आइए सेठ जी!" दोनों हाथ बढ़ाकर मुराद ने स्वागत किया।

"हाजिर हूँ।" कहकर दौलतराम जौहरी ने अपना नकाब उतार दिया। साथियों ने भी उसका अनुसरण किया।

"आपकी ही चर्चा हो रही थी।" इम्दाद ने कहा।

"बड़ी मेहरबानी आपकी; मैं किस लायक हूँ।" बनियों की भाँति सेठ ने उत्तर दिया।

सब चुपचाप बैठकर एक-दूसरे का मुँह देखने लगे।

"आपकी बात पर मैंने विचार कर लिया है।" कुछ इधर-उधर करने के बाद जौहरी ने कहा।

तीनों मित्र आशा के साथ सेठ के मुँह की ओर देखने लगे।

सेठ मुराद की आँखों में देखते हुए बोला—"खानजमाँ ने हमें जिस तरह बेइज्जत किया है, आपसे छिपा न होगा।"

"आपकी इज्जत हमारी इज्जत है, बल्कि सारे जौनपुर की इज्जत है।" तीनों एक स्वर से बोले।

"तो मैं भी आपके साथ पूरी तरह से हूँ।" दौलतराम ने दृढ़ता से कहा।

"यह खत शाहम बेग का है, जिसका जिक्र मैंने आपसे किया था।" कहकर मुराद ने वही पत्र सेठ के सामने भी रख दिया।

"मैं पूरा विश्वास करता हूँ।" पत्र की ओर देखते हुए सेठ ने कहा—"पर एक बात कहना चाहता हूँ, बुरा न मानिएगा। इन शाहम बेगों का इतमीनान जरा समझ-बूझकर करना चाहिए। वह खानजमाँ की बगल में सोनेवाला है। ऐसे आदमी की बात बहुत पक्की नहीं होती। और यदि यह चाल खानजमाँ की हुई तब तो... खैर, मेरी कुछ बात नहीं। मेरी इज्जत-आबरू तो वह ले ही चुका है और मुझे बिरादरी के सामने मुँह दिखाने के काबिल भी नहीं रक्खा; सवाल आप लोगों का है। नारायण न करे कि कहीं...... फिर रुपये का भी सवाल है। कहीं ऐसा न हो कि रुपया भी जाय, मुसीबत आवे।"

मुराद ने इम्दाद की ओर देखा।

इम्दाद बोला—"इसका उपाय यह है कि 'इस हाथ दे उस हाथ ले' वाला सौदा होना चाहिए। कोई जगह ऐसी मुकर्रर कर दी जाय जहाँ वह उधर से खानजमाँ का सिर लेकर आये और इधर से हममें से कोई रुपये लेकर पहुँच जाय।"

"यह कैसे हो सकता है ! इतमीनान दोनों तरफ से होना चाहिए। मान लो, उसने कह दिया कि रुपया पहले लिये बिना मैं खानजमाँ पर हाथ नहीं उठाऊँगा। बात भी पते की है। जरा देर के लिए सोचो, वह वैसा क्यों करेगा ! रुपये के लिए ही तो ! यदि उसने वह काम कर डाला और रुपया भी न पाया, तब कहाँ का रहेगा !" चम्पालाल ने कहा।

"यह काम आपसी दिलजमई का है। फरीकैन को एक-दूसरे पर विश्वास तो करना ही होगा; भले ही दो में एक घाटे में रहे। हमें अपनी तरफ का तो इतमीनान है ही।" मुराद ने संक्षेप में निर्णय पर पहुँचते हुए कहा।

"वैसे रुपये का कोई सवाल नहीं है। आप लोगों की दया से यह तो हाथ का मैल है। जैसा आया, वैसा गया। सोचता यही हूँ कि इससे कोई नई मुसीबत न आ पड़े।" कहते हुए सेठ ने अशर्फियों का एक तोड़ा निकालकर रख दिया।

"जोखिम तो उठानी ही पड़ती है। फिर हम जो कुछ करने जा रहे हैं, उसमें भी जोखिम ही है। अगर सच पूछें तो उसमें जो जोखिम है, उसके मुकाबिले में यह जोखिम कुछ भी नहीं है।"

"आगरे की क्या खबर है ?" सेठ ने प्रसंग बदलते हुए पूछा।

"बहुत अच्छी है। सरदार कुशलपाल का यह खत कल ही तो आया है। लिखा है कि विजयपाल शेख साहब की शागिर्दी में कबूल कर लिया गया है और अब वह गाजी बननेवाला है।"

"विजयपाल सच्चा सिपाही है।" प्रशंसा करते हुए सेठ ने कहा।

"अब हमें भी जल्दी करनी चाहिए।"

"शाहम बेग से सौदा किस तरह हो; इसके बाबत मैं आप लोगों की राय जानना चाहता हूँ।" मुराद ने मुख्य प्रसंग पर पहुँचते हुए कहा।

"वह आजकल है कहाँ ?" सेठ ने प्रश्न किया।

"कायमगंज में।" मुराद ने उत्तर दिया।

"मगर हममें से किसी का कायमगंज जाना ठीक नहीं है।" चम्पालाल ने राय दी।

"लेकिन किसी तीसरे आदमी पर विश्वास भी कैसे किया जा सकता है!" मुराद ने आपत्ति की।

"मेरी समझ से एक नाव सौदा भरकर पच्छिम की ओर रवाना की जाय। साथ ही शाहम बेग को खबर कर दी जाय कि वह भी नाव पर ही उधर से आये। बीच में दोनों फरीक मिलें। वहीं सौदा हो जाय। अगर वह राजी हो जाय तो रुपया किसी ऐसे आदमी के पास जमा कर दिया जाय जिस पर दोनों का विश्वास हो। जब वह काम कर दे तब रुपया ले ले।" सेठ ने अपनी सम्मति दी।

"ऐसा आदमी कौन हो सकता है?" चिन्ता प्रकट करते हुए मुराद ने कहा।

"शृङ्गीरामपुर के महन्त जयरामदास से काम चल सकता है।" सेठ ने सम्मति दी।

"यह भी हो सकता है कि शाहम बेग का कोई खास आदमी ओल में ले लिया जाय और रुपया उसे दे दिया जाय। जब वह काम कर दे तब उस ओल को उतार दिया जाय।"

"दोनों ही तदबीरें मुनासिब हैं। अब विचारना यह है कि हम में से नाव पर कौन जाये। क्योंकि सेठ जी का अकेले जाना ठीक न होगा।" इम्दाद खाँ ने कहा।

"मैं नहीं जाऊँगा। ज्यादा से ज्यादा मैं अपने मुनीम जी को भेज सकता हूँ। रही रुपयों की बात, वह मैं आपसे अर्ज कर ही चुका हूँ।" सेठ ने आपत्ति की।

"इसकी चिन्ता नहीं। पाँसा फेंककर इसका फैसला किया जा सकता है।" मुराद बेग ने कहा।

"मगर मैं न जा सकूँगा, चाहे पाँसा मेरे ही रुख क्यों न गिरे।"

चम्पालाल ने आपत्ति की।

"ऐसा क्यों?" आँखें तरेरते हुए मुराद ने प्रश्न किया।

"यह मेरी निजी बात है। और जहाँ कहीं जाने की आज्ञा होगी, वहाँ जा सकता हूँ।"

"सबब बताना होगा।" कुछ बिगड़ते हुए मुराद बेग ने कहा।

"कारण यह कि मैं नाव पर जाना नहीं चाहता।"

"आखिर क्यों?"

"मैं जल से डरता हूँ।"

"जल से डरते हो?"

"हाँ, यही तो मैं कह रहा हूँ।"

"आखिर कोई बात भी हो?"

"एक लम्बी कहानी है, जिसे सुनाने से कोई फायदा नहीं।"

"पर मैं यों ही न जाने दूँगा।" हठ और अविश्वास के स्वर में मुराद बेग ने कहा।

"आप हर बात में हठ करने लगते हैं। यह ठीक नहीं है।" चम्पालाल ने कुछ उग्र होते हुए कहा।

"मैं ठीक कह रहा हूँ। हममें से हर एक अगर यों ही बहाना बनाकर निकल भागने की कोशिश करने लगे तो आखिर काम करने के लिए लोग कहाँ से आयेंगे।" मुराद ने भी बिगड़ते हुए कहा।

"मैं बहाना करनेवालों में नहीं हूँ।"

"यह मैं मानता हूँ। पर जब एक बात तय हो गई, और सब एक राय पर पहुँच गये, तब इस तरह भाँजी मारना क्या मानी रखता है?"

"जो तय हुआ है, उससे मैं पूरी तरह सहमत हूँ। पर मैं सिर्फ यह कहना चाहता हूँ कि नाव और जल के झमेले से मुझे बचाया जाय। मैदान में आप जो काम चाहें, मुझे सौंप सकते हैं। मैं कदम पीछे न हटाऊँगा।"

उपस्थित लोग चम्पालाल के इस भाव-परिवर्त्तन को आश्चर्य से देखने लगे।

"मैं कैफियत चाहता हूँ।"

"अच्छी बात है। मैं कैफियत देने को तैयार हूँ, पर कहानी जरा लम्बी है और यह मौका उसे सुनाने का है भी नहीं।"

"कोई हर्ज नहीं; हम सब उसे सुनने को तैयार हैं।"

"तो सुनिए।" चम्पालाल आसन बदलकर बैठ गया और कहने लगा—

"पन्द्रह-सोलह साल पहले की बात है। तब मैं दस-ग्यारह साल का था और पिता जी के साथ रियासत पर रहा सकता था। एक दिन मेरे पिता जी और चाचा जी ने हिरनों के शिकार का निश्चय किया। वे मुझे भी साथ ले गये। हम लोग घोड़ों पर सवार थे, जैसा कि हिरनों के शिकार में रिवाज है। पिता जी का घोड़ा लाल रङ्ग का था और चाचा जी का स्याह अबलक। मैं नकुले रङ्ग के एक पहाड़ी टट्टू पर सवार था जो बहुत शायस्ता और सधा हुआ था।

"शिकार का जंगल हमारी गढ़ी से छः कोस पर उत्तर की ओर था। तीन-चार कोस चलने के बाद एक जगह एक नीम की छाया में हम लोग रुके। मुझे प्यास लगी थी और चाचा जी का एक साईस मेरे लिए पानी लेने गाँव की ओर चला गया था।

"हम लोगों ने देखा, एक बुढ़िया, जिसके सिर के बाल सन की तरह सफेद हैं, नीम की जड़ से लगी बैठी है। उसके दाहिने हाथ में बकरी के सींग का टुकड़ा है और बायें हाथ में पानी भरा मिट्टी का एक छोटा-सा प्याला। वह सींग की नोक से जमीन पर रेखायें खींचती जाती है और उन पर थोड़ा-थोड़ा पानी बायें हाथ से छोड़ती जाती है।

"पागल है।" मेरे चाचा ने कहा। बुढ़िया हम लोगों की ओर देखने लगी।

"क्या कर रही है?" चाचा जी ने उससे पूछा।

"कर क्या रही हूँ, नैहर के गाँव में आग लग गई है, उसे बुझा रही हूँ।" बुढ़िया ने बहुत संजीदगी से उत्तर दिया।

"हम तीनों हो-हो करके हँस पड़े।

"बुढ़िया कुछ न बोली। वह पहले की तरह अपने काम में लगी रही। इसी बीच साईस पानी ले आया। हम लोग पानी पीकर चलनेवाले ही थे कि बुढ़िया बोली, "वह सफेद टट्टू बड़ा अशुभ है।"

"धुत् पगली", मेरे चाचा ने कहा, "जानती है, यह कितना कीमती और शायस्ता है। सलोतरियों का कहना है कि बाल—भौंरी से साफ और वेऐब घोड़ा इस तरह का रजवाड़े भर में दूसरा न होगा। इसे भारी दामों पर देवीपाटन से मँगाया है।"

बुढ़िया ने एक बार टट्टू की ओर देखा और फिर मेरी ओर। फिर पागलों की तरह ताली बजाती हुई और हवा में लातें उछालती हुई कहने लगी—"सुभान तेरी कुदरत, सुभान तेरी कुदरत।"

"फिर उस बुढ़िया के पागलपन की चर्चा करते हुए और हँसते-हँसाते हुए हम तीनों शिकारगाह की ओर चल दिये।

"जंगल का अभी छोर ही दबाया था कि हमारे घोड़ों के सुमों की आहट पाकर एक सियार दाहिनी ओर की झाड़ी से निकला और शोर करता हुआ बाईं ओर को भागा। हमारे घोड़े भड़क गये। पिता जी और चाचा जी ने तो जैसे-तैसे चूम-पुचकारकर अपने-अपने घोड़े काबू में कर लिए, पर मैं अपने टट्टू को काबू में न कर सका। मैंने लगाम खींची तो पुस्तंग झाड़ता हुआ वह अर्जल होने लगा। मैंने आगे को दबाया तो उसने बुरी तरह काँधी मार दी। मैं चारों-खाने चित्त गिरा। बाईं बाँह टूट गई। इस घटना से मेरे पिता जी और चाचा जी बहुत दुःखी हुए और शिकार का विचार छोड़ मुझे लिए हुए जैसे-तैसे घर लौट आये। मैं छः महीने खाट पर पड़ा रहा,

तब कहीं जाकर बाँह ठीक हुई। लेकिन पहले की तरह फिर भी सीधी नहीं हो सकी।"

यह कहते हुए चम्पालाल ने अपनी बाईं बाँह खोलकर मित्रों को दिखलाई और फिर उसकी टेढ़ाई को ठीक से समझाने के लिए दाहिनी बाँह को भी खोलकर बाईं के समानान्तर फैलाकर दिखाया।

"आगे क्या हुआ?" उत्सुकता से मुराद ने प्रश्न किया।

"इसके बाद सात-आठ साल तक मुझे बुढ़िया देखने को न मिली। अब मैं जवान हो गया था और रात दिन शिकार खेलने में मस्त रहता था। हम जैसे राजकुमारों को प्रधान कार्य उन दिनों यही था। मैं अपना घोड़ा लेकर गढ़ी से निकल जाता और हफ्तों बाद बीसों मजदूरों पर शिकार लदवाये लौटता।

"एक दिन की बात है। मैं शिकार को जा रहा था। साईस साथ था। सामने देखा, वही बुढ़िया सड़क के किनारे-किनारे चली आ रही है। उसकी आकृति अभी वैसी ही थी, जैसी मैंने पहले देखी थी। इसी लिए उसे पहचानने में मुझे देर नहीं लगी। उस बुढ़िया ने भी मुझे पहचान लिया। यह देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। क्योंकि मेरा शरीर अब बहुत बदल चुका था। मेरी ओर देखकर वह बोली—"कहाँ जा रहे हैं, राजा चम्पालाल?"

"शिकार खेलने।" मैंने उत्तर दिया।

"ओहो, यह तो अच्छा है। पर अपनी जेब का यह छुरा मुझे दे दें तो बड़ी मेहरबानी हो।" मेरी जेब में पड़े छुरे की ओर संकेत करते हुए उसने कहा। मैंने अपने नौकर की ओर देखा।

"छुरा न रहने से शिकार की खुरियाँ किस तरह काटेंगे?" नौकर ने आपत्ति की।

बुढ़िया फिर बोली, "सुभान तेरी कुदरत, सुभान तेरी कुदरत!" और चुपचाप सड़क के किनारे-किनारे चल दी।

"मेरी समझ में न आया कि बुढ़िया के इस तरह छुरा माँगने का कारण क्या था। मेरे नौकर ने अवश्य कहा कि उसे छुरे की जरूरत रही होगी, इसी लिए माँगती थी। हम लोग भी अपनी राह चल दिये। हाँ, अपने मन में मैंने यह निश्चय अवश्य कर लिया कि छुरे का प्रयोग बहुत समझ-बूझकर करूँगा।

"संयोग की बात कि बहुत देर तक दौड़-धूप करते रहने पर भी मुझे उस दिन शिकार दिखाई न दिया। मेरी समझ में आ गया कि बुढ़िया का क्या अभिप्राय था। जब शिकार मिलना ही नहीं था तब छुरे का क्या होगा। शायद बुढ़िया के कथन का यही अभिप्राय था। मेरा दिल कुछ हलका हो गया और मैंने घर की ओर घोड़ा मोड़ दिया।

"उसी समय एक मोटा करसायल छलाँगें मारता हुआ मेरे आगे से निकला। बिना कुछ सोचे-विचारे मेरी एड़ ने घोड़े के तंग को छुआ। हाथों ने लगाम तानी। घोड़ा हिरन के पीछे था। मैं कुछ ही दूर गया था कि हिरन के पीछे घोड़ा डाले हुए एक और शिकारी पर मेरी निगाह पड़ी। पर अब क्या हो सकता था! मुझे देखते ही वह बोला—"तकलीफ करने की जरूरत नहीं। यह शिकार मेरे लिए काफी होगा!"

"मैं भी यही कहनेवाला था।" शिकारी की ओर कनखियों से देखते हुए मैंने कहा। अब हम दोनों के घोड़े बगमेल दौड़ रहे थे।

"खैरियत इसी में है कि लौट जायँ।" कुछ चिढ़ते हुए उस शिकारी ने कहा।

"होश की दवा करो।" मैंने भी उसी अकड़ से उत्तर दिया।

"मेरे मुँह से यह निकलना था कि वह जवान जो लगभग मेरी ही अवस्था का था, आग-बबूला हो गया, और ओंठ चबाता हुआ बोला—"यह गुस्ताखी!" उसने अपना छुरा हाथ में ले लिया और मेरी ओर बाग मोड़ते हुए कहा—"ठहर तो बद कमाल!"

"बेवकूफ कहीं का!" कहकर मैंने भी अपना छुरा हाथ में ले लिया और सावधान हो गया।

"घोड़े को कावा देते हुए उस शिकारी युवक ने मुझ पर छुरे से वार किया। मैंने भी उस पर छुरा चलाया। होनहार की बात कि उसके घोड़े का एक पैर गड्ढे में जा पड़ा और उसका वार चूक गया। पर मेरा छुरा मूँठ तक उसकी छाती में जा धँसा। तड़पकर वह घोड़े से नीचे जा गिरा। छाती से खून का फुहरा छूट पड़ा। मैंने भी इस दुर्घटना के कारण शिकार की आशा छोड़ चुपके से घर की राह ली। राह में सोच रहा था कि छुरा साथ न होता तो अच्छा होता; पर मेरी प्राण-रक्षा भी उस दशा में क्योंकर होती।"

"कयामत की बुढ़िया थी!" मुराद ने आँखों से आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा।

"हाँ, और क्या! आगे और भी सुनिए। उस घटना के चार या पाँच वर्ष बाद, पिछले वर्ष मुझे उस बुढ़िया के दर्शन अचानक फिर हो गये। उस वक्त मैं अपनी शादी करके लौट रहा था। मेरी स्त्री पालकी में थी और उसके साथ-साथ सोलह सशस्त्र सैनिक चल रहे थे। बराती कुछ आगे थे और कुछ पीछे आ रहे थे। हाथियों, घोड़ों, रथों और ऊँटों की कई मील लम्बी कतार थी। मैं भी अपने सब्जे पर चढ़ा वर के वेश में पालकी से कुछ फासले पर चल रहा था। रास्ते में मैंने देखा, सड़क के एक किनारे, शीशम के एक उकठे पेड़ के नीचे खड़ी वह बुढ़िया टकटकी लगाये मेरी ही ओर देख रही है।

"मेरा रोम-रोम सिहर उठा। दिल धक्-धक् करने लगा। ऐसा लगा कि घोड़े से अब गिर जाऊँगा। इच्छा हुई कि आँख फेरकर आगे बढ़ जाऊँ, पर घोड़ा मानो किसी अदृष्ट की प्रेरणा से उसी की ओर मुड़ गया और पास पहुँचकर खड़ा हो गया। बुढ़िया मुस्करा रही थी।

"दुलहिन लाये हैं?" मेरी ओर दयापूर्ण नेत्रों से देखते हुए उसने पूछा।

मैंने सिर झुका लिया।

"अच्छा किया, बेटा; बड़ी अच्छी बहू है। तुझे बहुत सुख देगी बेचारी। सुभान तेरी कुदरत, सुभान तेरी कुदरत!" कहकर बुढ़िया पालकी की ओर देखने लगी।

"मेरे सारे शरीर से एक साथ पसीना छूट पड़ा।

"फिर एक ओर को जाते-जाते वह बोली—"जल से बचना बेटा, जल से। जल में तेरे लिए खतरा है। और कोई तेरा कुछ न बिगाड़ सकेगा।"

"पिछले दो अनुभवों ने मेरे दिल को काफी कच्चा कर दिया था। इस बार मैं और भी डर गया। घर के सब लोग खुशियाँ मना रहे थे और मैं भविष्य की चिन्ता कर रहा था। बुढ़िया की बातें मेरे दिल पर जैसे किसी ने खोद दी थीं। उसके बाद छः महीने भी न बीते कि खानखानाँ से मेरे पिता का बिगाड़ हो गया और फिर जो कुछ हुआ वह आप सबको मालूम है। आज यह दिन है कि फूलों की सेज पर सोनेवाली मेरी बीबी, जिसने हाथ से उठाकर कभी पानी पीना नहीं जाना, आज हाथ से चक्की पीसती और रसोई पकाती है। इस तरह बुढ़िया की तीसरी भविष्यवाणी भी करीब-करीब पूरी हो गई है और अब जलवाली बात बाकी रह गई है।"

"एक तरह से यह बात अच्छी भी है। तुम्हें कम से कम यह इतमीनान तो है ही कि जल के सिवा और कहीं कोई तुम्हारा कुछ बिगाड़ नहीं सकता, फिर वह चाहें खुद मलकुल्मौत ही क्यों न हो। क्यों न?" बात पर दूसरे रुख से प्रकाश डालते हुए मुराद ने कहा।

"कम से कम मेरा विश्वास तो यही है।" चम्पालाल ने कहा।

"खैर, पर इसमें एक नुकसान भी है, जो बहुत बड़ा है। यह बात यह साबित करती है कि तुम इस मामले में सिर्फ उसी हद तक जाने को तैयार हो जहाँ मौत का खतरा नहीं है। कम से कम इस कहानी

का मैं यही मतलब निकाल रहा हूँ। मेरा मतलब यह है कि तुम इस मामले में इसी लिए शिरकत कर रहे हो, क्योंकि तुम्हें मालूम है कि जल के सिवा और कोई तुम्हें नुकसान नहीं पहुँचा सकता। तब इसमें न तुम्हारी दिलेरी की बात है और न बहादुरी की। दुनिया में ऐसा कौन होगा जिसे अगर यह इतमीनान हो कि उसकी मौत नहीं हो सकती तो वह बहादुर न बन जाय! तुम्हारी सारी बहादुरी, सारी दिलेरी—बहुत कुछ इसी तरह की है। ऐसी बहादुरी को मैं बहादुरी नहीं समझता जो कुछ शर्तों के साथ हो।"

चम्पालाल चुपचाप सिर झुकाये सुनता रहा।

"मैं कहता हूँ कि सेठ की नाव पर तुम्हीं को जाना होगा।" मुराद ने उत्तेजित होकर कहा।

चम्पालाल ने एक बार आँखें उठाकर मुराद के तमतमाये चेहरे की ओर देखा। फिर आँखे नीचे झुका लीं।

"मेरी बात का क्या जवाब देते हो?" मुराद ने फिर कड़ककर पूछा।

"मैं अर्ज कर चुका हूँ।"

"यानी तुम भी उन्हीं कायरों में हो, जिन्हें हरदम मौत सामने दिखाई देती है। यही सबब है जो तुम कोई बड़ा काम नहीं कर सकते।"

मन में एक दूसरे के प्रति कुछ असाधारण धारणायें लिये हुए तीनों मित्र आधी रात गये कोठरी से निकले और पेचीदा गली के नुक्कड़ पर जा पहुँचे। रात साँय-साँय कर रही थी। उसी समय सामने की सड़क पर घोड़ों की टापों की आवाज सुनकर तीनों ठिठक गये।

"शायद पहरेदार हैं।" इम्दाद ने धीरे से कहा।

पोशाकें कुछ गैरमामूली हैं।" मुराद ने उस ओर ध्यान से देखते हुए कहा।

तीनों खिसककर दीवाल की छाया में हो रहें।

"वह देखो!" कहते हुए चम्पालाल ने एक सवार की ओर अँगुली उठाई जो दस्ते के बीस कदम के फासले पर पहुँचे अरबी घोड़े पर सवार आ रहा था।

"इसका तुर्रा और कलँगी मुगलों जैसी है!"

"खानजमाँ तो नहीं है?"

"खानजमाँ नहीं हो सकता। वह तो कल तक लखनऊ में ही था।

"तब यह कुछ दूसरा मामला है!" दोनों की ओर सन्देह से देखते हुए मुराद ने कहा।

"भगवान जाने।" चम्पालाल ने धीरे से उत्तर दिया।

तीनों टकटकी लगाकर सवारों को देखने लगे। सवार कुछ आगे बढ़कर एक गली में मुड़े जो दाहिनी ओर को जाती थी।

"हमारी गली में ही मुड़े हैं।" मुराद ने कुछ मुस्कराते हुए कहा।

"शायद दल-बादल में पड़ाव करेंगे!" चम्पालाल ने कहा।

सवारों के चले जाने पर तीनों मित्र गली के मुहारे पर जा पहुँचे।

"वह देखो!" इम्दाद ने आगे की ओर संकेत किया।

"मेरा घर घेर रक्खा है, शायद।" मुस्कराते हुए मुराद ने कहा।

"तब जरूर यह किसी की हरकत है?" सन्देह के साथ चम्पालाल ने कहा।

"आगरे में हमारे सिर्फ दो आदमी हैं।" इम्दाद ने कहा।

"विजयपाल ऐसा नहीं करेगा।" मुराद ने निश्चय के साथ कहा।

"कुशलपाल भी मुखबरी नहीं कर सकता। तीसरा वहाँ है ही कौन?" इम्दाद ने भी अपना मत प्रकट कर दिया।

"हो सकता है, सवार किसी दूसरे ही मतलब से आपके दरवाजे पर रुक गये हों, और कुछ देर बाद आगे चले जायें।" चम्पालाल ने बतलाया।

"मुमकिन है; पर बात गैरमामूली जरूरी है। इसी लिए शुबह होता है।"

"शुबह से फायदा उठाना चाहिए।"

"यानी!"

"यानी इस मौके पर हट जाना अच्छा रहेगा।"

"और अगर वहाँ चलकर ही देखा जाय!"

"अगर वे दुश्मन हुए तो आपको जरूर गिरफ्तार कर लेंगे।

"मुझे गिरफ्त में लेकर क्या करेंगे?"

"बैरम खाँ से आपकी पुरानी दुश्मनी जो है।"

"बैरम खाँ मुझे नहीं पहचानता।"

"पर दरबार में आपको पहचाननेवालों की कमी न होगी।"

"इसके अलावा मेरे खिलाफ शहादत भी चाहिए।"

"शहादत की परवाह मुगल नहीं करते। और जरूरत पड़ने पर शहादत तो पैदा कर ली जाती है।"

"यह भी मान लेता हूँ। पर क्या आप लोगों का मंशा यह है कि अपने बाल-बच्चों को इस तरह दुश्मनों के घेरे में छोड़कर मुझे भाग खड़ा होना चाहिए!" चम्पालाल की ओर देखते हुए मुराद ने कहा।

"राज-काज के मामलों में ऐसा करना बुरा नहीं कहा जाता। भगवान् श्रीकृष्ण तक जरासन्ध को पीठ दिखाकर भागे थे और द्वारका जाकर दम लिया था। सुना है, आपके हजरत रसूलिल्लाह भी जरूरत पेश आने पर मदीने के लिए हिजरत कर गये थे। और बादशाह हुमायूँ का मुल्क-दौलत छोड़ सिर पर पैर रखकर भागना तो अभी कल की ही बात है।" चम्पालाल ने अपनी बात का समर्थन करते हुए कहा।

"यह मौका रायजनी का नहीं है। और न उस काम के लिए यह जगह ठीक ही है। मैं जो कुछ कहता हूँ, उसे पहले सुन लो, और फिर जिनके जी में जो आवे, वह वैसा आजादी से कर सकता है। मैं गलत मिसाल देना पसंद नहीं करता, न मुझे पीठ दिखाकर भागने पर यकीन है। मेरे दादा ने भागना पसंद नहीं किया और न अब्बाजान ही कभी जान बचाकर भागे, हालाँकि उनके पास मौका था। इसलिए भागने की बात मैं नहीं मान सकता। मान लो, मैं भागा भी, तो क्या इसका असर आप लोगों पर और हमारे दूसरे साथियों पर नहीं पड़ेगा? क्या विजयपाल के कान में यह बात नहीं पहुँचेगी? और क्या वह यह नहीं कहेगा कि बड़े सरदार बनते थे, मुझे सूली पर चढ़ा दिया और खुद वक्त आया तब भाग खड़े हुए।"

दोनों साथी चुपचाप कुछ देर तक मुराद के उत्तेजित मुख की ओर देखते रहे; फिर इम्दाद बोला—"मान लो आप गिरफ्तार हो गये, तो इससे सब लोगों के हौसले टूट जायेंगे!"

"मैं यह नहीं मानता कि मुगल मेरे घर से मुझे पकड़ ले जायेंगे और मेरे बचाने के लिए एक भी तलवार म्यान से बाहर न होगी! इसके बरखिलाफ मेरा आकीदा तो यह है कि जिस काम को हम करने जा रहे हैं, उसे शुरू करने का यह एक नादिर मौका अल्लाताला ने दिया है। अगर मुझे गिरफ्तार किया गया तो सारे इलाके में आग लग जायगी। बारूदखाना तैयार है, सिर्फ एक चिनगारी की देर है। वह चिनगारी मैं बन जाऊँ तो बेहतर है। बिना ऐसा किये सरदार की पगड़ी की लाज नहीं रहने की। ठीक यही होगा कि मैं आगे बढ़कर शहीद बनूँ और फिर मेरे दोस्त मेरी कब्र पर छुरे तेज करके कसमें लें। मुगलों को नहीं देखते कि ऐसे मौकों पर कैसा जोश और हौसला दिखलाते हैं। फिर जब मैं सरदार हूँ तो मेरा फर्ज है कि जहाँ आप लोगों के लिए मैंने और बहुत से रास्ते साफ किये हैं वहाँ मौत का रास्ता भी साफ कर दूँ, जिससे उस नाजुक रास्ते पर आप लोग भी मेरे पीछे-पीछे साबित कदमी से चल सकें। अगर हाथ में तलवार रही और मुँह घर की ओर रहा तो मैदान में क्या कर सकते हैं!"

"हम लोगों के लिए क्या आशा है?" कुछ झिझकते हुए चम्पालाल ने प्रश्न किया।

"हाँ, उसका जिक्र भी जरूरी है। तुम लोग वफादार सिपाहियों की तरह आज तक मुझे अपना सरदार मानते रहे हो। मेरा और तुम लोगों का वह सरदारीवाला रिश्ता आज से खत्म होता है। अब तुम खुद मुख्त्यार हो। जो कुछ मुनासिब समझो, कर सकते हो। तुम्हारे सामने तुम्हारा घर-बार है, बाल-बच्चे हैं, इज्जत-आबरू है। तुम्हारे सामने तुम्हारा दुश्मन भी है जो तुम्हारे घर-बार, बाल-बच्चों और तुम्हारी इज्जत आबरू के लिए खतरा है। अब यह तुम्हारे दिल की बात है। तुम चाहो तो अपने बाल-बच्चों को लेकर मजे में बेकसों, बेदिलों और बेगैरतों की जिन्दगी बिता सकते हो। ऐसा करते हुए तुम्हारे कंधों पर सिर जरूर साबित रहेंगे, उनके लिए कोई खतरा

न होगा; लेकिन उन सिरों पर बाप-दादों की पगड़ी रख सको, या न रख सको, यह दूसरी बात है। तुम्हारे पेट के लिए रोटियों की कमी न रह सकेगी, भले ही तुम आँसुओं के घूँट पीकर उन्हें गले से नीचे उतारो। यही नहीं, अगर तुम थोड़ी सी बेगैरती और भी दिखला सके, अपने दोस्त-अहबाव, अपने संगी-साथियों और अपने हमवतनों और हमजोलियों की इज्जत का सौदा गैरों के हाथ कर सके तो तुम्हें उनके दरबार में मंसब भी मिल जायगा, खिलअतें भी मिल जायेंगी और दाम-दिरम तो इतना मिलेगा कि सँभाले न चुकेगा। दूसरी तरफ अगर मेरी तरह तुम्हें भी यह जूतियों में परोसी मिठाई पसन्द न आये, कौम की बहू-बेटियों की इज्जत अपनी जान से कम कीमती न लगती हो, लानत और बेइज्जती की लिखावटवाले तमगे सीने पर लगाने से गुरेज हो तो तुम भी वही कर सकते हो जो मैं करने जा रहा हूँ, जाती जिम्मेदारी पर, जाती बलबले का शिकार होकर! हालाँकि तुम जानते ही हो कि मैं 'बेग' हूँ।"

इम्दाद और चम्पालाल ने सिर झुका लिया। मुराद बेग क्षण भर तक खड़ा दोनों की ओर देखता रहा, फिर वह उन्मत्तों जैसी मस्ती के साथ अपने घर की ओर अग्रसर हो गया। दोनों साथी भी उसके पीछे-पीछे चल दिये।

"आप लोग किसकी इजाजत से मेरा दरवाज़ा रोके खड़े हैं?" द्वार पर पहुँचकर एक सिपाही से उसने प्रश्न किया जो दरवाजा घेर-कर खड़े होनेवाले सिपाहियों में से एक था। सिपाही ने एक और सैनिक की ओर संकेत कर दिया जो पास ही खड़ा था और जिसकी पोशाक अफसरों जैसी थी।

"मैं अन्दर जाना चाहता हूँ। रास्ता छोड़ दीजिए।" उसने सिपाही को धक्का देते हुए कहा।

"आप कौन हैं?" आगे बढ़ते हुए अफसर ने प्रश्न किया।

"मैं इस घर का मालिक हूँ।" मुराद ने कड़ाई से उत्तर दिया।

"मालिक ! आप इस घर के मालिक नहीं हो सकते !" आँख से मुराद बेग को दूसरी ओर हटने का संकेत करते हुए अफसर ने कहा।

मुराद बेग दूसरी तरफ को हट गया पास पहुँच कर अफसर ने धीरे से उसके कान में कहा—"आपका नाम क्या है ?"

"मुराद बेग !" मुराद बेग ने धीरे से उत्तर दिया।

"तो जानते हो, दरबार को आपके सर की जरूरत है, और इसी लिए हम लोग भेजे गये हैं ?" अफसर ने फिर बुनबुनाते हुए कहा।

"अब जान गया। पर मेरा सिर गाजर-मूली नहीं है।"

"वह तो देख रहा हूँ। हालाँ कि मुल्ला पीर मोहम्मद अपने से खिलाफ राय रखनेवाले के सिर की कीमत यही लगाता है।"

"और अपने सिर की कीमत ?" मुराद ने चिढ़ते हुए कहा।

"उसका ठीक अन्दाजा तुम कर सकते हो। पर इस बहस की जरूरत नहीं। मेरी दोस्ताना सलाह यह है कि तुम फौरन नौ-दो ग्यारह हो जाओ। तुम कहाँ जाओगे, इसको बताने की जरूरत नहीं, कम से कम मेरे नजदीक।"

"फिर तुम क्या करोगे ?" मुराद ने कुछ आश्चर्य, कुछ सन्देह के साथ पूछा।

"मैं अपना काम करूँगा; तुम अपना काम करो ! हमें एक दूसरे के काम में दखल देने की जरूरत नहीं।"

"फिर भी !"

"सुनना ही चाहते हो ! अच्छा सुनो ! हम जाब्ते की कार्रवाई करेंगे। हम कुछ दिन तक यहाँ मुकाम करेंगे। किसी को भीतर-बाहर आने-जाने न देंगे। फिर एक गश्ती चिट्ठी आगरे को रवाना करेंगे कि आसामी फरार हो गया और हम उसका पीछा करने जा रहे हैं। इस तरह कुछ दिन इस कस्बे में, कुछ दिन उस कस्बे में रहेंगे। कोई

जौहरी मिल गया तो उसके बाल-बच्चों की खैर आफियत पूछेंगे। फिर महीना पन्द्रह रोज बाद आगरे की जानिब रुख करेंगे। रास्ते से दो-चार धुनिया-जुलाहे पकड़ लेंगे। उन्हें खूब जरदा-पुलाव छकायेंगे और उन्हें सिखा देंगे कि पूछने पर अपना नाम मुराद बेग बतलायें। आगरे पहुँच कर उनके हाथ-पैर बाँध देंगे और इस तरह एक की जगह चार मुरादबेग हुजूर में पेश कर देंगे।" मुस्कराते हुए अफसर ने धीरे-धीरे कहा।

"जब मैं हाजिर हूँ तब मुझे गिरफ़्तार क्यों नहीं करते?"

"कह तो चुका हूँ। आपको गिरफ़्तार करने में मुझे क्या मिल जायगा? दरबार का हुक्म है कि आसामी मिल जाय तो इलाके में किसी से कुछ छेड़-छाड़ न की जाय। न उसके बाल-बच्चों को किसी तरह की तकलीफ दी जाय। इस हालत में मेरा नुकसान तो है ही, आपके सर का खतरा है।"

"मगर उस खतरे से बचने के लिए मुझे भागना मंजूर नहीं है।"

"तब आप क्या चाहते हैं? कुत्ते की मौत मरना?"

"इसका फैसला करना तुम्हारा काम नहीं है।"

"यह मैं जानता हूँ और साथ ही यह भी जानता हूँ कि जिसका यह काम है वह अपना काम बहुत पहले पूरा कर चुका है।"

"कोई परवाह नहीं। अब आप अपना काम पूरा कीजिए और उसके बाद मुझे अपना काम पूरा करने की इजाजत दीजिए।"

"आप काफी शरीफ हैं, मियाँ साहब!"

"मैं भी आपकी शराफत की कद्र करता हूँ।"

"आपके साथ ये दो शरीफ और कौन हैं?"

"वे मेरे कोई नहीं हैं।"

"मैं इम्दाद खाँ हूँ, कड़ा का सरदार!" इम्दाद ने आगे बढ़ते हुए कहा।

"मैं चम्पालाल हूँ; राजा भगवानदास का नजदीकी।"

"बहुत खूब! आप लोग खुशी से दरबार की मेहमानी कबूल कर रहे हैं, इसके लिए आपका शुक्रिया अदा करता हूँ।"

एक अँगड़ाई लेकर विजयपाल उठ बैठा। पूर्व ओर के ऊँचे झरोखे से मन्द प्रकाश भीतर आ रहा था। जिससे ज्ञात होता था कि सूर्य अब आसमान पर कहीं न कहीं अवश्य है। दूसरी ओर का झरोखा अब भी अंधकार विकीर्ण कर रहा था। उसने मन ही मन दोनों झरोखों की उँचाई का अनुमान किया। उछलकर भी उन तक पहुँच सकना सम्भव न था। फिर एक कातर दृष्टि उसने उस लौह-द्वार पर डाली जो उसे इस गन्दी, मैली और मोटी-मोटी दीवालोंवाली कालकोठरी में बन्द किये था। हताश होकर उसने अपनी आँखें उधर से फेर लीं और कमरे के सामान को देखने लगा। एक पुराना आब-नूस का तख्त, जिस पर वह सोया था; एक तिपाई और एक सुराही; बस इतना ही सामान वहाँ था। अब उसकी दृष्टि दीवालों की ओर घूम गई। कुछ ऊँचाई पर दो-चार जालियाँ थीं, शायद हवा आने-जाने के लिए। प्रयास करने पर उन तक पहुँचा जा सकता था। दीवाल पर जगह-जगह लेख थे। शायद उन आत्माओं के जो अपने जीवन का कुछ भाग इस मनहूस कोठरी में बिता चुके थे और कोठरी की एकान्त नीरसता को बदलने के लिए जिन्होंने इन दिवालों को अपने हृदयों के उद्‌गार सौंप दिये थे। विजयपाल उठा और एक-एक लेख को पढ़कर अपना मन बहलाने का प्रयत्न करने लगा। कुछ लेख कोयले से लिखे गये थे, कुछ ईंट के टुकड़ों से। दो-एक जगह स्याही मायल लाल रङ्ग के भी कुछ लेख थे। लेखनोपयोगी सामग्री

के अभाव और लिखने की इच्छा के दवाव के कारण ही कैदियों ने जो सामग्री सुलभ हो सकी, उसी का उपयोग कर लिया था।

लेखों का विषय भी विभिन्न प्रकार का था जो एक ही जैसी परिस्थितियों के शिकार मानव की रुचि-विभिन्नता का परिचय दे रहा था। किसी ने भगवान् को याद किया था तो किसी ने अपनी प्रेयसी के नाम पर आँसुओं का अर्घ्य चढ़ाया था। किसी-किसी ने शासकों को भद्दी गालियाँ देते हुए उनके सर्वनाश की कामना की थी।

इस कोठरी में बन्द हुए उसे अभी एक रात ही बीती थी, फिर भी उसे ऐसा लगा कि मानो प्रकाश और जीवन के संसार से पृथक् हुए उसे एक जमाना बीत चुका है। खेदपूर्ण एकरसता का अनुभव अपने जीवन में उसने प्रथम बार किया था। उससे रहा न गया। उसने तख्त को खींचकर झरोखे के नीचे दीवाल के सहारे खड़ा किया और फिर तिपाई के सहारे उस पर चढ़कर झरोखे से बाहर की ओर देखने लगा।

जाड़े का मनहूस सवेरा था। धूप फैल रही थी। खेतों में पौधों पर पड़ी ओस सूरज के प्रकाश में झिलमिला रही थी। सड़क पर पथिक आ-जा रहे थे, मोटे-मोटे काले लबादों में यथासम्भव अपने को लपेटे, विस्मय और भयपूर्ण दृष्टियों के बादलगढ़ की ओर देखते। वे जैसे स्वयं को इन मोटी दीवालों से बाहर रखने के लिए भगवान् को मन ही मन धन्यवाद देते जा रहे थे।

इसी समय उसे ऐसा लगा मानो कोई उसकी कोठरी का भीतरी द्वार खोल रहा है। वह तुरन्त नीचे उतर आया और शीघ्रतापूर्वक तिपाई और तख्त को यथास्थान रखकर शान्ति के साथ प्रतीक्षा करने लगा। द्वार खुला और तीस-पैंतीस वर्ष की आयु का एक रोबीला युवक भीतर आया जो अपनी वेश-भूषा से कोई अधिकारी लगता था। आते ही उसने मुस्कराकर विजयपाल को अभिवादन किया और जेलदार के रूप में अपना परिचय दिया।

इस अप्रत्याशित सौजन्य और शिष्टाचार से विजय को कम आश्चर्य नहीं हुआ। उसने भी सज्जनोचित ढङ्ग से जेलदार के अभिवादन का उत्तर देते हुए उससे तख्त पर बैठ जाने की प्रार्थना की।

"मैं सिर्फ यह देखने आया हूँ कि आपको कोई खास तकलीफ तो नहीं है।" जेलदार ने सहज मुस्कराहट के साथ अपने आकस्मिक आगमन का कारण बतलाया।

"जी नहीं, आपकी कृपा है।" विजय ने भी उसी शिष्टता के साथ उत्तर दिया।

"आपकी तबीअत तो ठीक है न?" जेलदार ने दूसरा प्रश्न किया।

"जी, कोई खास परेशानी नहीं है।"

"आपके सोने लायक पलँग का इन्तजाम यहाँ नहीं हो सकता, इसके लिए मुझे बड़ा अफसोस है। हरामी मुन्तजिम यह भी ख्याल नहीं करते कि शाहजादों के लिए किस तरह के सरोसामान की जरूरत होती है। फिर भी हत्तुलइमकान मेरे तख्तों में जो तख्त सबसे अच्छा था, वही इस कोठरी में लगाया गया है। कम्बल भी नये हैं। इतमीनान रखिए कि इन कम्बलों को आपसे पहले किसी ने इस्तेमाल नहीं किया है। हाँ, कोठरी जरूर कुछ तंग है; और ज्यादा अच्छी भी नहीं है मगर फिर भी बादलगढ़ की सारी कोठरियों में यह सबसे ज्यादा साफ और हवादार है। दूसरी कोठरियाँ तो ऐसी सीलनभरी और बदबूदार हैं कि किसी रईसजादे को उनमें रखने की हिम्मत कम से कम मुझे नहीं हो सकती। मुझे भी खुदा के रूबरू जवाब देना होगा। यह कोठरी, जैसा कि कुछ दिन बाद आपको खुद मालूम हो जायगा, बादलगढ़ में बहिश्त मानी जाती है और खुदा न करे, अगर कभी मुल्ला पीर मोहम्मद को भी बादलगढ़ का मेहमान बनना पड़े तो उसके लिए भी इसी कोठरी में बिस्तरा लगाया जायेगा।"

कहकर जेलदार हँसने लगा। विजयपाल ने भी इस विनोद में उसका साथ दिया।

"यों आपकी मेहरबानी से मुझे कोई खास तकलीफ नहीं है, मगर अकेले रहने से जी ऊबता है। सबब यह है कि आज तक इस तरह तनहाई की जिन्दगी बसर करने का मौका नहीं आया। अगर पढ़ने-लिखने का कुछ सामान मिल सके तो वक्त काटने में आसानी होगी!" जेलदार के सौजन्य से साहस पाकर विजयपाल ने कहा।

"आपकी माँग मुनासिब है और इन्सानियत का तकाजा भी यही है कि खुदा के बन्दों को और कुछ नहीं तो पढ़ने-लिखने की नियामत से तो महरूम न रक्खा जाय; मगर देखता हूँ कि इन जङ्गलियों को इससे भी गुरेज है। खुदा जाने किस मसाले से बने हैं। अरे बाबा, गीता-भागवत और कुरानमजीद दे देने से क्या बिगड़ता है! मगर यहाँ इसकी भी सख्त मुमानियत है। फिर भी अगर आपकी यही मन्शा है तो मैं इसका कुछ न कुछ इन्तजाम करूँगा। आपको मालूम होना चाहिए कि मैं भी अपने बाल-बच्चों के साथ इसी परकोटे के भीतर रहता हूँ। मैं ऐसा इन्तजाम कर दूँगा कि आप वक्त-बे-वक्त मेरे गरीबखाने में आ-जा सकेंगे। यह मेरी खास रिआयत सिर्फ उन चन्द कैदियों के हक में है जिन्हें मैं खानदानी और शरीफ समझता हूँ। वहाँ आने-जाने से आपको मेरे बच्चों के साथ दिल बहलाने का मौका भी मिलेगा, और अपने हमजिन्सों के साथ गुफ्तगू और हँसी-दिल्लगी करके आप अपना गम भी गलत कर सकेंगे। मैं आपको यह भी बता देना चाहता हूँ कि मेरे गरीबखाने पर बहुत-सी किताबें आपको इधर-उधर बिखरी पड़ी मिलेंगी। आप उनमें से जिसको पसन्द करें, मेरी आँख बचाकर जेब में रक्खे चले आयें। मैं ऐसे मामलों में दीदओ दानिश्ता चश्मपोशी करने का आदी हूँ, इसलिए आपको ज्यादा तरद्दुद न करना पड़ेगा। फिर दूसरी मर्त्तबा जाने पर आप उस किताब को बदलकर उसी तरह दूसरी किताब ले आ सकते हैं।"

"बड़ी इनायत है। कलम-दावात और कागज का सवाल फिर भी रह जाता है। मैं कुछ शायरी करता हूँ और इसके लिए यह एक नादिर मौका है।"

"बेशक, कहा भी है—"चूँ मजामीं जमअ गरदद शायरी दुश्वार तेस्त* ।" और इस तखलिये को जिन्दगी में मजमूनों की कमी नहीं रहती। देखते नहीं हैं कि जब कुछ चारा नहीं रहता तब लोग कोठरी की दीवालों पर ही अपने जजबात जाहिर कर बैठते हैं। कुछ दिन पहले की बात है, सूरी खानदान के एक शाहजादे साहब यहाँ आकर मेहमान बने थे। शायरी का बलबला जो उठा तो उन्होंने अपनी उँगली में सुराही के खपड़े से शिगाफ लगा लिया और फिर उससे टपकते हुए खून से ही दीवालों पर लिख मारा। वह देखिए!"

कहकर जेलदार ने दीवाल पर लिखी स्याही माइल पंक्तियों की ओर इशारा कर दिया।"

"मेरा अन्दाज भी यही था।"

"तो आप इन सारी इबारतों को पढ़ चुके हैं। यह ठीक ही है। आपकी हालत में होने पर मैं भी ऐसा ही करता। खैर, आपके लिए कुछ न कुछ इन्तजाम करने की कोशिश करूँगा।"

"मैं आपका बहुत-बहुत मशकूर रहूँगा।"

"तो आप आज शाम को मेरे गरीबखाने पर तशरीफ लाइएगा?"

"बड़ी कृपा है। समझ में नहीं आता कि आपके इस प्रकार के उपकार का बदला किस तरह चुकाऊँगा। यदि मैं आजाद होता, और मेरे सामने मौत की सजा के अलावा कोई दूसरी चीज होती......।"

"सजाये मौत! यह आप क्या कह रहे हैं?" आश्चर्य के साथ जेलदार ने पूछा।

---

*भाव एकत्र हो जाने पर कविता करना कठिन नहीं होता।

"मैंने जो कुछ किया है उसके लिए इसके सिवा दूसरी सजा नहीं दी जा सकती।" उदासी के साथ विजयपाल ने उत्तर दिया।

"आपका ख्याल ठीक हो तब भी आप कुछ गलती कर रहे हैं। मौत कोई ऐसी सजा नहीं है जो इन्सान की ईजाद हो। वह तो अल्ला-ताला की खास रहमत है और हर कसोनाकस को आखिरकार उसका सामना करना पड़ता है; किसी को आज, किसी को अगले दिन; किसी को चार रोज बाद! जो दूसरों को मारकर यह समझते हैं कि वे खुद अमर हैं, उनसे बड़ा बेवकूफ और कौन होगा। इस तरह जब मौत एक ऐसी सजा है जो जरूर मिलेगी तब हमें उसकी ओर से बेफिक्र होकर दुनिया की रंगीनियों में लौलीन हो जाना चाहिए। 'जब मरना ही है तब उससे पहले कुछ देख सुन क्यों न लें!' यही तो शेख सादी का कौल है। खैर, तो मेरा अर्ज यह है कि शाम को अगर मैं इन्त-जाम कर सका तो जनाब को मेरे गरीबखाने पर तशरीफ लाने में कुछ एतराज तो न होगा!"

"हरगिज नहीं। आपकी इस इनायत के लिए हजार-हजार शुक्रिया।"

"मेहरबानी है!" कहकर जेलदार जिस द्वार से आया था, उसी से वापस हो गया।

उसके चले जाने पर विजय शान्तचित्त से अपने तख्त पर बैठ गया और उसकी बातों पर विचार करने लगा। बड़ा शिष्ट, मिलनसार और भलामानस है। लंका में हरिभक्त भी हो सकता है, इसकी कल्पना विजय को न थी। इस अप्रत्याशित सौजन्य से वह बहुत प्रभावित हुआ। पर कुछ ही देर बाद उसकी विचार-धारा ने दूसरी दिशा पकड़ी। कहीं इस सारी शिष्टता, समस्त सौजन्य और नम्रता के बीच कोई कपट तो नहीं छिपा हुआ है। बुद्धिमानों ने कहा है कि लाल-लाल आँखे निकालकर मारने के लिए तलवार उठानेवाले शत्रु से वह शत्रु अधिक भयंकर होता है जो हँसकर मिलता है। जेलदार की

चाल भी कुछ ऐसी ही तो नहीं है कि वह मुझे मीठी-मीठी बातों में फँसाकर, जीवन के सुख-भोगों का लालच देकर या मुझे अतिरिक्त सुविधायें देकर मेरे मन का रहस्य जान लेना चाहता हो। इस विचार के आते ही उसे रोमांच हो आया और उसने मन ही मन निश्चय कर लिया कि चाहे उसे तिल-तिल गलते हुए इसी कोठरी में जीवन समाप्त कर देना पड़े पर वह किसी प्रलोभन, किसी भय के आगे सिर न झुकायेगा और न अपने मित्रों के सम्बन्ध में किसी को कुछ बतलायेगा। उसका हृदय किसी अज्ञात आशंका, भय और सन्देह से भर गया। उसने सोचा लिखने-पढ़ने की सुविधा माँगकर उसने उचित नहीं किया। मन की विचित्र अवस्था होती है। पता नहीं कागज-कलम-दावात पास रहने पर कब क्या लिख जाय, जिससे शत्रु को हमारे षड्यन्त्र का कुछ सूत्र मिल जाय। नहीं, वह इन सुविधाओं को स्वीकार नहीं करेगा।

तुरन्त ही उसे अपने मित्रों का ध्यान आया जो आगरे की ओर टकटकी लगाये किसी शुभ सूचना की प्रतीक्षा कर रहे होंगे। उन्हें यह भी ज्ञात न होगा कि मैं यहाँ आकर किस संकट में पड़ गया हूँ। कहीं ऐसा न हो कि शत्रु उन्हें कुछ उलटी सीधी खबरें भेज दे जिनके आधार पर काम करके वे अपना सर्वनाश कर बैठें।

सबसे अन्त में उसे नन्दा का ध्यान आया। कैसे नाजुक मौके पर उसे नन्दा से अलग हो जाना पड़ा। इतना भी सुयोग न मिल सका कि नन्दा को स्वयं शेख साहब की गोद में सौंप सकता। बेचारी का क्या हुआ होगा। अवश्य ही वह गिरफ़ार करके फिर उसी मकान में, उसी औरत की सुपुर्दगी में, पहुँचा दी गई होगी। उसका हृदय अज्ञात वेदना से भर गया, अपने लिए कम; नन्दा के लिए अधिक। निष्क्रिय-क्रोध के आवेश में उसने अपने दोनों हाथ तख्त पर दे मारे और फिर शरीर को ढीला छोड़कर एक ओर को गिर पड़ा, मानो उसकी चेतना जवाब दे गई हो।

परन्तु इस अर्द्ध विक्षिप्त मनोदशा में अधिक काल तक रह सकना विजयपाल के लिए संभव न हो सका। द्वार खुलने का फिर शब्द हुआ। पर इस बार आनेवाला जेलदार नहीं था। वह कोई ऊँचा अधिकारी था जिसके चेहरे से पदगौरव, अभिमान और रोब प्रकट हो रहे थे। उसे भीतर आते देख विजयपाल उठकर खड़ा हो गया। उसके पीछे एक मुन्शी भी भीतर आया जिसके हाथ में एक बस्ता था। उसके बाद दस सशस्त्र सिपाही आए। उन्हें देखकर विजयपाल मन ही मन जगदम्बा का ध्यान करने लगा।

आते ही आते अधिकारी ने प्रश्नों की झड़ी लगा दी। पर विजयपाल ने किसी प्रश्न का उत्तर न दिया। उसने केवल यही कहा कि मैं सर्वथा निर्दोष हूँ, और मुझे यह भी नहीं मालूम कि किस अपराध के फलस्वरूप मुझे पकड़कर यहाँ बन्द कर दिया गया है। विजयपाल के इस उत्तर पर अधिकारी ने ऐसा भाव प्रदर्शित किया मानो उसे बहुत क्रोध आ गया है। उसकी चढ़ी भवें देखकर विजयपाल अपनी हँसी न रोक सका। इस पर अधिकारी और भी आपे से बाहर हो गया और बोला—"तुम खानखानाँ की हत्या करना चाहते थे?"

"यह तुमने कैसे जाना?" विजय ने उलटकर प्रश्न किया।

"किसी तरह जाना, पर यह सच है न?"

"जब तुम्हें सब कुछ मालूम है, तब मुझसे क्यों पूछते हो!"

"मैं मजाक़ नहीं करता।" अधिकारी ने कुछ अप्रतिभ होकर कहा।

"मेरा भी इरादा ऐसा नहीं है।"

"मगर इस तरह की बातों से आपको कुछ फायदा न होगा!"

"तब क्या आपकी राय में मेरा फायदा उन सब बातों को कबूल कर लेने से होगा, जो आप मुझसे कबूल करवाना चाहते हैं।"

"असलियत मुझसे छिपी नहीं है। इसलिए सच बात छिपाने से कुछ फायदा न होगा।"

"उस हालत में मेरा जवाब यही है कि जब आप मुझसे ज्यादा जानकारी रखते हैं, तब मुझसे पूछने में क्या लाभ ?"

"ठीक कहते हो। मुझे तुम्हारे और तुम्हारे साथियों के बारे में सभी कुछ मालूम है।" झुँझलाहट के साथ सिर हिलाते हुए अधिकारी ने कहा।

विजय ने कुछ उत्तर नहीं दिया।

"मैं सिर्फ तफसीलवार हर एक बात जानना चाहता हूँ। इसी लिए तुमको तकलीफ़ दे रहा हूँ।"

"आपके खुफियानवीस पूरी-पूरी तफसील दे सकेंगे और इस हद तक कि उसके बारे में खुद मुझे भी कुछ कम ताज्जुब न होगा।"

"हूँ, अच्छा; अगर मैं सरदार कुशलपाल की बाबत कुछ पूछूँ तो आप क्या जवाब देंगे ?"

"यही कि जो गलती मेरे साथ हुई है, वही शायद उनके साथ भी हुई होगी।"

"ओ हो! तब आप शायद सरदार कुशलपाल साहब को जानते हैं।"

"मैं उनको केवल एक मित्र के रूप में जानता हूँ जो मुझे सीकरी की सैर करानेवाले थे।"

"जी हाँ, सीकरी के हर मुकाम की, यही न! और यहाँ के खास-खास बाशिन्दों की भी!"

"इससे कुछ छिपा नहीं है।" विजय ने मन ही मन सोचा।

"क्या मेरे इस सवाल का भी कोई जवाब आपके पास है ?" आँखें घुमाते हुए अधिकारी ने पूछा।

"जी, मैं आपके प्रश्न को ठीक से समझ नहीं पाया; नहीं तो कुछ न कुछ उत्तर जरूर देता।"

"शेख कमाल बियाबानी से तो आप जरूर मिले होंगे ?"

"जी, सरदार कुशलपाल ने उनसे मेरी भेंट कराई थी। उन्होंने मुझे शेख साहब का परिचय भी दिया था और कहा था कि उत्तरी हिन्दुस्तान के पहुँचे हुए फकीरों में शेख साहब का विशेष स्थान है।"

"सरदार साहब के साथ आपकी और क्या-क्या बातें हुई थीं?"

"आपके खुफियानवीसों को सब कुछ मालूम होगा। उन्हीं से पूछना ठीक रहेगा।"

"इस तरह हीलेहवाले करने से कोई फायदा नहीं। उनसे सब कुछ पूछा जा चुका है और उसके बाद आपसे पूछा जा रहा है।"

विजय के शरीर में ऊपर से नीचे तक कंपन हुआ। बड़ी कठिनता से वह अपने को सँभाल पाया। उसके भावों का यह आकस्मिक परिवर्तन प्रश्नकर्त्ता से छिपा न रह सका। अतः उसने विजय के मर्मस्थल को स्पर्श करने का प्रयत्न करते हुए पूछा—"क्या आप सरदार साहब से मिलना चाहते हैं?"

"इस समय तुम्हारे हाथ में हूँ; जहाँ ले जाओगे, वहाँ जाऊँगा; जिससे मिलाना चाहोगे, उसके मिलूँगा।" कुढ़ते हुए विजय ने उत्तर दिया। साथ ही उसने मन ही मन निश्चय कर लिया कि यदि उसे कुशलपाल से मिलाया गया तो वह कम से कम उसके मुँह पर थूक अवश्य देगा।

"अच्छी बात है। आप सब कुछ समझते हैं। आप शायद यह भी जानते होंगे कि मुझे यह भी मजाज है कि अपने सवालों का जवाब आपसे जिस तरह चाहूँ, उस तरह हासिल करूँ। मेरा मतलब यह है कि मैं आसामी से 'मामूली' और 'गैर मामूली' दोनों तरीकों से जवाब ले सकता हूँ।" 'मामूली' और 'गैर मामूली' शब्दों पर जोर देते हुए अधिकारी ने कहा।

विजय का सारा शरीर पसीने से भीग गया। उसने सुन रक्खा था कि असामियों से अपराध स्वीकृत करने के जो तरीके बादलगढ़ में प्रचलित हैं, वे अत्यन्त अमानुषिक हैं। उनकी अपेक्षा मृत्यु का

सामना कहीं अधिक सुखकर है। क्योंकि उन तरीकों में अपराधियों को मरणान्तक कष्ट तो होता ही है, प्रायः उनका अंगभंग भी हो जाता है; जिससे उनका सारा जीवन बेकार हो जाता है।

"कोई है!" अधिकारी ने उच्च स्वर से पुकारा।

दो सिपाही आकर सामने हाजिर हो गये।

"आप शरीफ खानदान के शाहजादे हैं और 'मामूली' और 'गैर मामूली' सवालों का जवाब देने में आपको कोई एतराज नहीं है। आपको उधर ले चलिए।" अधिकारी ने आदेश दिया।

'जिस भयानक क्षण की कल्पना कर रहा था, वह आ पहुँचा। 'मा शक्ति, मुझे साहस दे!' विजय ने मन ही मन कहा। इसके बाद वह उठकर खड़ा हो गया और अधिकारी के संकेत पर चुपचाप दोनों सिपाहियों के पीछे चल दिया। उसकी इस प्रकार की दृढ़ता पर अधिकारी को आश्चर्य नहीं हुआ।

गलियारा, एक गुम्बद, फिर एक गलियारा पार करके सिपाहियों के पीछे-पीछे विजयपाल एक ऐसे गुम्बद के नीचे पहुँचा जिसमें नीचे की ओर जाने के लिए पत्थर की सीढ़ियाँ बनी थीं। 'हबस का यही मार्ग है' विजयपाल ने सोचा। एक बार मन ही मन फिर शक्ति का ध्यान करके वह स्थिर चरणों से नीचे उतरने लगा।

आठ-दस सीढ़ियाँ उतरने के बाद उसे फिर एक गलियारे से चलना पड़ा जिसके दोनों ओर छोटी-छोटी कई कोठरियाँ एक कतार में बनी हुई थीं। इन भूगर्भगृहों के द्वार लोहे की मोटी-मोटी छड़ों से बने थे जिससे गलियारे में आनेवाले नाम-मात्र प्रकाश की कुछ झलक उनके अभागे निवासियों को भी मिल सके। लगभग प्रत्येक कोठरी से कराहने की मर्मभेदी ध्वनि आ रही थी जो विजयपाल के हृदय को हिला देने के लिए काफी थी।

'भगवान् को याद करो, पंथी!' एक कोठरी से आवाज आई जो

शायद विजयपाल को लक्ष्य कर कही गई थी। विजयपाल ने उस पर ध्यान नहीं दिया।

'राम-राम सत्य है!' दूसरी कोठरी में पड़े कैदी ने आर्त्तस्वर से पुकारा। विजयपाल कुछ ठिठका। फिर आगे बढ़ा।

'सत्य बोलो मुक्ति है!' एक और कोठरी से किसी ने कहा। विजयपाल ने मन ही मन निश्चय किया कि वह सत्य पर दृढ़ रहेगा।

सब लोग कुछ दूर और आगे बढ़े। अब वे एक ऐसे कमरे के पास पहुँच गये थे जिसमें प्रकाश अपेक्षाकृत कुछ अधिक था। यह प्रकाश कमरे की छत में लगे चार बड़े-बड़े रोशनदानों से आ रहा था।

"यहीं ठहर जाइए।" सिपाहियों में से एक ने कहा। विजय खड़ा हो गया। उसने एक बार अन्वेषक की दृष्टि से उस काल-कोठरी को देखा। दीवालों में लोहे की कई खूँटियाँ गड़ी थीं जिन पर कहीं जंजीर लटक रही थी, कहीं लोहे की चलनी जैसी कोई चीज। फर्श पर भी कई विचित्र-विचित्र वस्तुएँ रक्खी थीं जिन्हें इससे पहले उसने कभी नहीं देखा था।

"यह देखिए!" एक काठ की चौकी की ओर संकेत करते हुए अधिकारी ने कहा। चौकी लगभग दो हाथ ऊँची थी। उसके एक सिरे पर लोहे का एक मोटा कड़ा लगा था। दूसरे सिरे पर बराबर में वैसे ही दो कड़े लगे थे जो अपेक्षाकृत कुछ छोटे थे। ये कड़े एक प्रकार के शिकंजे थे जिनकी गोलाई को आवश्यकतानुसार घटाने-बढ़ाने के लिए चूड़ीदार चाबियाँ थीं।

"आसामी को इस चौकी पर लिटाते हैं। बड़े कड़े में गर्दन फँसा दी जाती है और उन दोनों छोटे कड़ों में दोनों टाँगें, जिससे वह इधर-उधर हिल-डुल नहीं सकता। इसके बाद यह पच्चर धीरे-धीरे ठोंक-कर चौकी और उसकी पीठ के बीच में बढ़ाई जाती है जिससे उसका पेट ऊँचा उठना शुरू होता है। पच्चर कितनी बढ़ाई जाय, इसका फैसला आसामी की हालत पर मुनहसर करता है।

कुछ आसामी एक-दो ठोंक लगने के बाद ही सवालों का ठीक-ठीक जवाब देने लगते हैं, इसलिये उनसे ज्यादा छेड़-छाड़ नहीं की जाती। पर कुछ ऐसे भी होते हैं जो आधी पच्चर टोंक दिए जाने पर ही पते की बात बतलाते हैं। कुछ असामी उनसे भी सख्त होते हैं। हालाँकि ऐसे असामी अपने दो साल के वक्त में मुझे दो ही मिले हैं जिनके नीचे पूरी पच्चर चला देनी पड़ी, और फिर उसी हालत में उन्हें दो-तीन पहर रहने दिया गया तब कहीं जाकर उनके दिमाग ठीक हुए। मगर इस चौकी का काम सिर्फ इतना ही नहीं है। पूरी पच्चर चले जाने के बाद भी असामी अगर अपनी जिद न छोड़े तो उस चिलमची के जरिये उसके पेट में मुँह के रास्ते पानी पहुँचाया जाता है। पानी की तादाद एक से लेकर दस बारह चिलमचियों तक हो सकती है। जब असामी अपना मुँह बन्द कर लेता है और पानी नहीं पीना चाहता तब उसकी नाक को काठ की इस चुटकी से बन्द कर देते हैं। मजबूर होकर साँस लेने के लिए वह ज्यों-ज्यों मुँह खोलता है, पानी उसके मुँह में उँडेल दिया जाता है, यहाँ तक कि उसका पेट फूलकर नगाड़ा हो जाता है। पर ऐसा शायद ही कोई असामी पसन्द करता है। क्योंकि उस हालत में पहुँचने के बाद जो असामी जवाब देते हैं, वे अपनी सेहत से हमेशा के लिए हाथ धो बैठते हैं। उनकी आँतें खराब हो जाती हैं और फिर उनके लिए पानी तक हजम करना मुमकिन नहीं होता।"

विजयपाल शान्ति के साथ सारी कहानी सुनता रहा। यंत्रणा के विभिन्न प्रकारों का विवरण अभी पूरा नहीं हुआ था।

"यहाँ की यह सबसे हलकी सजा है जिसे सिर्फ 'मामूली' सवालों का जवाब पाने के लिए इस्तेमाल किया जाता है। 'गैर-मामूली' सवालों के लिए दूसरे तरीके से काम लिया जाता है। इधर देखिए।" एक दूसरे यन्त्र की ओर संकेत करते हुए अधिकारी ने कहा—"इस तख्त के छेदों में असामी की दोनों टाँगें फँसा दी जाती हैं और फिर

नीचे उनमें बेड़ियाँ पहना दी जाती हैं। इसके बाद दोनों हाथ इस लट्ठे के दोनों ओर करके ऊपर हथकड़ियों से बाँध दिये जाते हैं। इस तरह जब ऊपर को बाहें और नीचे को टाँगें किये हुए असामी जमकर तख्त पर बैठ जाता है तब इस खुरहरे से धीरे-धीरे उसकी पीठ की खाल साफ करते हैं। इसके बाद साफ की गई जगह पर नमक मिले पानी का पुचारा बार-बार फेरते हैं। जो असामी ज्यादा हठीले होते हैं, उनके साथ यह कार्रवाई पहर दो पहर तक जारी रक्खी जाती है। इससे खाल के बाद उनकी पीठ का गोश्त भी छिल जाता है। इस सजा में इतनी ज्यादा तकलीफ होती है कि कैदी कुछ ही देर बाद अकसर बेहोश हो जाता है। ऐसा होने पर उसे होश में लाने के लिए आँखों में पिसी हुई मिर्च लगा देते हैं, या लखलखा सुँघाकर उसे बार-बार होश में लाना पड़ता है।

"इस तरकीब में भी कामयाबी न मिलने पर एक तीसरी तरकीब से काम लेना पड़ता है। यह देखिए," कहकर अधिकारी ने कुछ पतली फाँसें दिखलाईं जो बाँस से बनी थीं। उसके बाद कहा—"इन्हें इस्तेमाल करने का तरीका यह है कि आसामी के दोनों हाथ इस तख्ते के छेदों में से दूसरी ओर को निकाल दिये जाते हैं। इसके बाद उनमें हथकड़ियाँ डाल देते हैं जिससे असामी हाथ वापस नहीं खींच सकता। काम को सहूलियत के लिए एक तिपाई पर दोनों हाथ जुड़े हुए इस तरह रखाये जाते हैं कि अँगुलियाँ खुली रहें। फिर इनमें से एक फाँस एक अँगुली के नाखून में धीरे-धीरे ठोंकी जाती है। जब इससे भी काम नहीं चलता तब दूसरी अँगुली में फाँस ठोंकी जाती है। इस तरह कभी-कभी दसों अँगुलियों के नाखूनों में फाँसें ठोंकना जरूरी हो जाता है। कहने की जरूरत नहीं, कि इस सजा में इतनी तकलीफ होती है कि अकसर असामी पहली फाँस ठोंकने के वक्त ही पखाना-पेशाब कर देते हैं।"

"बस-बस, इतना काफी है। अब ज्यादा तशरीह की जरूरत नहीं।

क्योंकि इस तरह तकलीफों की व्याख्या करने से वे और भी ज्यादा भयानक बन जाती हैं। पर यदि आपका मतलब यह हो कि इन तकलीफों में से मैं अपने पसन्द की एक चुन लूँ तो चुनाव का यह अधिकार मैं आप पर छोड़ता हूँ। आप मेरे लिए जो तरकीब मुनासिब समझें, करें। यदि मुझ पर मेहरबानी करना चाहते हों तो ऐसी सजा चुनें जिससे मेरे प्राण जल्द ही निकल जायँ और मुझे बहुत देर तक कष्ट का अनुभव न करना पड़े।" विजय ने सूखे मुँह से उत्तर दिया।

"तब मुनासिब यही है कि आप मेरे सवालों का ठीक-ठीक जवाब दे दें। उस हालत में आपको किसी तकलीफ का सामना नहीं करना पड़ेगा।"

"जब आपके सवालों की बाबत मुझे कुछ मालूम ही नहीं है तब मैं जवाब क्या दूँ?" विजय ने दृढ़ता से उत्तर दिया। यह सुन अधिकारी भी मन ही मन उसकी प्रशंसा करने लगा। फिर उसने कहा—"इस तरह लड़कपन दिखाना ठीक नहीं है। तकलीफें आखिर तकलीफें हैं और जब उनका सामना करना पड़ता है तब रोते धोते असामी भेद की सारी बातें बतला जाता है।"

"आजमा देखिए न।" विजय ने फिर सूखे मुँह से कह दिया।

"अब भी वक्त है, और मैं चाहता हूँ कि आपके साथ मुझे सख्त कार्रवाई न करनी पड़े।" अधिकारी ने फिर समझाया।

"सुनिए। मैंने यह निश्चय कर लिया है कि जब आप मुझे यातना देने के लिए किसी शिकंजे में कसेंगे तब मैं अपनी साँस रोक लूँगा। और इस तरह स्वयं अपनी जान दे दूँगा। आपकी सारी कोशिशें बेकार जायँगी। अब आप ही सोचिए कि जब मैं उन यंत्रणाओं की परवाह नहीं करता, तब आपकी धमकियों से क्योंकर डर सकता हूँ।" विजय ने कुछ रुखाई और दृढ़ता का प्रदर्शन करते हुए कहा।

"अच्छी बात है।" कहकर अधिकारी ने दो जल्लादों को संकेत किया। उनके पास पहुँचते ही विजय में मानो दैवी स्फूर्ति आ गई और उसने अपना अँगरखा उतारकर एक ओर रख दिया और 'अग्निपरीक्षा' के लिए तैयार हो गया। जल्लाद विजय का हाथ पकड़-कर चौकी के पास ले गये।

"पानी ?" एक जल्लाद ने प्रश्न किया।

"हाँ, वहीं से शुरू करो।" अधिकारी ने आज्ञा दी।

विजय की गर्दन और दोनों टाँगें लोहे के कड़ों में फँसा दी गईं। इसके बाद चूड़ियों से कड़ों को धीरे-धीरे कस दिया गया। यहाँ तक कि विजय के लिए ग्रीवा और टाँगों को जरा सा भी हिलाना-डुलाना असंभव हो गया। इसके बाद पच्चरवाला तख्ता और काठ का मोंगरा लाकर चौकी पर रक्खे गये। फिर नाक दबानेवाली चुटकी लाकर रक्खी गई। फिर चिलमचियाँ पानी से भर गईं और एक एक करके धीरे-धीरे लाकर चौकी के पास रक्खी गईं।"

विजय की दृष्टि इस समय ऊपर की ओर थी। फिर भी सामान के उठाने और रखने के शब्द से यह अनुमान कर लेना उसके लिए कठिन न था कि कब क्या लाया जा रहा है। वह धैर्य के साथ आगामी विपत्ति को सहन करने के लिए अपने हृदय को तैयार कर रहा था। एक-एक क्षण का विलम्ब उसे युगों जैसा लम्बा लग रहा था।

सब सामान यथास्थान सजाकर जल्लादों ने आज्ञा के लिए एक बार अधिकारी की ओर देखा। विजय ने समझ लिया कि परीक्षा का वह क्षण अब पास आ गया है जिसके स्वागत की तैयारी वह पिछले कई महीनों से कर रहा था।

"छोड़ दो।" अधिकारी ने आज्ञा दी।

जल्लादों ने शिकंजे खोल दिये। विजय उठकर बैठ गया।

"इसे इसकी कोठरी में पहुँचा दो।" अधिकारी ने दूसरी आज्ञा दी।

विजय चुपचाप उठा और अपने वस्त्र ठीक करके सिपाहियों के पीछे-पीछे चल दिया। जब वह भकसियों के पास से जा रहा था, एक कैदी ने कहा—"मालूम पड़ता है, मुखबिर बन गया है।"

"तभी चिकना-चन्दा जा रहा है, हरामी!" दूसरे ने उसका समर्थन किया।

विजय ने इस धिक्कार का कोई उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप अपनी कोठरी में पहुँचकर तख्त पर लेट रहा।

विजय की समझ में नहीं आया कि अधिकारी ने उसे इतनी आसानी से क्यों छोड़ दिया और उस पर आनेवाली विपत्ति सहसा कैसे टल गई। फिर भी उसने मन ही मन ईश्वर को बारंबार धन्यवाद दिया। साथ ही उसे यह विचार भी आया कि शायद मेरे विरुद्ध उन लोगों के पास काफी सबूत हैं जो विश्वासयोग्य हैं। इसी लिए मेरी अपराध-स्वीकृति विशेष आवश्यक नहीं समझी गई। सम्भवतः वे मेरे अपराधों पर विचार करेंगे और फिर एक बार ही मुझे मौत की सजा की आज्ञा दे देंगे।

बादलगढ़ की नारकीय झाँकी का एक विपरीत प्रभाव भी उसके मस्तिष्क पर पड़ा। उसे यह देखने का पूरा अवसर मिल गया कि अन्य कैदी यहाँ किस प्रकार और कैसी कोठरियों में रक्खे जाते हैं। उन अँधेरी, सीलन भरी और दुर्गन्धपूर्ण कोठरियों से अपनी कोठरी उसे सैकड़ों गुना अच्छी और साफ दिखाई दी और उसकी समझ में जेलदार के उन शब्दों का अभिप्राय ठीक-ठीक आ गया कि यह कोठरी बादलगढ़ में बहिश्त समझी जाती है।

कोठरी का नाममात्र प्रकाश अब फीका होने लगा। विजय ने समझ लिया कि अब संध्या होने में देर नहीं है। तख्त पर चढ़कर जँगले से बाहर झाँकने का विचार एक बार फिर उसके मन में आया। पर वह उठने ही वाला था कि भीतर का द्वार खुल गया और एक
ने आकर शिष्टतापूर्वक सूचना दी कि जेलदार साहब अपने

उसे याद कर रहे हैं। बिना आगा-पीछा किये वह उठा और सिपाही के पीछे-पीछे हो लिया। कुछ गलियारों, बरामदों और सहनों को पार करता हुआ वह एक बारहदरी जैसे कमरे में पहुँचा। उससे सटा हुआ ही एक बड़ा-सा मकान था। बारहदरी में बराबर-बराबर कई छोटे-छोटे तख्त बिछे हुए थे। शायद यह जेलदार की चौपाल थी। विजय से वहीं ठहरने को कहकर सिपाही मकान की ओर चला गया।

कुछ ही देर बाद जेलदार अपनी सज्जनतापूर्ण स्वाभाविक मुस्कान के साथ आता दिखाई दिया। उसने आते ही शिष्टाचार के साथ पहले विजय को अभिवादन किया, फिर बोला—"आपसे पेश्तर ही एक अर्ज करना चाहता हूँ।"

"क्या?" विजय ने कुछ चौकन्ना होते हुए पूछा।

"आप वचन दें कि जब तब यहाँ रहेंगे, भागने की कोशिश नहीं करेंगे।"

"मेरे कह देने भर से आपको इतमीनान हो जायगा?"

"शरीफ की बात ही बहुत कुछ होती है।"

"मैं वचन देता हूँ।"

प्रसन्नता के आवेश में जेलदार ने विजयपाल का हाथ पकड़ लिया और उसे अपने मकान के भीतर एक सुसज्जित कमरे में ले गया जहाँ तीन व्यक्ति पहले से ही बैठे हुए थे।

"आप कन्नौज के सरदार विजयपाल जी हैं। अभी पिछले दिन से ही आप हमारे मेहमान हुए हैं।" उपस्थित व्यक्तियों को विजयपाल का परिचय देते हुए जेलदार ने कहा। इसके पश्चात् उसने विजयपाल को उपस्थित लोगों का परिचय कराया—

"शाह अब्बुल मुआली—आप तैमूरी अमीरों के पेशवा हैं। आप पर खानखानाँ की खास मेहरबानी है और इसी सबब आजकल हमें मशकूर फर्मा रहे हैं।" विजयपाल ने शाह को शिष्टता के साथ अभिवादन किया।

"अमजद खाँ—मालवा के सरदार वाजिद खाँ उर्फ बाजबहादुर के शाहजादे। आप अपने वालिद मरहूम की तरह की दरियादिल और नेक मिजाज हैं।"

"नवाब बाजबहादुर चाचा जी के घनिष्ठ मित्रों में थे।" कहकर विजयपाल ने नम्रता के साथ खाँ को अभिवादन किया।

"हुसेन मिर्जा, अहमदाबाद के सूबेदार—आपने इस आधी उम्र में ही जमाने के ऐसे-ऐसे रंग देखे हैं कि बस तोबा है।"

विजयपाल ने उसे भी अभिवादन किया।

इसके बाद सब यथास्थान बैठ गये और सबके सामने एक छोटी-सी चौकी पर जेलदार बैठ गया। विजयपाल ने बैरम खाँ के प्रताप-सूर्य से पराभूत इन नक्षत्रों को एक-एक करके ध्यान से देखा। एक अज्ञात-पूर्ण संवेदना से उसका हृदय भर गया। साथ ही इस विचार से कि वह अकेला नहीं है, उसके हृदय को बहुत कुछ सान्त्वना भी मिली। बादलगढ़ में ऐसे-ऐसे न जाने कितने जीव हैं जो प्रतिष्ठा, कुल-गौरव और भाग्य में उससे किसी प्रकार कम नहीं हैं। साथ ही उसी की भाँति आज एक निराश्रित और विचाराधीन कैदी का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इन महान् व्यक्तियों की मौजूदगी में वह अपने को बहुत कुछ भूल सा गया। इस परिचय के लिए मन ही मन उसने जेलदार को बार-बार धन्यवाद दिया।

"आज खूबानी की बारी है न, खाँ साहब?" अमजद खाँ की ओर देखकर जेलदार ने कुछ मुस्कराते हुए पूछा।

"जो मर्जी!" अमजद खाँ ने भी सहज मुस्कराहट के साथ उत्तर दे ही दिया।

"सीकरी के प्याले अपनी जुदागाना अहमियत रखते हैं।"—हुसेन मिर्जा ने विजयपाल की ओर देखते हुए टिप्पणी की।

"यह हमारे जेलदार साहब की खास इनायत है, कि हमें कैद में

भी ये नायाब चीजें मुअस्सिर हो जाती हैं।" शाह ने सहज भाव से अपनी कृतज्ञता धन्यवाद के रूप में निवेदित की।

जेलदार ने कहार को प्याले लाने का आदेश किया। फिर कहा—"खुदा की यह खास मेहरबानी है कि उनने मुझे जेलदार बना कर भेजा है, मीर अद्‌ल बनाकर नहीं। इसी लिए मैं जानता हूँ कि बहादुर जवान क्या चाहते हैं और उनके साथ कैसा बर्त्ताव होना चाहिए। यह बात दूसरी है कि आप लोगों के सय्यासी खयालात मेरे खयालात से मेल न खायँ। वह मामला हर एक के जाती नशेब-व-फराज से तअल्लुक रखता है, पर जहाँ तक इन्सानियत और शराफत का तकाजा है हम लोग एक हैं। और अगर गौर किया जाय तो मैं भी आप लोगों की तरह एक कैदी हूँ। आप लोगों की तरह मैं भी बाहर की फिजा देखने से महरूम हूँ और इन मोटी-मोटी दीवालों में बन्द होकर आप लोगों के बीच मुझे भी जिन्दगी गुजारनी पड़ रही है।"

"बड़ी हौलनाक जगह है बादलगढ़, चीख-पुकार, आह-कराह, हथकड़ियाँ-बेड़ियाँ, तनहाई, गुलामी—तोबा है!" मिर्जा ने लम्बे कुरते की आस्तीनों को कुछ ऊपर समेटते हुए कहा।

"कोफ्ता तैयार है। इजाजत हो तो हाजिर किया जाय?" जेलदार ने वार्त्तालाप को बदलने के लिए निवेदन किया।

"जरूर जरूर! वह तो आपके बावर्चीखाने का खास तोहफा है। खुदा जाने, ऐसा नायाब कोफ्ता तो कहीं खाने को ही नहीं मिला।" मिर्जा ने प्रशंसा करते हुए कहा।

"और मैं तो खुदा का शुक्रिया अदा करता हूँ कि उसने मुझे यहाँ भेजा। नहीं तो ऐसी नायाब चीज कहाँ मिलती! सचमुच आपका बावर्ची यह चीज बहुत अच्छा बनाता है। मेरा बावर्ची भी होशियार था, मगर कोफ्ता ऐसा अच्छा उससे भी न बनता था।

"हाँ, और दूसरी चीजें अलबत्ता वह लाजवाब बनाता था। मैं जहाँपनाह से शिकायत करूँगा कि उस कमबख्त को भी मेरे साथ

बादलगढ़ क्यों नहीं भेजा गया।" अमजद खाँ ने बेतकल्लुफी के साथ कहा। इस घरेलू बातचीत ने वातावरण में एक विशेष प्रकार की सजीवता उत्पन्न कर दी।

"हाँ, एक बात कहना तो भूल ही गया। शीराजी भी आ पहुँची है। नया चालान सीधा खुरासान से चला आ रहा है।" जेलदार ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा।

"मरहबा, मरहबा! यह बात तो बड़े मौके की रही और काबिले इनाम भी।" मिर्जा ने लगभग उछलते हुए कहा।

अदब के साथ सलाम करते हुए जेलदार ने दरबारी ढंग से इस प्रशंसा का जवाब दिया। फिर कहा—"कोफ्ता के साथ ही साथ उसे भी मँगवा रहा हूँ।"

"शीराजी बस शीराजी है,"—डाढ़ी पर हाथ फेरते हुए शाह ने कहा—"पहले-पहल इसे चखने का मौका शाह तहमस्त के दस्तरखान पर हुआ था जब कि उन्नत आशियानी के हमराह हम लोग गुरबत में थे और खुरासान में शाह के मेहमान थे। बादशाह को वह शराब खास तौर से पसन्द आई थी और उन्होंने उसकी बहुत तारीफ की थी। जब हम लोग फारिस से हिन्दुस्तान की जानिब चले तब शाह तहमास्प ने और तोहफों के साथ चार कण्टर शीराजी के भी रख दिये थे। और तब से तुर्कमान अमीरों के शौक की वह खास चीज बन गई है। खुद मेरी ही बात लीजिए, जब तक गरीबखाने पर था और उन्नत आशियानी* की परवरिश थी, दस प्याले से कम कभी न लेता था। और दावतों के मौकों पर तो बीस प्याले खाली कर देना मामूली बात थी। फारस की एक दावत का जिक्र है। शाह की बहन शाहजादा सुलतानालम ने हमारे सजाज में दावत दी थी। शाही हरम की लड़कियाँ कारचोबी

*जन्नत आशियानी—स्वर्गीय; बादशाह हुमायूँ से मतलब है।

के लिबास में सजी हुई खाना परोस रही थीं। एक हूर शीराजी लेकर आई। बादशाह ने मेरी ओर देखकर इशारा किया। बस जनाब, उसे रोक रखने की नीयत से पीना जो शुरू किया तो अकेले ही दो शीशे खाली कर गया। और वह माहेरू थी कि बस उँडेलती जाती थी और मुस्कान की बिजलियाँ गिराती जाती थी।" शाह ने आपबीती सुनाई।

इसी बीच नौकर ने आकर सुराही और प्याले सजा दिये और एक तरफ कीमे की तश्तरियाँ भी।

"साकी का फर्ज मुझे मरहमत हो।" कहकर जेलदार ने सुराही से प्याले में शराब उँडेली और सबसे पहले शाह के सामने पेश की।

"बिस्मिल्लाह!" कहकर शाह ने प्याला हाथ में लिया और कृतज्ञता तथा स्नेह-मिश्रित दृष्टि से जेलदार की ओर देखा। फिर कहा—"मियाँ साकी, यह तुम्हारी इनायत है कि रात को आज सोना नसीब होगा। वर्ना बादलगढ़ में तो मेरे लिए जैसा दिन वैसी रात।"

"बल्कि यों कहिए कि रात दिन से ज्यादा बदतर है,"—मिर्जा ने. कहा—"वह वह आवाजें होती हैं कि खुदा की पनाह! पलक लगाना हराम हो जाता है।"

"इसमें मेरा कसूर नहीं है। यह सब आप लोग ही करते हैं।" जेलदार ने अपनी सफाई दी।

"आप कैसे दूर-दूर बैठे हैं?" विजयपाल की ओर प्याला बढ़ाते हुए खाँ ने कहा।

"माफ कीजिए! मुझे आप लोगों की दोस्ताना बातचीत में ही ज्यादा लुत्फ आ रहा है।" विजय ने हाथ खींचकर कहा।

"या आप बैठे-बैठे किसी दूसरी दुनिया का ख्वाब देख रहें हैं?" मिर्जा ने दूसरा प्याला चढ़ाते हुए कहा।

"उम्र ही ऐसी है। इस उम्र में तो ख्वाब देखने का शैतान सवार होता ही है। अरे मियाँ साकी, थोड़ा शर्बत तो मिलाओ इसमें; यह

तो बुरी तरह गला पकड़ रही है।" शाह ने प्याला जेलदार की ओर बढ़ाते हुए कहा।

विजयपाल कुछ उद्विग्न हो उठा।

"सिन रसीदा होने पर भी शाह साहब अभी नौजवान का दिल रखते हैं।" मिर्जा ने कटाक्ष किया।

"बालों से मेरी उम्र का अन्दाजा लगाने का जुल्म आप साहबान न करें! अभी बुढ़ापा बाल पर है।" शाह ने परिहास किया।

"बैरम खाँ का क्या हालचाल है! सुनते हैं माहम अतका से उसकी बिगड़ गई है और वह जहाँपनाह के कान भर रही है?" तीसरे प्याले को होंठों से छुआते हुए खाँ ने कहा।

"सरकार के मामले पर गुफ्तगू करने से माफी चाहता हूँ।" जेलदार ने आपत्ति की।

"अच्छा सरदार विजयपाल जी; तब आप अपनी महबूबा का किस्सा सुनाइए। इसमें किसी को एतराज न होगा।" नशे के हलके सुरूर में मिर्जा ने कहा।

. विजयपाल कुढ़ गया; फिर भी चुपचाप बैठा रहा। उसे चुप देखकर शाह ने कहा—"अरे मियाँ जाने भी दो इन बातों को। अच्छा साकी, यह बतलाओ कि अनवर हुसैन का क्या हुआ?"

"भकसी में भर दिया गया है।" जेलदार ने उत्तर दिया।

"उसने क्या अपराध किया था?" विजय ने सतर्क होते हुए प्रश्न किया।

"गुलगज कोतवाल से लड़ गया था।" जेलदार ने उत्तर दिया।

"जल में बसकर मगर से बैर!" मिर्जा ने कहा।

"और मियाँ गुलगज भी बड़े पहलवान बनते हैं। जिससे देखो भिड़ जाते हैं। बच्चू जानते नहीं थे कि अनवर भी कुछ हौसला रखता है।" खाँ ने कहा।

"अब आटा-दाल का भाव मालूम होगा।" जेलदार ने उत्तर दिया।

"गुलगज खानखानाँ का खास आदमी है।" शाह ने कहा।

"मुल्ला पीरमोहम्मद का कहिए।"

"थोड़ा ही फर्क है।"

"अभी तक गर्म बना हुआ है।" कोफ्ते की तश्तरी शाह की ओर बढ़ाते हुए जेलदार ने कहा।

दावत और गपशप अभी चल ही रही थी कि घण्टा बज गया। जेलदार ने विवशतापूर्ण दृष्टि से अतिथियों की ओर देखा। उसका अभिप्राय समझकर सब उठ खड़े हुए और अपनी-अपनी कोठरियों की ओर चल दिये।

अलग हो जाने पर विजयपाल ने जेलदार से कहा—"अगर सम्भव हो सके तो मेरे लिए नहाने और हजामत का प्रबन्ध कर दीजिए। ऐसे भले आदमियों के बीच रीछ की तरह दाढ़ी बढ़ाकर और मैले वस्त्र पहनकर बैठने में तो बड़ी झेंप लगती है।"

"आपकी फर्मायस बजा है। मगर मैं यहाँ के कायदों के सबब मजबूर हूँ।" जेलदार ने उत्तर दिया।

"मगर आज जो तीन और मेहमान दावत में शामिल हुए थे उनकी तो हजामतें भी बनी हुई थी और कपड़े भी साफ थे।"

"उनके साथ दरबार की खास रिआयत है। आप चाहें तो आप भी वकीले मुतलक को अर्जी देकर मन्जूरी ले सकते हैं।"

विजयपाल ने मन ही मन सोचा, 'वह ऐसा नहीं कर सकता।'

"आप अर्जी देना चाहें तो मैं कागज, कलम, दावात का इन्तजाम कर सकता हूँ।" विजयपाल को कुछ सोचते देखकर जेलदार ने कहा।

"इसकी जरूरत नहीं पड़ेगी। शायद मुझे इस हालत में ज्यादा दिन नहीं रहना होगा।" ठंडी साँस लेते हुए विजयपाल ने उत्तर दिया।

"क्या दरबार में आपका कोई खास सिफारिश है ?"

"कोई नहीं।"

"तब आपको अपनी तकदीर पर भरोसा होगा ?"

"तकदीर ने हमेशा मुझे धोखा ही दिया है।"

"तब आप खुदा पर भरोसा रखिए। वह जो कुछ करता है, ठीक ही करता है।

करम करते उसको नहीं लगती बार
न हो उससे मायूस उम्मीदवार।"

विजयपाल ने फिर एक गहरी साँस ली और अपनी कोठरी में आ गया।

एक अनोखे प्रकार की आवाज से विजय की नींद उचट गई। उसे लगा जैसे कोई घण्टी उसकी शय्या से कुछ ही दूर पर टुनटुना रही है। कुछ देर तक बिस्तर पर पड़ा-पड़ा ही वह उस शब्द के स्थान-निर्धारण की चेष्टा करता रहा। जब उसे निश्चय हो गया कि वह उसी की कोठरी में हो रहा है तब वह उठ खड़ा हुआ और अँधेरे में टटोलता हुआ दीवाल के पास उस स्थान पर पहुँच गया जहाँ पर शब्द हो रहा था। उसने टटोलकर देखा—पतली डोर के सहारे लटकी हुई एक छोटी-सी घण्टी दीवाल से लग-लगकर बज रही थी।

उसने घण्टी को पकड़ लिया और धीरे-से नीचे की ओर खींचा। इसी समय ऊपर से किसी ने धीरे से कहा—"आप जाग रहे हैं!"

आवाज ठीक उसके सिर के ऊपर से आ रही थी। विजय ने ऊपर को देखा पर अंधकार के कारण उसे कोई दिखाई न दिया। उसने कहा—"जी हाँ, क्या आज्ञा है?"

"सुनिए, आप सरदार विजयपाल जी हैं न?" उस आवाज ने कहा।

विजय का आश्चर्य और भी बढ़ गया। अंधकार, निर्जनता और नीरवता के वातावरण में इस प्रकार का अनुभव सर्वथा अप्रत्याशित था। इस प्रकार उसका नाम लेनेवाला आखिर कौन हो सकता है? अन्ततः उसने कहा—"जी, मेरा यही नाम है। आप क्या चाहते हैं?"

"मैं आपसे बातचीत करना चाहता हूँ। मैं अमजद खाँ हूँ और आपके पीछेवाले बुर्ज के ऊपरवाली कोठरी में कैद हूँ। हम दोनों के बीच में सिर्फ एक दीवाल है।"

"एक दीवाल का अन्तर कुछ न होते हुए भी बहुत कुछ होता है।" विजयपाल ने अर्धस्पष्ट स्वर से गुनगुनाया।

आवाज ने फिर कहा—"कल जेलदार ने कहा था कि आप पूरब के बाशिन्दे हैं, कन्नौज या और कहीं के...।"

"जी, मैं कन्नौज का हूँ।"

"पूरब का क्या रंग-ढंग है। कुछ उम्मीद है या नहीं?" आवाज ने यथासंभव धीमे स्वर में पूछा।

"इस समय सारी उम्मीदें बादलगढ़ में बन्द हैं!" एक ठंडी साँस लेते हुए विजयपाल ने उत्तर दिया।

"मैं भी यही खयाल कर रहा था, बड़ी मनहूस जगह है यह!" उधर से फिर आवाज आई।

"माफ कीजिएगा! पूरब की खबरों में आपको क्यों दिलचस्पी है?" विजय ने अपने मन की शंका प्रकट कर दी।

"आप राजा हेमू विकरमाजीत के अजीज होते हैं न?"

"आपका खयाल सही है।"

"तो आपने नवाब बाजबहादुर का नाम भी जरूर सुना होगा?"

"जी, नवाब साहब की फौजें पानीपत में हमारे साथ थीं।"

"यह बदकिस्मत भी वहाँ मौजूद था। और उस मनहूस जंग को लेकर ही बैरम खाँ ने—खुदा उसको गारत करे—मालवे पर तोहमत लगाई; जिसका नतीजा यह देखना पड़ रहा है।"

"भाग्य का फेर है, और क्या कहा जाय!" विजय ने निराशा के स्वर में कह दिया।

"हाँ, वह तो साफ है। पर मियाँ, जब वे दिन नहीं रहे तो ये दिन भी नहीं रहेंगे।"

"गौर तो नहीं किया था। मुझे तो ऐसा लगा था जैसे कोई बढ़ई कीलें जड़ रहा हो।"

"यह नहीं; यह बतलाइए कि किस तरह ठोंक रहा था। यानी दो-दो चोटें, कुछ रुक-रुककर, या तीन-तीन चोटें, कुछ रुक-रुककर!"

"शायद दो-दो चोटें कुछ रुक-रुककर!"

"यह मिर्जा का इशारा है।"

"उससे किस तरह बातचीत करनी होगी!"

"बादलगढ़ की जबान में। फारसी आती है? मेरा मतलब हरूफ तहज्जी से है।"

"हाँ।"

"तब सीधा तरीका है। अलफ के लिए एक चोट, बे के लिए दो। इसी तरह आगे भी!"

"तरीका तो बेशक सीधा है, पर एक छोटी-सी बात कहने के लिए भी वक्त बहुत चाहिए।"

"बेशक; पर हम लोगों को और काम ही क्या है! सारी रात यही सब तो करना रहता है। आराम करने को दिन का वक्त काफी होता है।"

विजयपाल की समझ में आ गया कि बादलगढ़ की विभिन्न प्रकार की उन आवाजों का क्या अर्थ है जिनके कारण रात को सोना तक कठिन हो जाता है। उसने पूछा—"कोई इस तरह की बातचीत को मना नहीं करता?"

अव्वल तो कोई मना करता नहीं; और मना भी करे तो यहाँ माननेवाला कौन है! अरे मियाँ, कोठरी में बन्द हैं। सजाये मौत के इन्तजार में हैं। किसी तरह हाथ पाँव पटककर वक्त काट रहे हैं। इसमें किसी का क्या इजारा है! फिर कैदखाने की यह चोरियाँ तो खुद अल्लाताला की ईजाद हैं, उन्हें कोई क्या खाकर बन्द करेगा।"

अमजद खाँ ने कुछ बेफ़िक्री के स्वर में कहा। फिर पूछा—"आपको कोई खास तकलीफ तो नहीं है ?"

"आराम ही कौन-सा है ?" विजय ने भी उसी बेफिक्री से कह दिया।

"जेलखाना आखिर जेलखाना है। मेरा मतलब किसी ऐसी तकलीफ से है जिसके लिए हम लोग कुछ कर सकते हों !"

"पढ़ने-लिखने को कुछ मिलता तो अच्छा रहता।"

"किताबें तो जेलदार के घर से ला सकते हैं !"

"मैं कलम-दावात और रोशनी चाहता हूँ।"

"रोशनी का इन्तजाम मैं कर सकता हूँ।"

"क्या आपको रोशनी दी गई है ?"

"दी तो नहीं है, पर मैंने पैदा कर ली है !"

"पैदा कर ली है ! किस तरह ?"

"खाने को जो शोरबा आता है, उसमें से कुछ तेल उतारकर एक कटोरी में जमा करता जाता हूँ। कपड़े की बत्ती बना ली है। चकमक पत्थर के लिए अलबत्ता बड़ी तिकड़म लगानी पड़ी। पर आखिर मिल गया।"

रोशनी बाहर जाती होगी तो कोई कुछ कहता न होगा ?"

"बाहर जायेगी कैसे, क्या दीवालें फोड़कर ? दरवाजा मोटे-मोटे तख्तों का बना है। दिन की रोशनी भी उससे छनकर अन्दर नहीं आ सकती। रोशनदान सिर्फ एक है, यही आपकी कोठरी के ऊपर, जिसकी जाली को जरूरत के मुआफिक चौड़ा करके आपसे बातचीत कर रहा हूँ।"

"आप सचमुच अक्लमन्द हैं।"

"जरूरत अक्लमन्द बना देती है !"

"कागज-कलम का सवाल फिर भी रह जाता है।"

"जहाँ तक मेरा खयाल है, शाह साहब से आपको ये दोनों चीजें मिल सकती हैं।"

"उनसे कैसे कहा जाय?"

"मैं कह दूँगा। फिर वे खुद आपको बुला लेंगे। आपकी कोठरी में कोई रोशनदान उस तरफ को भी है?"

"एक गौखा जरूर है, छोटा-सा। पर यह नहीं कह सकता कि वह उनकी कोठरी के लिए ही है।"

"इजाजत हो तो उनसे कह दूँ।"

"जरूर! मेहरबानी होगी।"

इसके बाद अमजद खाँ ने घण्टी ऊपर खींच ली। विजयपाल चुपचाप अपने तख्त पर जा लेटा और बादलगढ़ के जीवन का विचार करने लगा। ऊपर से दीवाल ठोंकने की आवाजें आने लगीं जिनका विचार करने पर भी विजय कुछ अर्थ न निकाल सका। फिर भी बहुत देर तक एकाग्र मन से वह दोनों ओर से होनेवाले संकेतों को समझने का व्यर्थ प्रयत्न करता रहा। इसी बीच उसे नींद आ गई।

वह अच्छी तरह से सो भी न पाया था कि दीवाल के पास घण्टी की आवाज सुनकर वह फिर जाग पड़ा और अंधकार में टटोलता हुआ उस ओर बढ़ा। इस बार उसे अनुभव हुआ कि घण्टी उसके सिर से काफी ऊँचाई पर बज रही है और वह उसे छू नहीं सकता। अतएव अनुमान से घण्टी के नीचे पहुँचकर उसने दोनों हाथों से दीवाल पर शब्द किया। घण्टी रुक गई और ऊपर से आवाज आई—"सरदार विजयपाल ही हैं न!"

शाह की आवाज पहचानने में विजयपाल को देर न लगी।

"जी!" उसने शिष्टाचार के स्वर में जवाब दिया।

"खैर आफियत!" शाह ने कहा।

"इनायत है।"

"क्या चाहिए?"

"कागज, कलम, दावात के लिए अर्ज कर रहा था।"

"कुछ शायरी-वायरी का शौक है क्या?"

"यों ही।"

"महबूबा के लिए खत लिखेंगे?"

विजयपाल ने कुछ उत्तर न दिया। फिर भी उसने अनुभव किया कि उम्र में बहुत अन्तर रहने पर भी अवस्था की समानता के कारण शाह का उससे दिल्लगी करना अनुचित नहीं है।

"अच्छी बात है। ये चीजें मैं आपके पास पहुँचा दूँगा।" कुछ देर प्रतीक्षा करने के पश्चात् शाह ने धीरे से कहा।

"मेहरबानी है।" विजयपाल ने नपे-तुले शब्दों में उत्तर दे दिया।

"और भी कुछ चाहिए?" शाह ने पूछा।

"और क्या मिल सकता है?"

"बहुत कुछ; खाने को, पीने को!"

"आपको सब चीजें मिली हुई हैं क्या?"

"मिली तो नहीं हैं, पर तिकड़म से सब कुछ मुमकिन है। जानते हो, कैदखाने में तिकड़म ही कैदी की जिन्दगी का सहारा है।"

"मुमकिन है।"

"मुमकिन नहीं, सच कहता हूँ। अच्छा, अब आपका ज्यादा वक्त खराब न करूँगा। जरा इन्तजार कीजिए। तिपाई है?"

"जी हाँ!"

"तो उसे टटोलकर नीचे कर लीजिए और उस पर खड़े हो जाइए। क्योंकि आप बहुत नीचे खड़े हैं और जिस चीज से मैं रस्सी का काम ले रहा हूँ, वह काफी लम्बी नहीं है।"

"आप रस्सी का काम किस चीज से ले रहे हैं?" उत्सुकता से विजय ने प्रश्न किया।

"इजारबन्द से । मेरे पास रस्सी के नाम पर यही एक चीज छोड़ी गई है ।" हँसते हुए शाह ने उत्तर दिया । विजयपाल ने भी इस हँसी में शाह का साथ दिया ।

तिपाई को दीवाल के पास लगाकर विजयपाल उस पर खड़ा हो गया । कुछ देर की प्रतीक्षा के बाद उसे लगा, कोई चीज दीवाल के सहारे नीचे को खिसक रही है । ऊपर को हाथ उठाकर उसने देखा, एक पोटली थी ।

"इसमें जो कुछ है, निकाल लीजिए ।" ऊपर से आवाज आई ।

विजयपाल ने पोटली में से कुछ सेब, कागज और कोयले की बत्तियाँ निकाल लीं ।

"हजार-हजार शुक्रिया !" उसने शाह साहब को धन्यवाद देते हुए कहा ।

"इन बत्तियों से आप कागज पर लिख सकते हैं । अगर जरूरत समझें तो पानी के साथ फर्श पर रगड़कर स्याही बना लें । दोनों सूरतों में लिखावट सुन्दर आयेगी, कालपी का कागज है । मुश्किल से दस्तयाब हुआ है ।"

"आपकी खास मेहरबानी है ।"

"क्या इसी वक्त कुछ लिख डालने का इरादा है ?"

"देखिए, अगर मुमकिन हो सका ।"

"पर रोशनी तो आपके पास है नहीं ?"

"खाँ साहब ने देने का वायदा किया है ।"

"बड़े शरीफ आदमी हैं खाँ साहब ।"

"बेशक; मुझ पर तो बड़ी मेहरबानी करते हैं ।"

"और कोई कारे खिदमत ?"

"जरूरत पड़ने पर जरूर तकलीफ दूँगा ।"

"सलाम !"

"सलाम !"

शाह जाली के पास से हट गये और विजयपाल अपने तख्त पर आ बैठा। वह इसी समय नन्दा को एक पत्र लिखना चाहता था। पर रोशनी के अभाव में वैसा करना संभव न था। अतः वह फिर उठा और टटोलते-टटोलते अमजद खाँ की जाली के नीचे जा खड़ा हुआ।

"सुनिए !" दीवाल पर दो बार हाथ से चोट मारकर उसने पुकारा। उधर से कोई उत्तर न आया।

"सुनिए, सुनिए !" उसने फिर अनेक बार पुकारा। फिर भी अमजद खाँ ने उत्तर नहीं दिया।

"शायद सो गये हैं।" विजयपाल ने मन ही मन सोचा। उसे खाँ साहब पर बड़ी झुँझलाहट हुई। मुझे जगाकर हजरत खुद लम्बी तान गये। उसने एक बार फिर प्रयत्न करने का निश्चय करके तिपाई को उठाकर बड़ी जोर से जमीन पर पटका। इसके बाद उत्तर की प्रतीक्षा में कुछ देर तक चुपचाप खड़ा रहा। फिर भी उधर से कोई उत्तर न मिला। तब उसने तिपाई को बड़ी जोर से फिर जमीन पर तीन-चार बार पटका।

इस बार विजय का उद्योग निष्फल नहीं गया। क्योंकि उसे अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। उसकी कोठरी का भीतरी द्वार खुला और छः सिपाहियों के साथ कलवाले अधिकारी ने प्रवेश किया। उसके अगल-बगल दो मशालची मशालें लिये चल रहे थे।

"क्या है ?" आते ही अधिकारी ने आँखें तरेरते हुए पूछा।

"कुछ नहीं, तिपाई में खटमल ज्यादा हैं; बहुत परेशान कर रहे हैं।"

"और ये शायद उन खटमलों के अण्डे हैं !" तख्त पर रखे हुए सेबों की ओर इशारा करते हुए अधिकारी ने कहा।

विजय ने कुछ उत्तर नहीं दिया। उसे लगा कि वह अपराध करते हुए पकड़ा गया है और अब अपने को निर्दोष प्रमाणित करने

की चेष्टा करना व्यर्थ है। फिर भी वह अपने ऊपर अपरिचित कृपा करनेवाले खाँ साहब और शाह साहब का नाम नहीं लेगा।

"और यह कागज-वत्ती !" मशाल को अपने हाथ में लेकर तख्त के और समीप लाते हुए अधिकारी ने कहा," गजब है। आप लोग क्या जादू-मन्त्र भी जानते हैं !"

यह कहकर सब सामान उसने अपने हाथ में उठा लिया। विजय कोई आपत्ति न कर सका।

"आपके पड़ोसियों की शिकायत है कि आप उन्हें रात को सोने नहीं देते।" अधिकारी ने चेहरे पर यथासंभव रुखाई का भाव प्रकट करते हुए कहा।

विजय ने आँख उठाकर एक बार उसके मुँह की ओर देखा; फिर अपनी आँखें नीची कर लीं।

"मैं कहता हूँ कि इस तरह आप न सिर्फ अपने को ही, वरन् अपने अजीजों को भी मुश्किल में डाल रहे हैं।"

"अजीजों को !" विजय का ध्यान बिजली की गति से नन्दा की ओर पहुँच गया, "क्या उसे भी ये लोग परेशान कर रहे हैं। और शेख साहब !" उसका रोम-रोम काँप उठा। उसने दोनों हाथों से अपनी आँखें बन्द कर लीं और जहाँ खड़ा था, वहीं फर्श पर चुपचाप बैठ गया।

"मैं कहता हूँ कि अभी कुछ नहीं बिगड़ा है;" गर्म लोहे पर चोट करने के अभिप्राय से अधिकारी ने कहा, "अभी सब कुछ आपके हाथ में है। आप जिसे चाहेंगे, उसे बख्श दिया जायगा !"

विजयपाल ने आँखें उठाकर अधिकारी की आँखों में देखा। अभिप्राय-सूचक मुस्कान अधिकारी के चेहरे पर खेल गई जिससे विजय का तन-मन घृणा से भर गया। अपने को सँभालते हुए उसने कहा—

"आप क्या चाहते हैं ?"

"मैं आपसे बहुत कुछ उम्मीद रखता हूँ।"

"मैं कुछ नहीं बताऊँगा; मैं कुछ नहीं जानता।"

"तब मैं सिर्फ यह जानना चाहूँगा कि ये चीजें कैदखाने में आपको किस तरह दस्तयाब हुईं?"

"मैं नहीं जानता; मैं बतलाना नहीं चाहता।" विजय ने साहस के साथ उत्तर दिया।

"आप लोगों की ये हरकतें हमारे इन्तजाम में खलल डालती हैं और इसका नतीजा अच्छा न होगा। खैर, इस वक्त मैं आपसे ज्यादा छेड़-छाड़ करना नहीं चाहता; क्योंकि आपकी बाबत जो फैसला होना था, हो चुका है और उस हालत में आपको ज्यादा तकलीफ देना बेकार है।" अधिकारी ने कुछ अन्यमनस्कता के साथ कहा।

"मेरे बाबत फैसला हो चुका है! क्या फैसला हुआ है, क्या मैं जान सकता हूँ?" विजय ने कुछ काँपती हुई आवाज से पूछा।

"मैं जानता हूँ; पर मैं बताना नहीं चाहता; बताने की इजाजत नहीं है।" अधिकारी ने उसी लापरवाही से उत्तर दे दिया।

इसके बाद अपने साथियों के साथ वह कोठरी से बाहर हो गया। अधिकारी के चले जाने पर विजय उठकर अपने तख्त पर जा बैठा। उसे लगा, उसका मस्तिष्क एक विचित्र प्रकार की शीतलता और स्वच्छन्दता से भर उठा है। कोठरी में व्याप्त अंधकार और शून्य ने जैसे उसे अपने अंक में भर लिया है। वह शून्य जो बाहर के शून्य से अविच्छेद्य है; मानकृत मोटे-मोटे आवरण जिसे विभाजित करने का प्रयत्न करने में असफल होते हैं। अब उसके लिए भय का कोई कारण नहीं है। उसका फैसला हो चुका है। अब वह विचाराधीन कैदी नहीं है। वह अब चिन्तामुक्त है। बादलगढ़ की मोटी-मोटी दीवालें, कोठरी के लोहे के फाटक, यहाँ तक कि उसका अपना शरीर भी, उसे बाँधकर नहीं रख सकते। वह व्यर्थ ही डर रहा था। शून्य की इस सर्वतोव्याप्ति में वह अकुतोभय है। वह जिस शून्य में श्वास ले रहा है, वह विश्वात्मा है। बैरम खाँ और उसके सारे संगी-साथी,

मुगल-साम्राज्य की सारी मशीन, उस विश्वात्मा का एक क्षुद्र निःश्वास भर है। वह निर्भय है, अंतरिक्ष से, द्यावा-पृथिवी से; मित्र से, अमित्र से; परिचित से, अपरिचित से; ऊपर से, नीचे से; सामने से, पीछे से; वह अभय है। उसका कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता। न दिन में और न रात में; न जल में और न स्थल में। उसके लिए भय का कोई कारण नहीं है।

उसे लगा, उसकी कोठरी के फर्श से लेकर असीम और अनंत के दूसरे छोर तक एक जीना बन गया है। इस जीने में इतनी सीढ़ियाँ हैं कि विजयपाल प्रयत्न करने पर भी गिन नहीं सकता। जीने की सीढ़ियों पर निःशब्द किन्तु निश्चित गति से पादक्षेप करते हुए स्वर्गीय सम्राट् हेमू विक्रमादित्य धीरे-धीरे उतर रहे हैं। उनकी आँखें एकटक उसी की ओर देख रही हैं। उन आँखों में वात्सल्य और आश्वासन है। विजय का मस्तक श्रद्धा और आदर से झुक गया। उसके कान पादक्षेप का मृदु मंद स्वर फिर भी बराबर सुनते रहे। कब तक! कुछ कहा नहीं जा सकता। अन्त में जैसे स्वर्गीय सम्राट् उसके बिलकुल पास आकर खड़े हो गये और एकटक उसकी ओर देखने लगे। उस दृष्टि में इतना बोझा था कि उसे सँभालना विजय की शक्ति से बाहर हो गया। उसने हाथ उठाना चाहा कि चरणस्पर्श कर लूँ, पर हाथ न उठे। उसने चरणों पर गिरकर प्रणाम करना चाहा, पर शरीर उसके अधिकार से बाहर हो गया। उसका श्वास घुटने लगा। उसकी चेतना जवाब देने लगी।

इसी समय उसे लगा, जैसे स्वर्गीय सम्राट् कह रहे हों, "बेटा विजय, तू भूल रहा है। इस अपवित्र और अपूर्ण संसार में प्रेयसी और पृथिवी साथ-साथ नहीं निभ सकतीं। यहाँ दो में से एक को पकड़ना होता है। पर इससे भिन्न एक दूसरा संसार भी है, इससे अधिक पूर्ण, अधिक पवित्र! वहाँ तुम दोनों का साथ-साथ उपभोग कर सकते हो,

दोनों को साथ-साथ निभा सकते हो। वह देखो, ऊपर की ओर! आओ, इस जीने पर मेरे साथ-साथ चढ़ चलो! मैं तुम्हें उस पवित्र लोक में पहुँचा दूँगा।" विजय मानो उठा और स्वर्गीय सम्राट्—अपने चाचा—का हाथ पकड़कर उस जीने पर चढ़ने लगा।

(३०)

दूसरे दिन सोकर उठने पर विजय को ऐसा लगा कि उसका शरीर और मन स्वस्थ नहीं है। गत रात्रि की घटनाएँ एक-एक करके उसके मानसपटल पर अंकित होने लगीं। अमजद खाँ की बातचीत, शाह साहब की कृपा, कागज, कोयला, सेब और फिर सहसा कैदखाने के अधिकारी का आगमन और लानत-मलामत, सभी चीजें रह-रहकर उसके दिल को कचोटने लगीं। इतना जलील अपनी जिन्दगी में उसे कभी न होना पड़ा था। इसके बाद उसे अधिकारी के वे शब्द याद हो आये जो उसने चलते-चलाते कहे थे—"आपकी बाबत जो फैसला होना था, वह हो चुका है।" इस बात का क्या अर्थ हो सकता है? यह तो नहीं कि उसके लिए फाँसी, सूली या ऐसी ही कोई दूसरी सजा निश्चित हो चुकी है। यदि ऐसा ही है तो उसका वश ही क्या है। फिर उसे रात में देखे हुए स्वप्न की याद हो आई। स्वर्गीय सम्राट् ने उसे अपने साथ ऊपर जाने के लिए बुलाया और वह उनके साथ-साथ जीनें पर चढ़ता हुआ ऊपर की ओर चला गया। इस स्वप्न का अर्थ भी सम्भवतः यही हो सकता है कि उसके स्वर्ग की सीढ़ी पर चढ़ने का समय अब निकट आ गया है। अब अधिक देर नहीं है। कमरे में मन्द प्रकाश आ चुका था जिससे उसकी प्रत्येक वस्तु धुँधली और उदास दिखाई देती थी। उसने एक दृष्टि उन दोनों छिद्रों की ओर डाली जिनसे होकर उसने गत रात्रि अमजद खाँ और शाह साहब से बातचीत की थी। कितने भले हैं दोनों; यदि वे न होते तो

विजयपाल के लिए इस जगह दो दिन भी जिन्दा रहना कठिन हो जाता। और वह अधिकारी ! उसका भी क्या अपराध ! उसके जिम्मे जो काम है उसे वह पूरा कर रहा है। उसमें किसी को शिकायत क्यों होनी चाहिए। और अगर हो भी तो उससे क्या फायदा।

एक अँगड़ाई लेकर वह उठ बैठा। सारा शरीर टूट रहा था। उठने को जी न चाहता था। और सच बात तो यह थी कि वह उठ बैठे, या लेटा ही रहे; इससे उस कालकोठरी की मनहूस जिन्दगी में कोई अन्तर न आ सकता था। फिर भी उसे उठना था। कब तक इस तरह लेटे रहा जा सकता था !

सुराही से पानी लेकर उसने हाथ-मुँह धोया और फिर आकर अपने तख्त पर बैठ गया। उसी समय उसे उत्तर ओर की दीवाल पर एक छाया का आभास हुआ। शायद गौखे से कोई झाँक रहा था। दृष्टि उठाकर उसने उस ओर देखा। दो चमकीली आँखें सच-मुच उसी की ओर देख रही थीं। वह उठकर खड़ा हो गया।

"रात क्या कह रहा था वह हरामी का पिल्ला?" ऊपर से प्रश्न हुआ।

"लानत-मलामत कर रहा था। कह रहा था कि मेरे लिए सजाये मौत का फैसला हो चुका है।"

"झूठा है। पहले दर्जे का मक्कार ! उसे क्या इल्म कि कहाँ क्या हो रहा है। वह यों ही बका करता है।"

विजय को इन शब्दों से कुछ आश्वासन मिला। पर यह आश्वासन चिरस्थायी न रह सका। सन्देह का सूत्र पकड़कर उसने फिर कहा—"कहीं से तो उसे ज्ञात हुआ ही होगा। इन लोगों के पास शाही फ़रमान आते-जाते रहते हैं।"

"फरमान-वरमान कुछ नहीं; यों ही बक रहा था। उसकी ऐसी आदत है।"

"आपने क्या उसकी बातचीत सुनी थी?"

"मैं सब सुन रहा था। जी में आता था कि अगर मोखा कुछ और चौड़ा होता तो फेंककर उसके मुँह पर कोई चीज मारता जिससे मियाँ के होश दुरुस्त हो जाते।"

इन शब्दों में विजय को सच्चे मित्र का आश्वासन प्राप्त हुआ।

"पर आपने", खान ने आगे कहा—"उसे तुर्की-ब-तुर्की जवाब नहीं दिया। इससे मुझे जरूर तअज्जुब हो रहा था। जो दबता है, उसे ये लोग और भी दबाते हैं।"

विजयपाल को इससे सचमुच बल मिला। उसने निश्चय कर लिया कि भविष्य में अधिकारी ने यदि इस तरह की छेड़छाड़ की तो वह उसका मुँह ही नोच लेगा।

"और सुनिए!" खान ने आगे कहा, "वह फल और कागज उठा ले गया है? कागजों पर कुछ लिखा तो नहीं था?"

"जी नहीं।"

"आपने यह तो नहीं बतला दिया कि कागज आपको किससे मिले थे?"

"नहीं।"

"अच्छा ही किया। अब की बार अगर वह आये और फिर वही सवाल पूछे तो कह देना कि बैरम खाँ की भतीजी ने भेजे थे!"

"उसे तो मैं जानता भी नहीं।" विजयपाल ने भोलेपन से कह दिया।

"कैदखाने की रिश्तेदारियों के लिए जान-पहचान की जरूरत नहीं होती?"

विजय सोच-विचार में पड़ गया।

"आपको भी कुछ करना चाहिए। इस तरह सीधे सिपाही बनने से यहाँ काम नहीं चलता। यहाँ तिकड़म करनी होती है।"

"मैं क्या कर सकता हूँ?"

"मैं बतलाऊँ; कुछ न हो तो आप बीमार पड़ जाइए।"

"बीमार पड़ जाऊँ ! यह भी अपने वश की बात है ?"

"बस की बात क्यों नहीं है ! खाना-पीना छोड़ दीजिए और चुप-चाप तख्त पर लेट जाइए।"

"इससे उनका क्या नुकसान होगा; मुझे ही भूखा मरना पड़ेगा।"

"ऐसी बात नहीं है। जेर फैसला कैदी को तकलीफ देना उसूल के खिलाफ है। कैदखाने के छोटे-बड़े हाकिम आपके पास दौड़े आयेंगे और आपकी खुशामद करेंगे। तआज्जुब नहीं कि सदरुस्सदूर साहब को खुद तशरीफ लानी पड़े, बशर्ते कि आप स्वाँग को आखीर तक निभा सकें।"

"मगर उससे होगा क्या ?" विजय ने लापरवाही से कहा।

"होगा क्या ? यही कि शाही हकीम को बुलाया जायगा। दवाई तजवीज होगी। थोड़ा तहलका हंगामा रहेगा। हम लोगों को भी कुछ रिआयतें मिल जायँगी। बाहर खबर पहुँचेगी तो आपके दोस्त-अहबाब आसमान सिर उठा लेंगे। बैरम खाँ को लेने के देने पड़ जायँगे।"

"बीमारी का झूठा बहाना कब तक चल सकता है। कुछ ही देर बाद खुल जायगा तब जलील होना पड़ेगा। और फिर हकीम साहब दवा पीने को कहेंगे।"

"बीमारी का बहाना बहुत देर तक चल सकता है। और दवा का पीना या न पीना तो तुम्हारे बस की बात है। चाहे पीना, चाहे कुल्ली कर देना।"

"नाम किस बीमारी का लिया जायगा।"

"बीमारी का नाम लेना तुम्हारा काम तो नहीं है। तुम्हें तो चुप-चाप बीमार बनकर लेट रहना है। फिर हकीम खुद-बखुद देखेगा कि तुम्हें क्या शिकायत हैं, और उसका क्या इलाज होना चाहिए।"

"और अगर नब्ज देखकर हकीम ने कह दिया कि इसे कोई बीमारी नहीं है, तब क्या होगा ?"

"ऐसा हो नहीं सकता । क्योंकि इधर कैदखाने में जो मर्ज ज्यादा चलते हैं, उनकी तमीज हकीम लुकमान को भी नहीं हो सकती ।"

"क्या मर्ज चलते हैं ?"

"उनका नाम जानना हमारा काम नहीं है। यह काम हकीमों का है। हम सिर्फ यही जानते हैं कि उस मर्ज का मरीज आबोदाना छोड़कर गुम-सुम बैठ जाता है। कभी-कभी, और खासकर जेलदार के आने पर, जोर-जोर से फूट-फूटकर रोने लगता है, और इस कदर रोता है कि फिर समझाये नहीं समझता। हकीम इसे अमूमन 'माली-खोलिया' कह देते हैं। और चूँकि मालीखोलिया के मरीज अकसर पागलपन के शिकार हो जाते हैं और पागल को मौत की सजा या दूसरे किस्म की कोई सख्त सजा देना शरअ के खिलाफ है, इसलिए मरीज को कुदरती हालत में लाने की हरचन्द कोशिश की जाती है।"

"तजवीज तो अच्छी है, मगर शायद मैं इसमें कामयाब न हो सकूँगा। बचपन से फरेब, मक्कारी और झूठ बोलने का अभ्यास जो नहीं किया।"

"तब तुमने दर असल बड़ी गलती की। और इससे भी बड़ी यह गलती हुई कि मक्कारी में महारत हासिल किये बिना सल्तनत और मुहब्बत के मामलों में हाथ डाल बैठे। अरे मियाँ, कसम से कहता हूँ कि मुहब्बत और सयासत—दोनों साँप के बिल हैं। जन्तर-मन्तर जाने बिना इनमें हाथ डाल देना नादानी है।"

"पर अब तो हाथ डाल ही चुका हूँ।"

"तो पढ़ाई की बिस्मिल्लाह भी अब हो जानी चाहिए। आप जैसे लोगों के लिए बादलगढ़ मकतब है और मैं यकीन के साथ कह सकता हूँ कि यहाँ से आप इस फन में उस्ताद होकर ही निकलेंगे।"

खटके की आवाज ने इसी समय विजयपाल का ध्यान दूसरी ओर आकर्षित कर दिया। वह आकर चुपचाप तख्त पर बैठ रहा।

आनेवाला जेलदार था जो नित्य नियम के अनुसार भोजन और जल कहारों के सिर पर रखवा कर आया था।

"आदाब अर्ज है।" अपनी सहज शिष्टता से जेलदार ने अभिवादन किया।

विजयपाल शून्य दृष्टि से उसकी ओर देखता रहा। उत्तर में एक भी शब्द उसके मुँह से न निकला।

कहारों को तिपाई पर भोजन का सामान रखने का आदेश देकर जेलदार विजयपाल के ठीक सामने खड़ा हो गया और बड़े अदब से बोला—"जनाब के दुश्मनों की तबीअत कुछ अलील दिखाई देती है।"

विजयपाल ने फिर भी कुछ उत्तर न दिया।

"बड़ी मनहूस जगह है यह! शाहजादों की तबीअत यहाँ जरूर खराब हो जाया करती है।" उसने संवेदना के स्वर में फिर कहा।

विजयपाल चुप रहा। उसकी आँखों में आँसू छलक आये थे।

"किसी की याद सता रही है, शायद। बड़ी खुशकिस्मत होगी वह माहेरू!"

विजयपाल गुम-गुम बैठा रहा।

"शायद मुहाफिज ने कुछ सख्त कलामी की है। बड़ा पाजी आदमी है।"

विजयपाल ने सिर झुका लिया।

जेलदार चुपचाप बाहर चला गया। उसके पीछे फाटक भी बन्द हो गया। विजय बहुत देर तक उसी अवस्था में बना रहा।

धीरे-धीरे कमरे में अंधकार व्याप्त होने लगा। उसने समझा अब रात हो गई। वह उठकर धीरे-धीरे टहलने लगा। भोजन अब भी यथास्थान रक्खा था। उसने उसे छुआ तक नहीं।

उसकी इच्छा हुई कि खाँ को बुलाकर सारी स्थिति स्पष्ट कर दे और उससे सम्मति ले। वह दीवाल की ओर बढ़ा भी। पर इसी समय

उसने देखा, शाह की ओर के झरोखे से एक पोटली झूल रही है। विगत रात्रि के अनुभव ने एक बार उसे पोटली में हाथ लगाने से रोका; साथ ही उसे ध्यान आया कि यहाँ इस तरह डरने से काम न चलेगा। उसने तिपाई को खींचकर दीवाल के पास कर लिया और उस पर चढ़कर पोटली में बँधे सेब, अमरूद और केले खोल लिए। फिर वह अपने तख्त पर जा बैठा और इतमीनान के साथ उन फलों को खाने लगा।

जब सब फल समाप्त हो गये तब वह फिर उठा और छिलकों को इकट्ठा करके उसने फिर उसी पोटली में बाँध दिया और फिर डोरी को हिलाकर संकेत किया। शाह ने एक बार नीचे को झाँका और पोटली को ऊपर खींच लिया। विजय अब निश्चिन्त होकर तख्त पर जा सोया।

दूसरे दिन विजय ने देखा, जेलदार सबेरे ही सबेरे उसके कमरे में आ गया था। उसने चाहा कि उठकर पहले दिनों सा अभिवादन करे, और वह उठने ही वाला था कि उसे पिछली रात की बीमारी का बहाना स्मरण हो आया। वह सिर पर हाथ धरे चुपचाप बैठा शून्य दृष्टि से जेलदार की ओर देखने लगा।

"कैसी तबीअत है?" जेलदार ने प्रश्न किया।

"अच्छी नहीं है।" विजय ने धीरे से कह दिया।

"क्या तकलीफ मालूम पड़ती है?" साहस पाकर जेलदार ने पूछा।

"रात को नींद नहीं आती, और थोड़ी बहुत कभी आती भी है तब बुरे-बुरे ख्वाब देखकर चौंक पड़ता हूँ। सिर में हर वक्त तेज दर्द रहता है।"

"आपने खाना नहीं खाया?" तिपाई के ऊपर रक्खे भोजन की ओर संकेत करते हुए जेलदार ने पूछा।

"खाने की इच्छा ही नहीं होती!" विजय ने खाने की ओर बिना देखे ही कह दिया।

"मेरी समझ से आपकी इन सारी बीमारियों का सबब नहूसत है। अगर साथ में कोई हमजोली हो और उससे बातचीत करने का मौका मिलता रहे तो यह शिकायत न हो।"

"शायद।"

"इस बुर्ज के पिछवाड़ेवाले बुर्ज में एक और शाहजादे को कैद किया गया है जिसका तअल्लुक़ कन्नौज के बागियों से बतलाया जाता है। आप चाहें तो उससे बातचीत करने का मौका आपको दिया जा सकता है। मगर एक शर्त्त है कि बातचीत मुख्तसिर ही होगी और आपसी मामलों से आगे न बढ़ेगी। क्योंकि वह कैदी बड़ा खतरनाक बतलाया जाता है।"

"कौन राजकुमार हो सकता है!" विजयपाल मन ही मन सोचने लगा। फिर उसने पूछा—"कौन शाहजादा है?"

"किसी हिन्दू राजा का लड़का है। आप लोगों के नाम मुझे ठीक से याद नहीं रहते।" जेलदार ने साधारण विचार के पश्चात् कहा।

विजयपाल फिर सोचने लगा। सहसा उसे ध्यान आ गया, शायद कुशलपाल होगा। उसका स्मरण आते ही विजय का हृदय घृणा से भर गया और उसने मन ही मन निश्चय कर लिया कि भेंट होते ही वह उसका मुँह नोंच लेगा।

उसे चुप देखकर जेलदार ने कहा—"आप चाहें तो आपको मैं आज शाम को उसकी कोठरी में ले चल सकता हूँ। पर उससे पहले आपको मेरी एक अर्ज़ी मंजूर करनी पड़ेगी।"

"वह क्या?" जेलदार के सज्जनोचित प्रस्ताव पर विजयपाल ने पूछा।

"यही कि आप इसी वक्त थोड़ा-सा खाना खा लीजिए।" मुस्कराते हुए जेलदार ने कहा।

"यह खाना तो बासी है।" विजय ने घृणा के साथ थाली की ओर देखते हुए कहा।

"अभी ताजा मँगाये देता हूँ।" उत्साहित होते हुए जेलदार ने कहा।

"पर मैं बहुत थोड़ा खा सकूँगा, और वह भी महज आपका हठ रखने के लिए।" विजय ने अनुरोध के स्वर में कहा।

"जितनी मर्जी हो, खा लीजिए।" कहकर जेलदार ने कहार को ताजा खाना लाने के लिए भेज दिया।

थोड़ी ही देर बाद कहार भोजन ले आया। अपने वचन को रखने के लिए विजयपाल ने जेलदार की उपस्थिति में ही थोड़ा-सा खा लिया। इसके बाद शाम को ठीक समय पर आने का वचन देकर जेलदार चला गया।

विजय दिन भर इसी चिन्ता में पड़ा रहा कि जिस राजकुमार के सम्बन्ध में जेलदार ने कहा है, वह कौन हो सकता है। जेलदार ने उसका सम्बन्ध कन्नौज की बगावत से बतलाया है और यह भी कहा है कि वह बड़ा खतरनाक आदमी है। कन्नौज की बगावत में जो लोग अगुआ हैं उनमें हिन्दू सिर्फ दो हैं—वह स्वयं और चम्पालाल। तो क्या चम्पालाल को भी पकड़ लिया गया है और यहीं लाया गया है। यदि वह चम्पालाल ही हुआ तो सचमुच मामला टेढ़ा है। मुराद भाई और इम्दाद भी अवश्य पकड़ लिए गये होंगे और फिर इस तरह सारी की सारी योजना मिट्टी में मिल गई होगी। पर उन लोगों की गिरफ़ारी का आधार क्या हो सकता है। क्या कुशलपाल ने मुखबिरी की है और उसी का यह सब, नतीजा है। और यदि वह कुशलपाल ही हुआ तो......!

कुशलपाल पर उसका शुबह शुरू से ही था। पर अगर वह भी बादलगढ़ में बन्द है और उसके साथ भी खतरनाक कैदी का बर्ताव किया जा रहा है, तब तो यह अनुमान गलत हो सकता है। शाइ

साहब और अमजद खाँ से इस मामले में सलाह लेना ठीक रहेगा या नहीं। मगर ऐसा करने के लिए उनके सामने सारा कच्चा चिट्ठा रख देना होगा, जो ठीक नहीं है। इस सीमा तक किसी का विश्वास कर लेना ठीक न होगा। सम्भव है कि जौनपुर के षड्यन्त्र के सम्बन्ध में यहाँ किसी को अधिक न मालूम हो। उस दशा में उसका शाह साहब या अमजद खाँ को कुछ बतला देना हानिकारक हो सकता है। जो कुछ भी हो, शाम को सब मालूम पड़ जायगा।

इस प्रकार वह दिन भर शाम की मुलाकात की तैयारी करता रहा और मन ही मन सोचता रहा कि यदि चम्पालाल हुआ तो वह क्या-क्या बातचीत करेगा और यदि कुशलपाल हुआ तो वह किस तरह उससे पेश आयेगा। वह चाहता था कि आज शाम जल्द हो जाय!

आखिर चौथे पहर का समय भी आ गया। जेलदार ने दो सिपाहियों के साथ विजय की कोठरी में प्रवेश किया और उससे अपने साथ चलने के लिए कहा। विजय पहले से तैयार बैठा था। चारों आदमी कई गलियारे, सहन और ऊँची-नीची सीढ़ियाँ पार करते हुए एक कोठरी के सामने पहुँचे जिसके किवाड़ लोहे की मोटी-मोटी छड़ों से बने थे। विजय ने देखा, द्वार से सटे हुए तख्त पर एक व्यक्ति लेटा हुआ है। उसकी पीठ बाहर की ओर है। बगल में एक तिपाई पर जूठे बर्तन जमा हैं जिनमें बची हुई जूठन ऐसे भद्दे ढङ्ग से छितराई पड़ी है कि झुण्ड की झुण्ड मक्खियाँ चारों ओर भिनक रही हैं। उसके कपड़े बहुत मामूली और चिथड़े-चिथड़े हैं जिनसे ज्ञात होता है कि वह किसी निम्नवर्ग का व्यक्ति है।

"इसके साथ वार्त्तालाप करना मेरी शान के खिलाफ होगा।" विजय ने मन ही मन निश्चय किया। फिर भी वह उस कोठरी की ओर बढ़ गया। उसे वहाँ छोड़ कर जेलदार और सिपाही वापस चले गये।

सहसा किसी की उपस्थिति का आभास पाकर ही तख्त पर लेटे हुए कैदी ने जँभाई लेते हुए करवट ली। "हाय भगवान्!" उसने कराहते हुए कहा।

विजय को उसका कण्ठस्वर कुछ परिचित-सा लगा। वह तख्त के कुछ और पास पहुँच गया।

"मालिक जालिमों को गारत करे।" कहकर कैदी उठ बैठा। विजय की उससे आँखें चार हो गईं।

"तुम यहाँ, विजयपाल जी!" कैदी ने सहसा जैसे चौंकते हुए कहा।

"सरदार कुशलपाल जी!" विजय ने भी आश्चर्य के साथ कहा।

"ठीक, ठीक; तुम मुझे पहचानते हो! पर अब मेरा दूसरा नाम है। यहाँ मैं 'पुरबिया' के नाम से मशहूर हूँ। कैदियों का नाम याद रखने में सहूलियत हो, इसलिए यहाँ के लोग उनके मनमाने नाम रख लेते हैं।" बनावटी कुशलपाल ने कहा।

"पर आप पुरबिया तो हैं नहीं?" विजय ने कहा।

"इसे कौन देखता-जानता है। मेरा रिश्ता कन्नौज से जोड़ा गया है तो मुझे पुरबिया होना चाहिए।" घृणापूर्ण मुस्कान के साथ कुशलपाल ने सफाई दी।

"आप यहाँ कैद में हैं क्या?" कुछ आश्चर्य प्रकट करते हुए विजयपाल ने कहा।

"और आप क्या ससुराल में समझ रहे हैं?" उसके आश्चर्य का समाधान-सा करते हुए बनावटी कुशलपाल ने कहा।

"तब दुश्मनों को हमारा भेद मालूम हो चुका है?" वार्त्तालाप को मुख्य प्रसंग की ओर मोड़ते हुए विजय ने कहा।

"मेरा अन्दाज भी यही है।" बनावटी कुशलपाल ने एक खास अदा से मुँह बनाते हुए कहा।

"और इसका श्रेय आपको है?" विजय ने अपना आन्तरिक क्षोभ प्रकट करते हुए व्यंग्य किया।

"पर इस प्रकार की मुलाकतें मुझे कतई पसन्द नहीं हैं।" कुछ उदासी के साथ बनावटी कुशलपाल ने कहा।

"आखिर क्यों ?"

"ऐसी मुलाकातें अपने पीछे गम छिपाये रहती हैं ?"

"यानी ?"

"माफ कीजिए। आपका तजर्बा बहुत कम है। आप हर एक पर इतनी जल्दी यकीन कर लेते हैं कि......।"

"किस पर मैंने विश्वास कर लिया ?"

"मेरा मतलब किसी खास शख्स से नहीं है। यही आज की ही बात ले लीजिए। आपको क्या मालूम कि आप हमसे जो बातचीत कर रहे हैं, उसे कोई तीसरा नहीं सुन रहा है।"

"तीसरा यहाँ कौन बैठा है ?" इधर-उधर देखते हुए विजयपाल ने कहा।

"यों जाहिरा कोई भी न बैठा हो, पर ऐसी बातें सुनने के लिए दीवाल के भी कान हो जाते हैं और खासकर ऐसी जगह में, जैसी कि यह बादलगढ़ है।"

विजय चुप सुनता रहा।

"आपको एक बात बतलाता हूँ जो आपके बहुत काम की होगी, आप यहाँ से चले जायँ, उस हालत में भी और यहाँ रहें उस हालत में भी।"

"कहिए; मैं सुन रहा हूँ।"

"आप हर एक का इतना जल्द विश्वास न कर लिया कीजिए। साथ ही जबान से जब कुछ कहा कीजिए, बहुत देख-भाल कर! बुजुर्गों का कौल है कि साजिशकार के दो आँखें अगर आगे हों तो चार आँखें पीछे होनी चाहिएँ। मतलब यह कि उसे आगे देखने की उतनी जरूरत नहीं है, जितनी कि पीछे देखने की।"

विजय की समझ में आ गया कि वह क्या भूल कर रहा था। वह बनावटी कुशलपाल की ओर ध्यान से देखता हुआ चुपचाप खड़ा रहा।

"शेख साहब भी पकड़ गये हैं, क्या ?" कुछ देर के पसोपेश के बाद बनावटी कुशलपाल ने पूछा।

"कह नहीं सकता। मैं खुद आपसे पूछनेवाला था।" विजय ने साधारण भाव से उत्तर दिया।

"शायद वे भी गिरफ्तार हो गये होंगे। आप किसी लड़की को को उनके पास छोड़ आये थे ?"

"आपको कैसे मालूम हुआ ?"

"दुनिया में किसी चीज को छिपा रखना मुश्किल है। और फिर ऐसी चीज को जो रोशन हो ! खैर, मेरा मतलब यह है कि उस लड़की ने सारा राज खोल दिया होगा। औरत जात...!"

"असम्भव ! वह लड़की बहुत समझदार है और साहसी भी। फिर हमारा कोई भेद उसे मालूम नहीं।"

"औरत से कुछ भी नहीं छिपता।"

"यह मैं नहीं मान सकता। और मान लो, उसे कुछ मालूम भी हो तो वह कभी किसी को नहीं बतायेगी।"

"आप फिर गलती कर रहे हैं। औरत के दिल की बात जान लेना जरा भी मुश्किल नहीं है। आप किसी औरत से बातचीत शुरू भर कर दीजिए। वह आप से आप अपने भेद की सारी बातें आपको बताने लगेगी। और अगर कहीं उसे थोड़ा-बहुत डरा धमका दिया जाय, तब तो कहना ही क्या ? जो कुछ चाहिए, कहला लीजिए।"

"नन्दा ऐसी धमकियों में नहीं आ सकती। वह मुझे प्राणों से अधिक प्यार करती है !"

"प्यार करती है तब तो और मुश्किल है। प्यार एक ऐसी चीज है जो औरत के दिमाग को खोल देती है। ऐसी औरतें इशारा पाते

ही तोते की तरह पढ़ने लगती हैं। वही तो कहता हूँ कि अभी आपको दुनिया का तजर्बा नहीं है। खैर, जाने दीजिए इन बातों को। अपना हाल सुनाइए।"

"मैं जैसा कुछ हूँ, सामने हाजिर हूँ।"

"मेरा मतलब है, वक्त कैसे काटते हैं?"

"दिन सोकर, रात कविता लिखकर, पड़ोसियों से बातें करके, दीवाल में छेद करके या सेब-केले खाकर!"

"ये सब चीजें कहाँ से मिल जाती हैं?"

"किसी न किसी तरह मिल ही जाती हैं?"

"कोई कुछ कहता नहीं?"

"किसी को कुछ मालूम हो तब न! और फिर अकेला मैं ही यह सब करूँ, तब तो कुछ बात भी हो। यहाँ तो हर एक यही कहता है।"

नकली कुशलपाल ने आश्चर्य के साथ विजयपाल की ओर देखा। फिर कुछ सोचकर कहा—"अच्छा, यह बताइए कि क्या यह सच है कि आपको मौत की सजा दी गई है?"

"मुझे?" इस अप्रत्याशित प्रश्न से भौंचक्का-सा होकर विजय ने कहा।

नकली कुशलपाल ने सिर हिला दिया।

"आपको कैसे मालूम हुआ?" सिहरते हुए विजयपाल ने पूछा।

"आज सबेरे ही सुना था कि बीस कैदियों के लिए सजाये मौत का हुक्म हुआ है। उनमें आपका नाम था, और मेरा भी!"

"आपकी सूचना ठीक हो सकती है। मैं भी यही अनुमान कर रहा था। फिर भी आप निश्चिन्त-से दिखाई देते हैं।"

"सचमुच?"

"हाँ, आपके चेहरे से घबड़ाहट का कोई लक्षण प्रकट नहीं होता। सचमुच आप वीर हैं। मैं नहीं समझता था कि आप ऐसे साहसी हैं।"

"आपको इससे तअज्जुब होता है?"

"बेशक!"

"इसमें तअज्जुब की क्या बात है। हमारे और आपके जैसे पेशे-वाले सर पर कफन बाँधकर तो बाहर निकलते ही हैं। न जाने कब मल्कुलमौत का पैगाम मिल जायं। तब कहाँ कफन खोजते फिरेंगे!"

"लेकिन मैं...?"

"आप इसके लिए अभी तैयार नहीं हैं, यही न?"

"मैं कुछ दिन और जिन्दा रहना चाहता था।"

"तब आपने सचमुच बेवकूफी की। मेरा मतलब यह है कि जिन्दगी का लालच जब आपके मद्दे नजर था तब आपको ऐसे खतर-नाक काम में हाथ नहीं डालना चाहिए था।"

"गुट्ट में शामिल होते वक्त उस तरह का कोई लालच मेरे सामने नहीं था।"

"अब?"

"अब क्या? अब तो जो होना था, वह हो चुका। कदम आगे बढ़ाकर फिर पीछे नहीं लौटाया जा सकता।"

"शाबाश! आपसे मैं ऐसी ही उम्मीद रखता था। क्या आपको हवस में ले गये थे?"

"ले तो गए थे, पर तकलीफ नहीं दी।"

"तो अब दी जायगी।"

"क्यों?"

"यहाँ का शायद यही कायदा है कि एक दिन मुजरिम को वहाँ ले जाकर सब चीजें दिखाते समझाते हैं। फिर उसे दो-चार दिन सोचने-समझने का मौका देते हैं। अगर असामी फिर भी अपनी बात पर कायम रहता है तो उसे तकलीफें देते हैं। मेरे साथ ऐसा हो चुका है।"

"यानी आपको तकलीफें दी जा चुकी हैं।"

"देखते नहीं", अपने फटे वस्त्रों और घुटनों में लगे जख्मों की ओर, जिनमें जगह-जगह पर पट्टियाँ बँधी थीं, संकेत करते हुए बनावटी कुशलपाल ने कहा।

"आपको कौन-सी तकलीफ दी गई थी?"

"पानीवाली! पाँच चिलमचियाँ पानी मेरे पेट में ढकेल दिया गया था।"

"कष्ट तो बहुत हुआ होगा?" कुछ काँपती आवाज से विजय-पाल ने पूछा।

"क्या कहना! पर अब सब ठीक है। यहाँ तो ऐसी तबीअत पाई है कि ऐसी-वैसी तकलीफें याद भी नहीं रहतीं। हाँ, यह जरूर हुआ है कि उस दिन से आँतों ने छुट्टी-सी ले रक्खी है। शोरवा तक हजम करना नहीं चाहतीं।"

"आपका साहस मेरे लिए अच्छा उदाहरण है?"

"पर आपने क्या तय किया है?" क्या आपका इरादा कुछ भी नहीं बताने का है!"

"बेशक!"

"आप अभी कह रहे थे न कि जिन्दगी का थोड़ा-सा लोभ आप में बाकी है?"

"वह बात सच है, फिर भी मैं उस तरीके से जिन्दा रहना पसन्द नहीं करता।"

"मुझे यकीन है। फिर भी अगर आप चाहें तो मुहाफिज को एक-दो बातें बताकर उन तकलीफों से बच सकते हैं।"

"मैं ऐसा नहीं कर सकता। खैर, अभी आप कह रहे थे न कि मुझे मौत की सजा देना तय हुआ है?"

"मुझसे खुद मुहाफिज ने कहा था।"

विजय का मुँह सूख गया। उसका यह भाव-परिवर्तन नकली कुशलपाल से छिपा न रह सका। विजय की परेशानी का लाभ उठाते

हुए उसने कहा—"फिर भी मेरी सलाह यही है कि आप थोड़ा-बहुत इकबाल करके अपनी जान बचा लें तो अच्छा होगा।"

"जो काम आपने नहीं किया, उसे करने की सलाह मुझे क्यों दे रहे हैं ?" चिन्ता और सन्देह के स्वर में विजय ने प्रश्न किया।

"हम दोनों की हालतों में काफी फर्क है। मेरे आगे-पीछे कोई नहीं है। मेरे मरने पर किसी के फूल जैसे नाजुक दिल को सदमा नहीं होगा; किसी की सीप जैसी आँखें आँसू नहीं बहायेंगी।"

विजय को तुरन्त नन्दा का ध्यान आ गया। उसने एक गहरी साँस ली।

"आप समझ गए न कि हम दोनों की हालतों में किस हद तक जमीन-आसमान का फर्क है। अपनी तरह मुझे भी साँसें भरते कभी आपने देखा है ?"

"कोई चिन्ता नहीं। शेख साहब तो हैं ही, मेरे पीछे वे उसकी रक्षा करेंगे ?"

"और अगर वे भी गिरफ्तार कर लिये गये, जो गैर मुमकिन नहीं है ?"

"तब......?"

"हाँ, उस हालत में क्या होगा ?"

"जो और हजारों विधवाओं की रक्षा करता है, वह उसकी भी रक्षा करेगा।"

आपका लड़कपन अभी नहीं गया !"

"कैसे ?"

"मान लीजिए कि शेख साहब गिरफ़तार नहीं हुए ?"

"तब ?"

"तब क्या वे उसके साथ......!"

"चुप रहिए !"

"अपनी सफेद दाढ़ी पर स्याही पोतना उन्हें कैसे गवारा होगा !"

"वैसी स्याही सब पसन्द करते हैं। इसी लिए तो लोग खिजाब लगाना पसन्द करते हैं, पेठे का पानी* लगाना नहीं।"

"मैं ऐसी बातें खयाल में लाना भी नहीं चाहता !"

"नहीं-नहीं, मेरा मतलब यह नहीं है कि आप ऐसी बातों के पीछे परेशान हों। मैंने तो ऐसे ही मामूली-सी एक बात कह दी थी।"

"कोई इधर ही आ रहा है।" एक व्यक्ति की ओर संकेत करते हुए विजयपाल ने कहा, जो उसी की ओर चला आ रहा था।

बनावटी कुशलपाल भी उसकी ओर देखने लगा। फिर बोला—"हमारी मुलाकात का वक्त शायद खत्म हो चुका है। यह कहकर वह फिर चुपचाप तख्त पर लेट गया।

इसी बीच जँगलेदार किवाड़ खुले और जेलदार भीतर आया। विजय को सम्बोधित करते हुए उसने कहा—"अपने साथी से बात-चीत करके आपकी तबीअत जरूर हलकी हुई होगी !"

"बेशक, सरदार साहब मेरे पुराने मुलाकाती हैं।"

"तब तो मेरे लिए मुश्किल है। लेकिन खैर, मैं आपको जबान दे चुका हूँ। आपको मैं दिन में एक बार यहाँ आकर सरदार साहब से बातचीत करने की रियायत दे सकता हूँ। आप किस वक्त आना पसन्द करेंगे, सबेरे को या शाम के वक्त ?"

विजय कुशलपाल की ओर देखने लगा।

"इसी वक्त ठीक रहेगा।" जल्दी से कुशलपाल ने कह दिया।

"अच्छी बात है।" कहकर जेलदार ने विजयपाल की ओर रुख किया।

दोनों ने एक-दूसरे को अभिवादन किया। इसके बाद विजय उठ-कर जेलदार के साथ-साथ अपनी कोठरी की ओर चल दिया।

---

*पेठे के पानी से काले बाल सफेद हो जाते हैं।

हुए उसने कहा—"फिर भी मेरी सलाह यही है कि आप थोड़ा-बहुत इकबाल करके अपनी जान बचा लें तो अच्छा होगा।"

"जो काम आपने नहीं किया, उसे करने की सलाह मुझे क्यों दे रहें हैं ?" चिन्ता और सन्देह के स्वर में विजय ने प्रश्न किया।

"हम दोनों की हालतों में काफी फर्क है। मेरे आगे-पीछे कोई नहीं है। मेरे मरने पर किसी के फूल जैसे नाजुक दिल को सदमा नहीं होगा; किसी की सीप जैसी आँखें आँसू नहीं बहायेंगी।"

विजय को तुरन्त नन्दा का ध्यान आ गया। उसने एक गहरी साँस ली।

"आप समझ गए न कि हम दोनों की हालतों में किस हद तक जमीन-आसमान का फर्क है। अपनी तरह मुझे भी साँसें भरते कभी आपने देखा है ?"

"कोई चिन्ता नहीं। शेख साहब तो हैं ही, मेरे पीछे वे उसकी रक्षा करेंगे ?"

"और अगर वे भी गिरफ्तार कर लिये गये, जो गैर मुमकिन नहीं है ?"

"तब......?"

"हाँ, उस हालत में क्या होगा ?"

"जो और हजारों विधवाओं की रक्षा करता है, वह उसकी भी रक्षा करेगा।"

आपका लड़कपन अभी नहीं गया !"

"कैसे ?"

"मान लीजिए कि शेख साहब गिरफ्तार नहीं हुए ?"

"तब ?"

"तब क्या वे उसके साथ......!"

"चुप रहिए !"

"क्यों ?"

"अपनी सफेद दाढ़ी पर स्याही पोतना उन्हें कैसे गवारा होगा !"

"वैसी स्याही सब पसन्द करते हैं। इसी लिए तो लोग खिजाब लगाना पसन्द करते हैं, पेठे का पानी* लगाना नहीं।"

"मैं ऐसी बातें खयाल में लाना भी नहीं चाहता !"

"नहीं-नहीं, मेरा मतलब यह नहीं है कि आप ऐसी बातों के पीछे परेशान हों। मैंने तो ऐसे ही मामूली-सी एक बात कह दी थी।"

"कोई इधर ही आ रहा है।" एक व्यक्ति की ओर संकेत करते हुए विजयपाल ने कहा, जो उसी की ओर चला आ रहा था।

बनावटी कुशलपाल भी उसकी ओर देखने लगा। फिर बोला—"हमारी मुलाकात का वक्त शायद खत्म हो चुका है। यह कहकर वह फिर चुपचाप तख्त पर लेट गया।

इसी बीच जँगलेदार किवाड़ खुले और जेलदार भीतर आया। विजय को सम्बोधित करते हुए उसने कहा—"अपने साथी से बातचीत करके आपकी तबीअत जरूर हलकी हुई होगी !"

"बेशक, सरदार साहब मेरे पुराने मुलाकाती हैं।"

"तब तो मेरे लिए मुश्किल है। लेकिन खैर, मैं आपको जबान दे चुका हूँ। आपको मैं दिन में एक बार यहाँ आकर सरदार साहब से बातचीत करने की रियायत दे सकता हूँ। आप किस वक्त आना पसन्द करेंगे, सबेरे को या शाम के वक्त ?"

विजय कुशलपाल की ओर देखने लगा।

"इसी वक्त ठीक रहेगा।" जल्दी से कुशलपाल ने कह दिया।

"अच्छी बात है।" कहकर जेलदार ने विजयपाल की ओर रुख किया।

दोनों ने एक-दूसरे को अभिवादन किया। इसके बाद विजय उठकर जेलदार के साथ-साथ अपनी कोठरी की ओर चल दिया।

---

*पेठे के पानी से काले बाल सफेद हो जाते हैं।

(३१)

अपनी कोठरी में लौट आने पर विजयपाल ने देखा कि अमजद खाँ उसकी प्रतीक्षा में झरोखे के पीछे बैठे हैं। उसने तुरन्त तिपाई खींचकर दीवाल के पास लगा ली और उस पर खड़े होकर धीरे से कहा—"मैं भेंट कर आया ?"

"किससे ?" अमजद खाँ ने प्रश्न किया।

"एक जान-पहचान के कैदी से !"

"क्या नाम है उसका !"

"सरदार कुशलपाल !"

"सरदार कुशलपाल ?"

"हाँ, आप क्या उन्हें जानते हैं !"

"जरूर ! माछीवाड़ेवाले न ?"

"हाँ, वे ही तो !"

"जो शेख कमाल वियावानी के शागिर्द बनकर यहाँ सराय फिरोजी में रहते थे ?"

"वही ! कैसे आदमी हैं वे !"

"मुगलों के जानी दुश्मन !"

"ठीक है। यही मैं भी समझ रहा था !"

"उनसे हमारे तअल्लुकात बहुत पुराने हैं। क्या वे भी बादल-गढ़ में हैं ?"

"हाँ।"

अमजद खाँ ने एक गहरी साँस ली। फिर कहा—"कब गिरफ़ार किए गए?"

"शायद मेरे साथ ही!"

"आदमी बहुत दिलावर और ठिकाने का है!"

"मेरा खयाल भी ऐसा ही है।"

"मुअतबिर आदमी है।"

"यही चाहिए। मेरे तीन दोस्तों की जानें उसी के हाथ में हैं!"

"एक आप, दो और कौन?"

"मैं अपने को नहीं गिनता।"

"क्यों!"

"मुझे तो मौत की सजा दी जा चुकी है!"

"मौत की सजा?"

"और नहीं तो क्या!"

"झूठ है!"

"झूठ है?" हृदय में एक सिहरन-सी अनुभव करते हुए विजयपाल ने कहा!

"झूठ नहीं तो क्या है! इस बुर्ज में हम पाँच-छः कैदी एक ही तरह के हैं। हमारे मुकदमे की समाअत के लिए अदालत सालसी की तजवीज होगी और जो सजा दी जायगी वह सबके लिए एक-सी होगी!"

"आपको यह सब कैसे मालूम हुआ!"

"शाह साहब से जेलदार की बातचीत हुई थी!"

"मगर कुशलपाल भी झूठ नहीं बोलेंगे।"

"हो सकता है उन्हें गलत खबर मिली हो!"

"कह रहे थे कि खुद मुहाफिज ने उसे कहा है।"

"मुहाफिज अकसर शरारतभरी बातें करता है। उस पर ज्यादा यकीन नहीं किया जा सकता।"

इसी समय शाह साहब भी अपनी ओर के झरोखे के पीछे आ गये और उन्होंने विजय को संकेत किया। विजय ने तिपाई खींचकर उस झरोखे के नीचे लगा ली।

"सुनते हो मियाँ?" शाह साहब ने पुकारा।

"जी!"

"आज सवेरे जेलदार दरवाजे के सामने खड़ा मोहतसिब से बतला रहा था कि हम लोगों के मामले की समाअत के लिए आज ही अदालत सालसी बैठ रही है।

"उन्हें जो कुछ करना होगा, करेंगे ही!"

"अरे मियाँ करेंगे क्या! बिहश्त से भी आगे कहीं ले जायँगे?" कहकर शाह ने हँस दिया।

विजय को उस स्वप्न की याद आ गई जिसमें उसने स्वयं को स्वर्गीय सम्राट् हेमू विक्रमादित्य के साथ स्वर्ग की ओर जाते अनुभव किया था। उसकी इच्छा हुई की वह किसी प्रकार अपने को कोठरी के घनीभूत अंधकार में विलीन कर दे।

इसी समय उसे कोठरी में हलके प्रकाश की झलक दिखाई दी और कोठरी के दरवाजे पर कुछ शब्द सुनाई दिया। उसे लगा अंतिम क्षण आ पहुँचा है। तिपाई को यथास्थान रखकर वह तख्त पर स्थिर भाव से बैठ गया। आठ सशस्त्र सिपाहियों, जेलदार और एक मुंशी के साथ एक उच्च अधिकारी ने उसकी कोठरी में प्रवेश किया। विजयपाल उठकर खड़ा हो गया।

"शाहजादे साहब, अदालती सालसी ने आपको कत्ल और बगावत के जुर्मों का मुलजिम करार दिया है। अगर आप अपनी तरफ से कुछ सफाई पेश करना चाहते हों तो कर सकते हैं। आपके बयान को कलमबन्द करने की गरज से ही हम लोग आपको तकलीफ देने आये हैं। अगर आप इसकी तैयारी के वास्ते कुछ मियाद चाहते हों तो वह भी खुशी से मंजूर की जा सकती है; बशर्ते कि आप दो

दिन से ज्यादा वक्त न लें। अगर आप कुछ बयान इस वक्त देना चाहें और उनकी बिना पर अपने मामले पर दोबारा गौर करने की दरख्वास्त करें तो मैं उसके वास्ते भी अदालत से सिफारिश कर सकता हूँ। अपने मामले के कागजात आप देखना चाहें तो वे भी हाजिर हैं। आपके खिलाफ जो कुछ शहादत पेश हुई है वह भी मौजूद है! चाहें तो उसका भी मुताला कर सकते हैं।" अधिकारी ने कहा।

"मैं सिर्फ सजा का हुक्म सुनना चाहता हूँ, और कुछ नहीं।" विजय ने वीरोचित दृढ़ता के साथ कहा।

"इतनी जिद अच्छी नहीं होती, शाहजादे साहब! बेहतर हो कि आप इकबाल कर लें। आपकी इस भोली सूरत पर मुझे तरस आता है।" उच्च अधिकारी ने फिर कहा।

"जब मैं यही नहीं जानता कि मुझे किस बिना पर कातिल और बागी ठहराया गया है, तब मैं क्या बतलाऊँ?"

"आप जानना चाहते हैं! अच्छा सुनिए! आप कन्नौज से जनाब वकील मुतलक को कत्ल करने के इरादे से चले और आगरे आये। वहाँ से आप चलकर सराय फिरोजी पहुँचे और एक और शख्स के पास, जिसका नाम सरदार कुशलपाल है और जो खुद खानखानाँ के कत्ल की घात में एक मुद्दत से है, आकर ठहरे।" नर्मी के साथ उच्च अधिकारी ने दोहरा दिया।

"इन लोगों से कुछ छिपा नहीं है?' विजय ने मन में सोचा। फिर कहा—"अगर यह तोहमतें सच भी हों तो आपके पास—अदालत के पास—इनकी सचाई का क्या सबूत है? मान लीजिए कि मैं इसी इरादे से चला था, जैसा कि आप फरमाते हैं, पर न तो मैंने किसी पर हाथ उठाया और न किसी से कुछ कहा। इस हालत में मैं किसी अपराध-विशेष का अपराधी कैसे माना जा सकता हूँ?"

"आपका कहना ठीक हो सकता है। पर आपके साथियों से अदालत को आपके इरादे का पता लग गया है।"

"यानी सरदार कुशलपाल ने मुखबिरी की है ?"

"मेरा मतलब आपके दूसरे साथियों से है।"

"दूसरे साथियों से ? क्या मेरे और सरदार कुशलपाल जी के अलावा और लोग भी गिरफ़्त में हैं ?" आश्चर्य के साथ विजयपाल ने प्रश्न किया।

"हाँ, मुराद बेग, इम्दाद खाँ और चम्पालाल।"

"मैं समझा नहीं।" मन में कँपकँपी जैसी अनुभव करते हुए विजयपाल ने कहा।

"आप क्या नहीं समझे ? मुराद बेग, इम्दाद खाँ और चम्पालाल गिरफ्तार करके ग्वालियर के किले में पहुँचा दिये गये हैं जहाँ उनके मामले की तफतीश हो रही है।"

"मुराद बेग गिरफ्तार हो गये ? नामुमकिन !" कुछ ऊँचे स्वर में विजय ने कहा।

अधिकारी इससे कुछ भी विचलित नहीं हुआ। उसने शान्ति के साथ कहा—"नामुमकिन क्यों ?"

"कन्नौज से लेकर कड़ा तक के लोग उन्हें जान से ज्यादा प्यार करते हैं।"

"जरूर करते होंगे। पर यकीन मानिए कि उन लोगों की गिरफ़्तारी हो गई और किसी को उँगली उठाने तक की हिम्मत नहीं हुई। सब अपना काम बदस्तूर कर रहे हैं। हाँ, कुछ लोग यह जानने की कोशिश जरूर कर रहे हैं कि उन लोगों की गर्दनकुशी किस जगह होगी। शायद, वे भी उस तमाशे में शामिल होना चाहते होंगे।"

"मुझे विश्वास नहीं होता।" विजय ने कुछ निरपेक्ष भाव से कहा।

"जरा कागज इधर देना।" कहते हुए अधिकारी ने मुंशी की ओर हाथ बढ़ाया और एक कागज निकालकर विजय के सामने करते

हुए कहा—"यह देखिए। यह उन लोगों के बयान हैं! क्या अब भी आपको शक है?"

"पर इसमें यह कहीं नहीं लिखा कि उन लोगों ने मुझे कसूरवार बतलाया है। सरसरी निगाह से कागज को पढ़ते हुए विजय ने कहा।"

"हम लोग जो कुछ जानना चाहते थे, वह सब उन्होंने बतला दिया है। उसी से आप कसूरवार साबित हो जाते हैं।"

"अच्छी बात है। तब मेरा इकबाल बेकार है। क्योंकि आप लोगों को सब कुछ मालूम हो ही चुका है।"

"आपका आखिरी जवाब यही है?"

"जी!"

"मोहतसिब साहब, फैसला पढ़ दीजिए।" मोहतसिब की ओर मुँह करके उसने आज्ञा दी।

मोहतसिब ने पढ़ा—

"खुदा के बन्दे और शाहंशाह आजम के सरपस्त सदरुस्सदूर वकीले मुतलक आलीजाह खानखानाँ बैरम खाँ को कत्ल करने और सल्तनत मुगलिया के निजाम में बेजा मदाखलत करने की साजिश का शरीक मुलजिम पाकर यह अदालत सरदार विजयपाल के लिए सजायेमौत तजवीज करती है। और अगर खुद शाहंशाह आलम या जनाब वकीले मुतलक साहब उस पर रहम करके किसी दूसरी सजा की सिफारिश न करें, यह हुक्म बिला तवक्कुफ अमल में लाया जाय, और नीज मुलजिम हाजा की सारी जायदाद मनकूला व गैरमनकूला जब्त करके जर नकद पर नीलाम फरोख्त कर दी जाय और उससे जो रकम वसूल हो उसे बतौर जुर्माना शाही खजाने में जमा कर दिया जाय। बदस्तखत मीर अद्ल जनाब हाजी मोहम्मद सीस्तानी और बमोहर अदालत के बतारीख··· ···।"

"बस बस! बीच में टोकते हुए विजयपाल ने कहा। वीरोचित साहस और दर्प इस समय उसके चेहरे पर झलक रहा था।"

"यानी सरदार कुशलपाल ने मुखबिरी की है ?"

"मेरा मतलब आपके दूसरे साथियों से है ।"

"दूसरे साथियों से ? क्या मेरे और सरदार कुशलपाल जी के अलावा और लोग भी गिरफ़्त में हैं ?" आश्चर्य के साथ विजयपाल ने प्रश्न किया ।

"हाँ, मुराद बेग, इम्दाद खाँ और चम्पालाल ।"

"मैं समझा नहीं ।" मन में कँपकँपी जैसी अनुभव करते हुए विजयपाल ने कहा ।

"आप क्या नहीं समझे ? मुराद बेग, इम्दाद खाँ और चम्पालाल गिरफ्तार करके ग्वालियर के किले में पहुँचा दिये गये हैं जहाँ उनके मामले की तफ़्तीश हो रही है ।"

"मुराद बेग गिरफ्तार हो गये ? नामुमकिन !" कुछ ऊँचे स्वर में विजय ने कहा ।

अधिकारी इससे कुछ भी विचलित नहीं हुआ । उसने शान्ति के साथ कहा—"नामुमकिन क्यों ?"

"कन्नौज से लेकर कड़ा तक के लोग उन्हें जान से ज्यादा प्यार करते हैं ।"

"जरूर करते होंगे । पर यकीन मानिए कि उन लोगों की गिरफ़्तारी हो गई और किसी को उँगली उठाने तक की हिम्मत नहीं हुई । सब अपना काम बदस्तूर कर रहे हैं । हाँ, कुछ लोग यह जानने की कोशिश जरूर कर रहे हैं कि उन लोगों की गर्दनकुशी किस जगह होगी । शायद, वे भी उस तमाशे में शामिल होना चाहते होंगे ।"

"मुझे विश्वास नहीं होता ।" विजय ने कुछ निरपेक्ष भाव से कहा ।

"जरा कागज इधर देना ।" कहते हुए अधिकारी ने मुंशी की ओर हाथ बढ़ाया और एक कागज निकालकर विजय के सामने करते

हुए कहा—"यह देखिए। यह उन लोगों के बयान हैं! क्या अब भी आपको शक है?"

"पर इसमें यह कहीं नहीं लिखा कि उन लोगों ने मुझे कसूरवार बतलाया है। सरसरी निगाह से काग़ज को पढ़ते हुए विजय ने कहा।"

"हम लोग जो कुछ जानना चाहते थे, वह सब उन्होंने बतला दिया है। उसी से आप कसूरवार साबित हो जाते हैं।"

"अच्छी बात है। तब मेरा इकबाल बेकार है। क्योंकि आप लोगों को सब कुछ मालूम हो ही चुका है।"

"आपका आखिरी जवाब यही है?"

"जी!"

"मोहतसिब साहब, फैसला पढ़ दीजिए।" मोहतसिब की ओर मुँह करके उसने आज्ञा दी।

मोहतसिब ने पढ़ा—

"खुदा के बन्दे और शाहंशाह आजम के सरपरस्त सदरुस्सदूर वकीले मुतलक आलीजाह खानखानाँ बैरम खाँ को कत्ल करने और सल्तनत मुगलिया के निजाम में बेजा मदाखलत करने की साजिश का शरीक मुलजिम पाकर यह अदालत सरदार विजयपाल के लिए सजायेमौत तजवीज करती है। और अगर खुद शाहंशाह आलम या जनाब वकीले मुतलक साहब उस पर रहम करके किसी दूसरी सजा की सिफारिश न करें, यह हुक्म बिला तवक्कुफ अमल में लाया जाय, और नीज मुलजिम हाजा की सारी जायदाद मनकूला व गैरमनकूला जब्त करके जर नकद पर नीलाम फरोख्त कर दी जाय और उससे जो रकम वसूल हो उसे बतौर जुर्माना शाही खजाने में जमा कर दिया जाय। बदस्तखत मीर अद्ल जनाब हाजी मोहम्मद सीस्तानी और बमोहर अदालत के बतारीख··· ···।"

"बस बस! बीच में टोकते हुए विजयपाल ने कहा। वीरोचित साहस और दर्प इस समय उसके चेहरे पर झलक रहा था।"

अधिकारी और मोहतसिब दोनों सन्नाटे में आकर उसकी ओर देखने लगे।

"इस आज्ञा का पालन कब किया जायगा ?"

"इसके लिए दूसरा हुक्मनामा जारी होगा।"

एक क्षण के लिए विजय को ऐसा लगा मानो उसकी आँखों के सामने अँधेरी झुकी आ रही है और उसका मस्तिष्क विचार-शून्य हो गया है। पर दूसरे ही क्षण उसने स्वयं को सँभाल लिया। फिर ओठों पर घृणापूर्ण मुस्कान लाते हुए उसने कहा—

"मैं उस सजा के लिए तैयार हूँ। पर मैं यह जानना चाहता हूँ कि यदि मैं मरने से पहले किसी विशेष रिआयत के लिए प्रार्थना करूँ तो वह मुझे दी जायगी ?"

"यह रिआयत की किस्म पर मुनहसिर करता है। पर मैं आपको यह यकीन दिला सकता हूँ कि आपके थोड़ा-सा भी इकबाल कर देने पर न सिर्फ सजा की मियाद बहुत दिनों के लिए टल सकती है, जनाब वकीले मुतलक आपको और भी बहुत-सी रिआयतें देना खुशी से मंजूर करेंगे।"

"आप गलत समझ गये। मैं जिस तरह की रिआयत चाहता हूँ उससे आपका या वकीले मुतलक का किसी तरह का कोई नुकसान नहीं होगा। हाँ मुफ्त में ही वे मुझे ममनून व मशकूर जरूर कर देंगे।"

"आप क्या रिआयत चाहते हैं ?"

"पहली बात तो मैं यह चाहता हूँ कि मेरी सम्पत्ति की जब्ती का हुक्म वापस ले लिया जाय। मेरे कोई औलाद नहीं है। इसलिए कुछ दिन बाद मेरी सारी सम्पत्ति, जो कि बहुत ज्यादा यों भी नहीं है, लामुहाला सरकारी खज़ाने में पहुँच जायगी, पर किसी खास सबब से अपनी मौत के कुछ दिन बाद तक मैं और उसे बचाये रखना चाहता हूँ।"

"इसका फैसला वकीले मुतलक ही कर सकते हैं।"

"दूसरी रिआयत और भी चाहता हूँ; पर मैं यह नहीं जानता कि उसे मंजूर करने का अधिकार किसको है!"

"पहले मुझे सुनाइए! फिर मैं बतला दूँगा कि किससे दरख्वास्त करने पर आपका काम चलेगा।"

"मैं एक लड़की से, जो आजकल शेख कमाल वियावानी की सरपरस्ती में है, और शेख साहब से एक बार भेंट करना चाहता हूँ।"

इस पर अधिकारी ने एक विचित्र प्रकार का मुँह बनाया, जिसका अर्थ विजय ने यह लगाया कि वह इस प्रकार की भेंट को उचित नहीं समझता। अतः उसने फिर प्रार्थना की—"मैं सिर्फ कुछ क्षणों के लिए मुलाकात चाहता हूँ; जहाँ भी आप लोग उचित समझें।"

"आपको इजाजत मिल सकती है।"

"मैं आपका बहुत ऋणी रहूँगा।" दो कदम आगे बढ़कर नम्रता से हाथ जोड़ते हुए विजय ने कहा।

"फिर भी एक शर्त है!"

"मैं हर एक शर्त मानने को तैयार हूँ।"

"आप अपनी सजा के बारे में दो में से किसी से भी कुछ न कहेंगे।"

"यह शर्त मुझे वैसे भी मंजूर है। कारण यह है कि उन दोनों जनों में एक तो ऐसा है जो मेरे प्राणदंड की आज्ञा सुनते ही बेहोश हो जायगा।"

"तब ठीक है। आपको और कुछ कहना है?"

"और कुछ नहीं कहना है।"

"तब अपने बयानों को एक बार पढ़ लीजिए और दस्तखत कर दीजिए।"

"विजय तख्त पर बैठ गया और कागज हाथ में लेकर उसने अपने नकारात्मक उत्तरों को ध्यान से पढ़ा। फिर उन्हें ठीक पाकर उसने हस्ताक्षर कर दिये और कागज अधिकारी को लौटाते हुए पूछा—

"आपके दर्शन एक बार और हो सकेंगे?"

"मैं ठीक से नहीं कह सकता।"

"अच्छा, तो अब परलोक में ही मिलेंगे।" कहकर विजय ने दोनों हाथ जोड़ कर नमस्कार किया।

कागज हाथ में लेकर उदास चेहरा लिये अधिकारी अपने दल के साथ कोठरी से बाहर हो गया।

अधिकारी के कह जाने पर भी विजय को विश्वास नहीं हुआ कि मृत्युदंड से पूर्व उसे शेख साहब या नन्दा दो में एक से भी मिलने का अवसर मिल सकेगा। वह यह भी समझ गया था कि जेलखाने में उसे अब अधिक दिन न रक्खा जायगा। इस दशा में नन्दा से कुछ कह जाना या उसके लिए कुछ व्यवस्था कर जाना उसे असम्भव ही दिखाई देता था। अन्त में उसने यह निश्चय किया कि एक पत्र लिखा जाय, नन्दा के नाम, जो वसीयत के रूप में हो। वह पत्र यदि किसी प्रकार नन्दा तक पहुँच गया तो नन्दा शेख साहब के द्वारा बैरम खाँ को वह पत्र दिखला सकेगी और संभव है कि बैरम खाँ दया करके नन्दा को मेरी पैतृक संपत्ति का अधिकारी स्वीकार कर ले। यदि ऐसा न भी हो सका तो नन्दा को उस पत्र से कुछ न कुछ सान्त्वना तो मिल ही जायगी और उसे निश्चय हो जायगा कि मैं उसे कितना प्यार करता था।

पर नन्दा के पास पत्र पहुँचेगा कैसे? जेलखाने का कोई अधिकारी ही यह कर सकता है। पर वे लोग इसकी चिन्ता क्यों करने लगे? जेलदार सहृदय प्रतीत होता है। उससे प्रार्थना की जाय तो सम्भव है वह इतना काम कर दे। पर नन्दा न जाने होगी कहाँ! वह उसे शेख साहब के पास छोड़ आया था। कुशलपाल गिरफ्तार हो गये हैं तो शेख साहब भी कैसे बचे रहे होंगे। उस दशा में नन्दा न जाने कहाँ की मारी कहाँ पहुँची होगी। सम्भव है, वह फिर गिरफ्तार करके

उसी स्त्री के पास पहुँचा दी गई हो। यदि ऐसा हुआ होगा तो नन्दा का छुटकारा इस बार असम्भव ही होगा। अब उस पर चौकी-पहरा कड़ा रहेगा। और विजयपाल का पत्र तो वहाँ तक अब किसी प्रकार न पहुँच सकेगा। उसे रामपाल की याद आई ! पर रामपाल का भी क्या ठिकाना। वह न जाने कहाँ पहुँचा होगा। सम्भव है, मेरी गिरफ़ारी की सूचना उसे मिल गई हो और वह कन्नौज लौट गया हो।

फिर भी पत्र उसे लिख डालना चाहिए। साँई के सौ खयाल ! वह पत्र लिखकर शाह साहब या श्रमजद खाँ को दे देगा। वे लोग किसी हिकमत से नन्दा के पास पहुँचा देंगे। और न पहुँचा सके तो फिर उपाय ही क्या है ! पर प्रत्येक दशा में पत्र उसे लिखना ही है। आज की रात उसके जीवन की आखिरी रात है। आज का एक-एक क्षण बहुमूल्य है। ऐसे अमूल्य समय को सोकर बरबाद नहीं करना चाहिए। फिर तो सोना ही सोना है।

वह उठ बैठा और शाह साहब के जँगले के नीचे पहुँचकर दीवाल ठोंकने लगा।

"क्या है ?"

"मैं पत्र लिखना चाहता हूँ।"

"इस वक्त !"

"जरूरत ही ऐसी आ पड़ी है !"

"भेजेंगे किस तरह ?"

"आपके हाथ !"

"मेरे हाथ !" शाह हँस पड़े। फिर बोले, "क्या कह रहे हैं आप ?"

"कोई मुलाकाती आयगा, उसे दे दूँगा।"

"कोई मुलाकाती आनेवाला है क्या ? पर यह बात यहाँ के लिए नई होगी।"

"नई होगी !"

"यहाँ के कैदियों को अक्सर मुलाकात करने की इजाजत नहीं मिलती। अगर मिलती भी है तो मुलाकात का ढंग भी अजीब रहता है। आते-जाते वक्त मुलाकाती की नंगाझार तलाशी ली जाती है। मुलाकात के वक्त भी उसे एक दीवाल के एक तरफ खड़ा करते हैं और असामी को दूसरी तरफ। जिससे दोनों एक-दूसरे की आवाज भर सुन पाते हैं, शक्ल नहीं देख पाते। उस पर मोहतमिम और सिपाही सर पर सवार रहते हैं। खैर, आप चाहें तो खत लिख सकते हैं। कागज, स्याही चाहिए क्या ?"

"जी, और रोशनी भी!"

"रोशनी अमजद खाँ से लीजिए।"

शाह ने कागज और कोयले की बत्तियाँ नीचे डाल दीं, जिन्हें विजय ने टटोलकर उठा लिया। इसके बाद वह अमजद खाँ को संकेत करने लगा।

"सलाम, कहिए खैरियत तो है न ?" अमजद खाँ ने ऊपर से पूछा।

"इनायत है! रोशनी दे सकेंगे आज ?"

"मजबूरी है। उस दिन मेरी सारी चीजें उठा ली गई हैं और तब से शोरबेदार तरकारी भी नहीं मिलती जिससे तेल चुरा सकूँ। सूखी दाल-रोटी मिल रही है। बड़ी मुसीबत है। क्या कीजिएगा रोशनी का ?"

"खत लिखना चाहता था!"

"कल सबेरे लिख लीजिए! ऐसी जल्दी क्या है!"

"वही करूँगा।" कहकर विजय अपने तख्त पर जा लेटा और मन ही मन सोचने लगा, "कल न जाने कैसा हो।"

इसी सोच-विचार में पड़े-पड़े न जाने कब उसे नींद आ गई। स्वप्न में उसने देखा, एक मैदान है। बड़ा लम्बा-चौड़ा। ऐसा

जिसका ओर-छोर नहीं दिखाई देता। वह उसी मैदान के बीचोंबीच खड़ा है। ऊपर धुँधला आसमान है, नीचे मटमैली जमीन। दाहिनी तरफ उसका घोड़ा खड़ा है और बाईं तरफ उसके कन्धे पर हाथ रक्खे नन्दा। नन्दा बहुत प्रसन्न दिखाई दे रही है। वह आँखें बन्द किये मन ही मन कुछ गुनगुना रही है, मानो स्तोत्र पढ़ रही हो।

इसी बीच उसे ऐसा लगता है मानो भूकम्प आ गया हो। जमीन थाली की तरह थरथराने लगती है। आसमान में धुआँ सा उड़ने लगता है। घोड़ा हिनहिनाकर भाग जाने की चेष्टा करता है। जमीन जगह-जगह दरक जाती है। नन्दा भयभीत हो जाती है और कहती है, "अब चलो भाग चलें कहीं, विपत्ति आनेवाली है।" विजय उत्तर देता है, "तुम्हें तो प्रत्येक समय भागना ही भागना सूझता है, नन्दा, मानो हम हरिण या खरगोश हों, जिनके पास भागने के सिवाय जान बचाने का दूसरा उपाय नहीं है। फिर भागकर जायँगे कहाँ, वह देखो उधर!" कहकर वह नन्दा को मैदान की चारों सीमाओं की ओर देखने का संकेत करता है, जहाँ से अनन्त जल-राशि उमड़कर मैदान को आप्लावित करती हुई उन्हीं की ओर आ रही है।

नन्दा भय से दोनों आँखें बन्द करती हुई कहती है—"तुम जो उचित समझो, वही करो, प्यारे विजय। तुम पास हो तो मुझे भय किसका है! हम दोनों साथ-साथ डूब मरें तो भी हर्ज नहीं है।" यह कहकर वह विजय की छाती से चिपट जाती है।

इसी समय विजय को एक भयानक शब्द सुनाई पड़ता है। वह ऊपर की ओर सिर उठाकर देखता है। आसमान कुम्हार के चाक की तरह जोर-जोर से चक्कर लगा रहा है! सूरज, चाँद, तारे और नक्षत्र टूट रहे है, जिससे यह शब्द हो रहा है। उनके आघात से पृथ्वी पत्ते की तरह काँप रही है। विजय समझता है, प्रलयकाल आ गया। वह नन्दा को छाती से सटाने के लिए दोनों बाहु खोल देता है।

पर उसके बाहु खुले के खुले ही रह गये। उसकी नींद खुल गई।

कमरे में आनेवाला मन्द प्रकाश सूचना दे रहा था कि बाहर सवेरा हो चुका है। इसी समय उसे ऐसा लगा मानो भीतर का दरवाजा खोला जा रहा है। कल की बातें बिजली की तरह उसके स्मृति पट पर चमक गईं। उसने समझा, बधिक उसे ले जाने के लिए आ पहुँचे हैं। आकस्मिक साहस का उसकी प्रत्येक धमनी में संचार हो उठा। वह तुरन्त उठ बैठा और अपने वस्त्र ठीक करने लगा जिसमें बधिक उसे आशा से पहले ही तैयार पाकर आश्चर्य में आ जायँ।

पर उसे यह देखकर स्वयं आश्चर्य हुआ कि आनेवाला व्यक्ति बधिक न होकर जेलदार था। विजय ने उत्कण्ठा के साथ उनके मुँह की ओर देखा। वहाँ कोई असाधारण भाव नहीं था। जेलदार ने नित्य के अपने नियम के अनुसार सलाम करके मुस्कराते हुए कहा—
"गोल चक्कर तक चलने की तकलीफ कीजिएगा?"

कारण पूछना विजय ने अनावश्यक समझा। वह चुपचाप उठकर जेलदार के पीछे हो लिया। उसे लगा, उसके कान हजारों मधुमक्खियों की सम्मिलित भनभनाहट से भर गये हैं। अब और किसी शब्द का सुनना-समझना उसके लिए संभव नहीं है।

रास्ते में उसने जेलदार से धीरे से प्रश्न किया—"गोल चक्कर में मुझे क्यों ले चल रहे हैं?"

सहज भाव से जेलदार ने उत्तर दिया—"मुलाकात के लिए।" विजय को लगा, इसी एक शब्द ने उसको आसमान से उतारकर फिर पृथ्वी पर रख दिया है जहाँ वह अपने पैर टिका सकता है। कानों में गूँजनेवाली भनभनाहट भी एक साथ बन्द हो गई। आशाभरी दृष्टि से जेलदार की ओर देखते हुए उसने फिर प्रश्न किया—
"कैसी मुलाकात!"

"कल मोहतसिब से मुलाकात के लिए आपने कहा था, न?"

"तो क्या वही लोग आये हैं ?" उत्सुकता को दबाने का असफल प्रयत्न करते हुए विजयपाल ने कहा।

"हाँ।" संक्षेप में जेलदार ने उत्तर दिया।

विजय एक क्षण के लिए उधेड़-बुन में पड़ गया। उसने दो व्यक्तियों से भेंट कराने की प्रार्थना की थी। जेलदार के इस संक्षिप्त-से उत्तर से वह यह निश्चय न कर सका कि शेख साहब मुलाकात के लिए आये हैं, या नन्दा, या दोनों। उसे जेलदार से और अधिक पूछने का साहस नहीं हुआ। वह चुपचाप उसके पीछे-पीछे चला गया। गोल चक्कर में एक साथ तीन बड़े-बड़े कमरे थे। दो बड़े-बड़े, अगल-बगल, एक बीच में, उनसे कुछ छोटा पर चौकोर। इसी बीचवाले कमरे में विजय को ले जाकर ठहराते हुए जेलदार ने कहा—"इसी चौकी पर तशरीफ रखिए! मुलाकात यहीं होगी।" विजय ने एक नज़र से कमरे का कोना-कोना देख डाला। वहाँ कोई नहीं था। 'शायद बाहर होंगे' सोचकर विजय पीछे वाले जँगले से बाहर की ओर झाँकने लगा। उधर एक संतरी पहरा दे रहा था।

कुछ देर बाद कमरे का द्वार खुला। विजयपाल ने घूमकर देखा शेख कमाल बियावानी स्थिर चरणों से कमरे में प्रवेश कर रहे थे। विजय को लगा, उनके आने से कमरे में सहसा पवित्रता और गंभीरता का प्रवेश हो गया है। वह दौड़कर शेख साहब के चरणों पर गिर पड़ा।

"इतनी परेशानी की क्या जरूरत है ?" उसे हाथ का सहारा देते हुए शेख ने कहा।

"आपने इस गरीब की प्रार्थना पर यहाँ पधारने का कष्ट किया।" हाथ जोड़ते हुए विजय ने कहा।

"उन्सियत और इन्सानियत का तकाजा यही था। शेख ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया।

"दुश्मनों ने आपको तो परेशान नहीं किया ?"

"मुझे कोई क्यों परेशान करता ? खासकर जब आप जैसे वफादार लोग मेरे दोस्त हैं।"

"मैं आपका एक छोटा-सा सेवक हूँ!"

"मैं उम्मीद करता हूँ कि दुश्मन ने तुम्हारे मुँह से कुछ न जान पाया होगा।" शेख ने इतनी धीमी आवाज से, जिसे केवल विजयपाल ही सुन सके, कहा।

"अपने शरीर का मैं विश्वास दिलाता हूँ। दूसरों के बारे में नहीं कह सकता।"

"यह इशारा किस तरफ है?"

"सरदार कुशलपाल भी तो बादलगढ़ की मेहमानी में हैं।"

"हाँ शायद! सुना कुछ मैंने भी था," बातें बनाते हुए बनावटी शेख (बैरम खाँ) ने कहा।

"उनके बारे में आपका क्या खयाल है?"

"मैं उस पर पूरा भरोसा करता हूँ।"

"तब ठीक है।"

"मुझे किस लिए याद किया गया?" प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए बनावटी शेख ने पूछा।

"आपके दर्शनों की बड़ी इच्छा थी। साथ ही उस लड़की के बारे में भी...।" कुछ लज्जा का अनुभव करते हुए विजय ने कहा।

"हाँ, उस लड़की के बारे में क्या कहना चाहते हैं?"

"उस समय जल्दी में मैं उसकी बाबत आपको ज्यादा न बता सका। मैं चाहता हूँ कि आज आपको सारी बातें बतला दूँ। पर पहले मैं यह जानना चाहता हूँ कि वह है कहाँ?"

"वहीं, उसी महल में, जहाँ रखने का मैंने तुमसे वादा किया था।"

"तब ठीक है। हाँ, मैं यह प्रार्थना करना चाहता था कि मैं पिछले एक वर्ष से उससे प्रेम कर रहा हूँ, और वह भी मुझसे बहुत प्रेम करती है। हमारा यह वर्ष एक सुख-स्वप्न की भाँति व्यतीत हो गया। अब जब मेरी आँखें खुलीं तब मैं बादलगढ़ की इन मोटी-मोटी दीवालों से घिरा हुआ हूँ। जब कि मैं उससे विवाह करने का स्वप्न अब भी देख रहा हूँ।"

"उसके मा-बाप की राय लिये बिना ही!" बीच में टोकते हुए बनावटी शेख ने कहा।

"मा-बाप उसके कोई नहीं हैं।"

"वह कह रही थी कि उसे उसके चाचा ने आगरे बुलाया था।"

"कहा उससे जरूर ऐसा ही गया था। पर यहाँ आकर उसने जो कुछ देखा और मुझे बतलाया, उससे मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि किसी ऐयाश मुगल अमीर ने धोखा देकर उसे थान से आगरे बुला लिया था और वह उसे खरीद कर अपने हरम में डाल लेना चाहता था।"

"तुम्हारे इस तरह सोचने की बुनियाद क्या है?"

"उस लड़की ने मुझसे कहा था कि आगरे में एक मनुष्य, जिसे उस घर के लोग आलीजाह और जहाँपनाह कहते हैं, रात के अँधेरे में छिपकर उससे मिलने आया था। इसके बाद उसने उसे बहुत-से कीमती कीमती जेवर और कपड़े दिये। उन चीजों को मैंने अपनी आँखों देखा था। फिर वह यहाँ जिस मकान में रक्खी गई थी वह भी कुछ ऐसा ही था। मेरा मतलब यह है कि वहाँ जिस तरह का साजो-सामान था, वैसा भले आदमियों के घर में नहीं होता। उन चीजों को देखकर नन्दा बहुत डर गई और एक पत्र-द्वारा उसने मुझे बुला भेजा। जब मैं उससे जाकर मिला तब उसने बाहर आने की जिद की। इसी लिए मैं उसे वहाँ से निकालकर आपके पास कर आया।"

"अब आप क्या चाहते हैं ?"

"अब मैं चाहता हूँ कि किसी तरह हम दोनों विवाह के पवित्र बन्धन में बँध जायँ ।"

"इस हालत में ब्याह रचाना क्या मुनासिब होगा ?"

"कम से कम मैं ऐसा ही समझता हूँ ।"

"तुम जानते ही हो कि तुम्हें क्या सजा मिल सकती है । उस हालत में उस लड़की की जिन्दगी बरबाद करने से क्या फायदा होगा ?"

"मैं अपने फायदे के खयाल में नहीं, उस लड़की के फायदे के लिए ही ऐसा करना चाहता हूँ ।"

"यानी इधर आप सजा के लिए तैयार हैं उधर ब्याह भी रचाना चाहते हैं !"

"सजा के लिए तो मैं उसी दिन तैयार हो गया था जिस दिन मैंने इस काम में हाथ डाला था । क्योंकि जो आदमी दूसरे की जान लेने को निकलता है, वह अपनी जान से पहले हाथ धो लेता है । पर ब्याह करने का विचार मेरे दिल में अभी आया है, और वह भी एक खास मतलब से । उस लड़की का कहीं कोई नहीं है, न कहीं उसको पैर रखने का ठिकाना ही है । मैं यह भी निश्चय रूप से जानता हूँ कि मेरे सिवाय वह किसी से प्रेम नहीं करती, और न कर ही सकती है । मुझे यह भी विश्वास है कि मेरी मृत्यु के बाद वह किसी से विवाह कर लेने का विचार तक नहीं कर सकती । इस दशा में मैं यही उचित समझ रहा हूँ कि उसके लिए आजीविका का कुछ निश्चित साधन छोड़ जाऊँ । आप जानते ही हैं कि मेरे पास पैतृक सम्पत्ति है जो अधिक न होने पर भी इतनी अवश्य है कि नन्दा की जिन्दगी पार कर सकती है । पर मेरी सम्पत्ति पर उसका अधिकार मेरी पत्नी बनने पर ही हो सकता है । इसी लिए मैंने प्रार्थना की है कि मेरी सम्पत्ति की

जब्ती न हो। यदि बादशाह और खानखानाँ साहब को आप यह जता दें कि मैं ऐसा क्यों चाहता हूँ तो वे निस्सन्देह मेरी प्रार्थना मंजूर कर लेंगे।"

"मान लो कि कोई तदबीर ऐसी निकल आये कि तुम यहाँ से निकल सको! उस हालत में तुम उस लड़की से शादी करके अपने घर पर आराम से रह सकोगे?"

"इसकी योजना बनाने और पूरी करने के लिए बहुत समय चाहिए। इधर मुझे कुछ घड़ियाँ कट रही हैं।"

"ऐसा क्यों?" कुछ आश्चर्य का भाव दिखलाते हुए शेख ने पूछा।

विजय को अधिकारी की शर्त्त याद हो आई। वह चुप रहा।

"मैं समझ गया। तुम्हें सजा का हुक्म शायद सुना दिया गया है और इसी से तुम इस कदर परेशान दिखाई देते हो!"

विजय फिर भी चुप रहा।

"उस हालत में मेरी राय से बेहतर यह होगा कि तुम अपने गुनाह के लिए माँफी माँग लो!"

"गुनाह के लिए!" शेख-द्वारा अपने कार्य को गुनाह कहे जाने पर आश्चर्य के साथ विजयपाल ने कहा।

"किसी की जान लेना गुनाह ही है। भले ही अपने दल के लोग उसे सबाब कहें।"

"मगर माफी भी किस बहाने माँगी जाय। और मुझे यह विश्वास भी नहीं है कि बैरम खाँ मुझे माफ कर देगा।"

"मैं अपना तजरबा बतलाता हूँ। तुम जानते हो कि मैं भी बैरम खाँ का जानी दुश्मन हूँ और हर वक्त उसे मिटाने की घात में रहता हूँ। पर यह सयासी मामला है। जहाँ तक उसकी शख्शियत का

सवाल है, ऐसा रहमदिल और खुदापरस्त इन्सान इस जिन्दगी में मैंने दूसरा नहीं देखा। जब उसके साथ रहता हूँ, यही जी चाहता है कि उसके कदम चूम लूँ। वह बहुत ही नेक दिल और साफ़ बातिन है। मैं समझता हूँ कि अगर तुम उससे माफ़ी माँगो तो वह ज़रूर माफ कर देगा। बेकार खूँरेजी तो वह सयासी मामलात में भी पसन्द नहीं करता।"

"आप मेरे चाचा जी—महाराज विक्रमादित्य—की बात भूल जाते हैं। उन्हें बैरम खाँ ने ही अपने हाथ से कत्ल किया था।"

"वह मामला दूसरी क़िस्म का था। उस वक्त उसे कत्ल न किया जाता तो अफ़गानों के कब्जे ढीले नहीं पड़ते। फिर तरदी बेग के कत्ल के मामले पर भी स्याही पोतनी थी। दूसरे, जहाँ तक मैंने सुना है, हेमू राजा का कत्ल शेख गदाई के हाथ से हुआ था, बैरम खाँ के हाथ से नहीं। बैरम खाँ ने तो अकबर से यह कहते हुए साफ़ इनकार कर दिया था—

चे हाजत तेगे शाही रा
बखूँ हरकसे आलूदन।
तू बनशीं इशारात कुन
बः चश्मे या बः अबरूये।*

यह बात मैं बैरम खाँ की जुबान की ही कह रहा हूँ।

कुछ देर तक विजयपाल चुपचाप सोचता खड़ा रहा। फिर बोला—"इसे मान भी लूँ तो यह मामला अब मेरा निजी नहीं है। अब यह इज्तिमाई मसला है। मैं एक जमाअत के हुक्म से यहाँ आया था। अब जब तक वह जमाअत माफ़ी माँगने का फैसला न कर दे, मैं अकेला कैसे माफ़ी माँग सकता हूँ।"

---

* बादशाह की तलवार को हर किसी के खून से भीगने की क्या आवश्यकता। तू बैठा-बैठा आँख या भौं से इशारा किये जा।

"बुरा न मानना। मैं यहाँ पर यह जान लेना चाहता हूँ कि आपकी जमाअत में ऐसे कौन-कौन लोग थे जो खालिस सयासी मसले को मद्दे नजर रखते हुए साजिश में शामिल हुए थे, और जिनका किसी न किसी तरह का जाती बुग्ज बैरम खाँ से नहीं था ?"

"विजय क्षण भर तक खोया-खोया-सा खड़ा रहा। फिर बोला। आपका अनुमान ठीक है। हममें से हर एक जाती मसले को लेकर बैरम खाँ की जान का गाहक बना हुआ था। मगर जब एक ही इरादे के बहुत से लोग इकट्ठा हो गये तब वह मसला इज्तिमाई मसला बन गया। बड़े लोग इसे ही सयासत कह देते हैं।"

"ठीक है। अब वह जमाअत टूट गई, जैसा कि मैंने सुना है, और शायद कयामत से पहले दुबारा वजूद में नहीं आ सकती। इस हालत में वह जमाअती मसला फिर जाती मसला बन गया न! बुजुर्गों का कौल है कि अक्लमन्द पहले अपनी दाढ़ी का मसरका बुझाता है तब पड़ोसी की दाढ़ी पर निगाह डालता है।"

"मेरे प्रति आपका बहुत अधिक स्नेह है। इसी लिए आप ऐसा कह रहे हैं।"

"हो सकता है। फिर भी मैं फिलहाल इसे बुरा नहीं समझता। मैं जानता हूँ कि बैरम खाँ अब ज्यादा खूँरेजी करना नहीं चाहता। इसलिए तुम अगर दरख्वास्त करो तो वह जरूर मंजूर कर लेगा।"

"मेरी प्रार्थना है कि आप मुझे अपने रास्ते से अलग ले जाने की कोशिश न करें और इस मामले में मुझे मेरे भाग्य पर छोड़ दें।"

"अच्छी बात है। तुम माफी न माँगो। पर तुम अपने दोस्त अहबाब और खैर अन्देशों को इससे मना नहीं कर सकते। तुम्हारी ओर से माफी माँग लेने का उनको पूरा इख्तियार है।"

विजय ने कुछ भी नहीं कहा। कुछ देर तक उसके मनोभाव को समझने की चेष्टा करने के पश्चात् बनावटी शेख उठकर द्वार के पास

पहुँचा और उसने तीन बार कुंडी को खटखटाया। जेलदार हाथ जोड़े आकर हाजिर हो गया। "नीचे मेरी गाड़ी में एक लड़की बैठी है। उसे इज्जत के साथ यहाँ ले आया जाय।"

"जो हुक्म।" कहकर जेलदार उलटे पाँव लौट गया। इस आकस्मिक सूचना ने जैसे विजय की सारी जड़ता भंग कर दी। उसने छलकते हुए हृदय से पूछा—"क्या नन्दिनी भी आई है?"

"उसकी मुलाकात के लिए भी तो दरख्वास्त की थी न!"

"प्रार्थना तो अवश्य की थी पर आपको अकेला देखकर मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि उसकी मुलाकात की मंजूरी नहीं हुई।"

"बैरम खाँ ऐसा बेरहम नहीं है।" कहकर शेख ने अर्थभरी दृष्टि से विजयपाल की ओर देखा। इसी समय जेलदार के पीछे-पीछे नन्दा किवाड़ खोलकर कमरे में आई।

"रंज और मोहब्बत तखलिया पसन्द होते हैं" कहते हुए शेख ने बाहर को कदम बढ़ाये। जेलदार भी उनके पीछे-पीछे निकल गया।

नन्दा ने भीत मृगी की भाँति एक बार समूचे कमरे को देखा। इसी समय उसकी निगाह विजय पर पड़ी। वह सहसा दौड़कर उसे चिपट गई और उसकी छाती में मुँह छिपाकर फफक-फफककर रोने लगी। कुछ देर के लिए दोनों समय और परिस्थिति की सीमा से बाहर हो गये।

"नन्दा!" कुछ देर बाद विजय ने अपने को सँभालकर पुकारा। एक बार साहस करके नन्दा ने ऊपर को आँखें कीं। फिर मानो बच्चों की तरह डरकर उसने विजय की छाती में मुँह छिपा लिया। आँखें लगातार आँसू बरसा रही थीं।

"सुनो नन्दा!" विजय ने फिर पुकारा।

नन्दा इस बार कुछ सचेतन अवश्य हुई, पर उसकी बाँहें पूर्ववत् जकड़ी रहीं।

"मुझे बहुत-सी जरूरी बातें करनी हैं।" उसके मुँह को ऊपर उठाते हुए विजय ने कहा।

"क्या ?" बाहुबंधन को कुछ शिथिल करते हुए नन्दा ने कहा।

"ध्यान देकर सुनो, तो कहूँ।"

विजय को प्रेमपाश से मुक्त करती हुई नन्दा सीधी खड़ी हो गई। उसने एक बार आँखें पसारकर इधर-उधर देखा, फिर दोनों हथेलियों से आँखें ढक लीं।

"क्यों ?" विजय ने उसकी इस अद्भुत मुद्रा को देखते हुए कहा।

"बड़ी भयानक जगह है यह !"

"भयानक थी जरूर; पर अब नहीं है।"

"अब क्या हो गया ?"

"अब तुम जो यहाँ हो।"

नन्दा शर्मा गई।

"तुम देखती ही हो, नन्दा, कि मैं यहाँ कैद में हूँ और उन लोगों ने कृपा करके थोड़े ही समय के लिए हमारी मुलाकात मंजूर की है।" चेतावनी के स्वर में विजयपाल ने कहा।

"वे लोग कौन हैं ? उन्होंने तुम्हें यहाँ क्यों रख छोड़ा है ?"

"भोली बच्ची, तुम्हारी समझ में अब भी नहीं आया।"

"तुमने मुझे समझाया ही कब था ?"

"और किसी ने भी कुछ नहीं बताया ?"

"शेख साहब ने आज इधर आते-आते जरूर बताया था कि तुम यहाँ किसी को कत्ल करने आये थे, इसी लिए गिरफ्तार कर लिये गये। पर मैंने उस बात पर विश्वास नहीं किया। क्या वे ठीक कह रहे थे ? देखो, सच कहना ! अब कोई बात मुझसे छिपाना मत !"

"नहीं नन्दा, अब मैं कुछ न छिपाऊँगा। तुम जानती ही हो न, कि पूर्व का देश मुगलों का विरोधी है। वहाँ के लोग चाहते हैं कि मुगलों को हिन्दुस्तान से निकाल दिया जाय। हमारे कुछ मित्र भी ऐसा ही प्रयत्न कर रहे थे। अब तुम्हीं कहो नन्दा, कि यदि मैं उनका साथ न देता तो वे लोग मुझे कायर न कहते?"

"यह तो मैं समझ गई। पर यह बात मेरी समझ में अब भी नहीं आई कि वे लोग तो वहीं रहे, और तुम यहाँ चले आये! ऐसा किस कारण हुआ?"

वे लोग भी तो गिरफ्तार कर लिये गये हैं?" बात को बराने के लिए विजयपाल ने कहा।

"तुम्हारे सारे मित्र गिरफ्तार हो गये हैं! तब तो जरूर उन्हीं में से किसी ने मुखबिरी करके तुम्हें पकड़ा दिया होगा।"

"शायद यही हुआ। पर तुम खड़ी क्यों हो? बैठ जाओ न, जिसमें इतमीनान से बातचीत कर सके।"

नन्दा वहीं फर्श पर बैठ गई। विजय कुछ देर तक उसकी भोली-भाली मुखमुद्रा को एकटक देखता रहा। फिर बोला—"मेरे पीछे तुम्हें अधिक कष्ट तो नहीं हुआ? शेख जी का बर्ताव कैसा रहा?"

"शेख जी बहुत अच्छे आदमी हैं। पर उनकी एक बात से मुझे बड़ी हैरानी हुई। मैं तुमसे कहने ही वाली थी।"

"क्या, क्या!!" उत्सुकता से विजय ने पूछा।

"यही, कि उनकी बोली उस आदमी से बहुत कुछ मिलती-जुलती है जो आगरे के उस मकान में रात को मुझसे मिलने आया था। जो अपने को मेरा चाचा बतलाता था।"

"सच!" कुछ शान्त होते हुए विजय ने कहा।

"और नहीं तो क्या ? पर तुम सोच क्या रहे हो ?" विजय की अन्यमनस्कता को परिलक्षित करते हुए नन्दा ने कहा।

"मैं तुम्हारी बातें ध्यान से सुन रहा हूँ।"

"मैंने शेख साहब से कह दिया था कि यदि मेरे विजय को कुछ हो गया तो मैं भी अपने प्राण दे दूँगी।" नन्दा ने उत्साहित होते हुए कहा।

विजय का हृदय बल्लियों उछलने लगा। वह नन्दा के मुख से जो कुछ सुनना चाहता था, वही उसे सुनने को मिल गया।

"तुम्हें यहाँ देखकर मुझे बड़ा दुःख हो रहा है, प्यारे विजय ! विशेषतया अपनी असमर्थता को विचार कर ! यदि मैं अपने प्राण देकर भी तुम्हें यहाँ से निकाल सकती······।"

कहते-कहते नन्दा का गला भर आया। उसकी इस कातरता में भी विजय को अपूर्व आनन्द आया। नन्दा का हाथ अपने हृदय से दबाते हुए उसने कहा—"तुम चाहो तो मेरा बहुत कुछ भला कर सकती हो, नन्दा।"

"किस तरह !" चौंकते हुए नन्दा ने कहा।

"मेरी पत्नी बनकर ! मेरा मतलब है, हम दोनों विवाह के बन्धन में बँध जायँ। हम दो से एक हो जायँ; समाज की दृष्टि में, राज की दृष्टि में, लोक-परलोक की दृष्टि में ! इस जन्म के लिए—जन्म-जन्मान्तर के लिए !"

नन्दा की समझ में कुछ अधिक नहीं आया। वह सरलता से बोली—

"तो मैं निश्चय कर चुकी हूँ।"

"वह निश्चय अब कार्यरूप में परिणत होना चाहिए। उसके लिए यही उपयुक्त अवसर है"

नन्दा चिन्ता में पड़ गई। विजय के शब्दों में उसे दुरभिसंधि दिखाई दी।

"तुम अब भी कुछ छिपा रहे हो!" शंकित नेत्रों से विजय की ओर देखते हुए उसने कहा।

"छिपा कुछ नहीं रहा हूँ, नन्दा; पर अब अधिक समय तक तुमसे पृथक् रहना ...।"

"जेलखाने में हम दोनों साथ-साथ रह सकेंगे?"

"जेलखाने से मुक्ति पाने में भी अब अधिक देर नहीं है।"

"सच! किस तरह?" शंका और प्रसन्नता के सम्मिलित स्वर में नन्दा ने कहा।

"मुझे देशनिकाले का दण्ड दिया गया है!"

"देशनिकाले का?"

"हाँ, नन्दा; पर निर्वासन में तुम मेरा साथ देने को तैयार हो? क्या निर्वासित की पत्नी बनने का साहस तुममें है?"

"यह भी पूछने की जरूरत है? निर्वासन! मैं भगवान् को धन्यवाद देती हूँ! मैं तो तुम्हारे साथ अनन्तकाल तक जेलखाने में रहने को तैयार थी। यह सजा तो मुझे वरदान-सी लगती है! ईश्वर बड़ा दयालु है! तुम जहाँ जाओगे, मैं तुम्हारे साथ चलूँगी—देश में, विदेश में—पहाड़ों में, जंगलों में—अपने राम की सीता बनकर, अपने पाण्डव की द्रौपदी बनकर! तुम जहाँ रहोगे, वहीं देश मेरा देश होगा, वही जंगल मेरा घर होगा। तुम जिस मार्ग पर चलोगे, वही मेरा मार्ग होगा। मैं तुम्हारी सहचरी बनूँगी, अनुचरी रहूँगी। मैं तुम्हें हर तरह प्रसन्न करने का प्रयत्न करूँगी।

विजय ने उसका हाथ और जोर से सीने से लगा लिया।

"तुम्हें किस देश में निर्वासित किया जायगा ? क्या तुम्हारे साथ-साथ चलने की आज्ञा मुझे मिलेगी ?"

"कह नहीं सकता, प्यारी नन्दा; पर मुझे मुगल राज्य की सीमा के बाहर पहुँचा कर कहीं छोड़ दिया जायगा। तुम मेरे साथ नहीं चल सकोगी, पर पीछे से आकर मिल जाना।"

"कोई हर्ज नहीं! साथ न चल सकूँगी तो न सही। मैं शेख साहब से उस जगह का पता लगा लूँगी जहाँ तुम्हें भेजा जायगा, और तुम्हारे वहाँ पहुँचने से पहले ही वहाँ जा पहुँचूँगी, जिससे तुम्हें मेरी प्रतीक्षा न करनी पड़े। जेलखाने की गाड़ी से ज्यों ही तुम बाहर कदम रक्खोगे, मैं तुम्हें स्वागत में आँखें बिछाये खड़ी मिलूँगी। हम लोग साथ-साथ देश-विदेश में भ्रमण करेंगे। कुछ दिन बाद सम्भव है, बादशाह तुम्हें क्षमा भी कर दें। क्योंकि प्रायः देखा जाता है कि जिस कार्य को आज दण्डनीय ठहराया जाता है, कुछ दिन बाद उसी को पुरस्कार-योग्य माना जाता है। ऐसा हुआ तो हम लोग फिर साथ ही साथ स्वदेश को लौटेंगे। हमारे मित्र और परिचित तब हमें पाकर कैसे प्रसन्न होंगे!"

विजय कुछ देर तक नन्दा के इस आशापूर्ण दिवास्वप्न का रस लेता रहा, फिर बोला—"सच कहता हूँ, नन्दा; तुम्हारे मुँह से ये आशाभरी मीठी-मीठी बातें सुनकर आज मुझे अभूतपूर्व आनन्द आ रहा है! ऐसे आनन्द का क्षण भर का भी जीवन सैकड़ों वर्ष के लम्बे जीवन से बढ़कर है।"

नन्दा का मस्तिष्क अप्रत्याशित भविष्य की कल्पना से भर रहा था। विजय के कथन पर कुछ ध्यान न देते हुए उसने कहा—"निर्वासन से पहले क्या एक बार तुमसे और भेंट करने का अवसर वे लोग दे सकते हैं? हमें एक दूसरे की खबर कैसे मिलेगी?"

"मुझसे वादा किया गया है कि आज शाम को, या कल सवेरे, वे लोग हमारे विवाह का प्रबन्ध कर देंगे।"

"यहीं, जेल के भीतर?" कुछ सिहरते हुए नन्दा ने पूछा।

"जहाँ भी हो, पर हमारे जीवनों को एक सूत्र में बाँधने के लिए यह आवश्यक है।"

"पर मान लो, उन लोगों ने अपने वचन का पालन न किया और मुझे दुबारा मुलाकात का अवसर देने से पहले ही तुम्हें यहाँ से हटा दिया गया?"

"सभी कुछ सम्भव है, प्यारी नन्दा!"

"क्या तुम्हारी समझ से तुम्हारे शीघ्र ही यहाँ से हटा दिये जाने की सम्भावना है?"

"कुछ कह नहीं सकता! कैदियों का जीवन दूसरों के हाथ में होता है। वे जैसा चाहेंगे, करेंगे।"

"कोई परवाह नहीं, प्यारे विजय! वे तुम्हें जितना शीघ्र यहाँ से हटा दें, उतना ही अच्छा। हमारा पुनर्मिलन उतना ही निकट आ जायगा। हमारे पुनर्मिलन के लिए हम दोनों का विवाह हो जाना बहुत आवश्यक नहीं है। मुझे तुम्हारी मर्यादा का खयाल रहेगा। आज से ईश्वर को साक्षी देकर--सूर्य पवन और वरुण देव को साक्षी देकर, मैं तुमको अपना पति बनाती हूँ। प्यारे! वे लोग तुम्हें जहाँ ले जायँ, तुम प्रसन्नता से चले जाना! जब तक ये मोटी-मोटी दीवालें तुम्हें बन्द किये रहेंगी, तुम्हारे जीवन के लिए मेरे दिल में सन्देह बना रहेगा। निश्चय रक्खो, कि तुम जहाँ कहीं रहोगे, एक सप्ताह के भीतर वहीं मैं तुमसे आ मिलूँगी—जन्म भर के लिए, जन्म-जन्मान्तर के लिए। फिर कोई शक्ति हम दोनों को जुदा न कर सकेगी।" कहते-कहते नन्दा का चेहरा तमतमा आया।

इसी समय द्वार खुला और जेलदार ने शेख साहब के साथ भीतर प्रवेश करते हुए कहा—"मुलाकात का वक्त खत्म हो गया।"

प्रेम और संवेदनापूर्ण दृष्टि से विजय को देखती हुई नन्दा खड़ी हो गई। उसकी चेष्टा से विजय को लगा कि वह अभी-अभी फूट-

फूटकर रो पड़ेगी, अतः उसने चेतावनी के शब्दों में कहा—"ऐसे ही अवसरों पर हमारे धैर्य की परीक्षा होती है।"

चुपचाप अंचल से आँसू पोंछती हुई नन्दा कमरे से बाहर हो गई।

इसी समय शेख के बनावटी नाम और परिधान में बैरम खाँ विजय के पास पहुँचे। उनकी उपस्थिति में विजय का हृदय जैसे बाँध तोड़कर आँखों की राह बह चला। उसे हृदय से लगाते हुए बनावटी शेख ने कहा—"आखिर वक्त में यह बुजदिली क्यों?"

"मैं हजार कोशिश कर रहा हूँ, पिता जी, पर आँच के पास पहुँचने पर घी पिघल ही उठता है।"

——

(३३)

नन्दा को हवेली में छोड़कर बैरम खाँ सीधे मोहाफिजखाने में पहुँचे। मुल्ला इस समय कागजों से बुरी तरह उलझा हुआ था। यहाँ तक कि बैरम खाँ के पीछे जाकर खड़े हो जाने पर भी उनकी उपस्थिति का उसे आभास न हुआ। पीछे से उसके कन्धे का स्पर्श करते हुए बैरम खाँ ने कहा—"बहुत मशगूल दिखाई दे रहे हो?"

"वही पुरबियों का मामला है।" चौंककर खड़े होते-होते मुल्ला ने उत्तर दिया।

"वह मामला तो हाजी मोहम्मद सीस्तानी की सुपुर्दगी में है न?"

"मुक़दमे की समाअत तो उन्हीं ने की है!"

"फैसला क्या किया?"

"यह खत भेजा है।" कहते हुए मुल्ला ने एक खत खानखानाँ के आगे बढ़ा दिया।

बैरम खा ने एक बार ऊपर से नीचे तक पत्र को जाँचा, फिर ध्यान से उसे पढ़ा। चेहरे पर संतोष और प्रसन्नता के भाव झलकने लगे। फिर पत्र को मुल्ला के आगे रखते हुए बोले—"खरा सोना है।"

"बेशक, पर ऐसे आदमी सल्तनत के मसरफ के नहीं होते।"

"तुम्हारा इरादा क्या है?" बात को बदलने के विचार से मुल्ला के सामने रक्खे कागजों को उठाते हुए खानखानाँ ने कहा।

"सीस्तानी के किये जो काम न हो सका वह मुझे करना पड़ रहा है।" कुछ सकुचते हुए मुल्ला ने उत्तर दिया।

मुल्ला की लिखी पंक्तियों पर खानखानाँ की नजर दौड़ गई। वे जैसे चौंक पड़े। भौं पर बल पड़ गये। परेशानी भरी दृष्टि से मुल्ला की आँखों में देखते हुए उन्होंने कहा—"सजाए मौत का हुक्मनामा!"

"अपना इरादा जहाँपनाह पर मैं पहले ही हाजिर कर चुका था।"

"ठहरो! बात को जरा फिर से समझ लेने दो! अगर यह हुक्मनामा सीस्तानी की कलम से लिखा जाता तो परेशान होने की जरूरत नहीं थी। मगर चूँकि यह तुम्हारी कलम से लिखा जा रहा है, इसलिए दरबार के अमीरों को मुझ पर उँगली उठाने का मौका मिलेगा और सीस्तानी साफ निकल जायगा। तुम जानते ही हो कि आजकल महलों में भीतर ही भीतर क्या गुल खिल रहे हैं। इस हालत में एक एक कदम फूँक-फूँक कर रखना होगा। सजाए मौत का हुक्मनामा तुम किस बिना पर तैयार कर रहे हो?"

"वे लोग गद्दार हैं और सल्तनत को उलटने की साजिश कर रहे थे।"

"सीस्तानी लिख रहा है कि उन तीनों के खिलाफ मुकामी शहादत एक भी नहीं है। न उनमें से कोई इकबाली मुजरिम बनाया जा सका है। हमारे अपने खुफिया नवीसों और वाकया नवीसों के बयानात बाहमी इत्तिफाक नहीं रखते। ऐसी हालत में जुर्म उन पर आयद नहीं होता। ज्यादा से ज्यादा उन्हें कोई मामूली सजा दी जा सकती है।"

"सीस्तानी की राय जरूर ऐसी है—और मैं यह भी मान लेता हूँ कि बागियों के खिलाफ सीधा सबूत हमारे पास नहीं है—फिर भी हम जानते हैं कि उनका इरादा क्या था; और जो सजा उन्हें दी जा रही है वह उसी इरादे की बिना पर!"

"अगर कोई सवाल करे कि उन लोगों के वैसे इरादे का तुम्हारे पास क्या सबूत है ?"

"विजयपाल से जहाँपनाह की मुँह-दर-मुँह बातचीत हो चुकी है!"

"जरा सब्र करो; ऐसे मामलों में बहुत-सी चीजों को एक में मिलाकर समझने की कोशिश करना गलत है। ठीक तरीका हर चीज को अलग-अलग उसकी जगह पर रखकर समझना है। विजय-पाल अपने इरादे के लिए जिम्मेवार हो सकता है, दूसरों के इरादे के लिए नहीं। जरा देर के लिए हम विजयपाल को अलग किये देते हैं, गोया वह इस साजिश में शामिल नहीं था, और अगर था भी तो किसी खास सबब से; उस हालत में उन लोगों के खिलाफ ऐसा क्या सुबूत तुम्हारे पास रह जाता है जिससे उन्हें सजाए मौत का मुजरिम मान लिया जाय!"

मुल्ला चुपचाप खानखानाँ के मुँह की ओर देखने लगा। खानखानाँ ने आगे कहा—"सीस्तानी का फैसला बहुत कुछ मानी रख सकता है। उसे मीर अद्ल बनाकर भेजा गया है। इसलिए वह जो कुछ फैसला करेगा, उसकी वकत करनी होगी।"

"शायद उसे मामलात की अन्दरूनी जानकारी नहीं है।"

"मीर अद्ल का फर्ज है सबूत के बिना पर फैसला कर देना। अगर उसके फैसले के खिलाफ कार्रवाई हो जायगी तो वह कल ही शहंशाह, तुर्कमान अमीरों, माहम अतका और न जाने किस-किस से कहता फिरेगा कि मैंने तो सिर्फ ग्वालियर के किले में बैठकर मुकदमे की समाअत का स्वाँग भर किया था, फैसला तो खानखानाँ ने सीकरी में बैठकर खुद अपनी कलम से तहरीर किया था। उस हालत में मैं इस सफेद दाढ़ी को ले जाकर कहाँ छिपाऊँगा ?" अपनी दाढ़ी की ओर संकेत करते हुए खानखानाँ ने कहा।

"यह हुक्मनामा सीस्तानी के दस्तखतों से जारी होगा।"

"यह भी मान लेता हूँ। मगर इस तरह के हुक्मनामे से तुम देखनेवालों को चकमा दे सकते हो, सीस्तानी को बेवकूफ बना सकते हो और मेरी आँखों में भी धूल झोंक सकते हो, पर हारूत-मारूत को चकमा नहीं दे सकते, मुन्किर-नकीर की आँखों में धूल नहीं झोंक सकते और न याजूज-माजूज को बेवकूफ बना सकते हो।"

"सल्तनत की पायदारी हमारा अव्वल फर्ज है।"

"पायदारी इन्साफ से होती है, जुल्म से नहीं।"

"मूजी को कत्ल कर देना जुल्म नहीं कहाता।"

"मगर मूजी है कौन? उन तीनों में से किसी ने हमें ईजा नहीं पहुँचाई—कम से कम सबूत यही कहता है। रह गया सरदार विजय-पाल का मामला! वह जरूर यहाँ इसी इरादे से आया था, मगर बेचारा कर कुछ न सका। और जब उसने कुछ किया नहीं, तब उसे सजा भी किस बात के लिए दी जाय? फिर ऐसे आदमी को सजा देना भी नसलहत नहीं है। तुम्हें मालूम है, ऐसा ही वाकया मेरे साथ भी पेश आ चुका है। कन्नौज की लड़ाई के बाद जब मैं गिरफ्तार करके शेरशाह के सामने पेश किया गया था, तब वह फौरन मेरी गर्दनकुशी का हुक्म दे सकता था। क्योंकि वह जानता था मुगल सरदारों में मुझसे ज्यादा खतरनाक उसके नजदीक दूसरा नहीं था। पर जानते हो कि उसने क्या किया था?"

मुल्ला चुपचाप सुनता रहा। बैरम खाँ ने आगे कहा—"उसने फौरन मेरी बन्दिश छुड़ा दी। अपने हाथ से मुझे पगड़ी पिन्हाई। मुझे गले लगाया। फिर बड़ी इज्जत से मुझे अपने बराबर बिठाते हुए कहा—"हरगह इखलास दारद खता नमींकुनद।*

---

* जो सत्यनिष्ठ होता है उसका अपराध अपराध नहीं होता।

शेरशाह की वही बात मेरे दिल में चुभ गई थी और इसी लिए मैं किसी तरह उसके खेमे से खिसककर जन्नत आशियानी के काफिले से जा मिला था।"

"उस कहानी से विजयपाल का क्या वास्ता?"

"मेरा मतलब यह है कि वही इखलास, वही साबित कदमी सरदार विजयपाल में मौजूद है। वह नौजवान है। एक तरफ उसे जिन्दगी का मोह है, एक तरफ मोहब्बत का जोश; मगर बावजूद इन तमाम फ़ितरतों के, तुम्हारी और मेरी हजार कोशिशों के, हवस और जेलखाने के हादिसों और तकलीफों के, और एक ऐसी नाजनीन के इसरार के, जिसकी एक छोटी-सी ख्वाहिश के लिए वह हजार जानें निसार कर सकता है, वह अपने इरादे से तिल भर इधर-उधर होने को तैयार नहीं हुआ। शेरशाह ने मेरे इखलास की कद्र करके मेरी जान बख़्शी थी। इखलास का दूसरा नमूना अब मेरे सामने है। तो क्या मैं उसकी गर्दन-कुशी हो जाने दूँ? अल्लाताला के सामने क्या जवाब दूँगा?"

"क्या इसके दूसरे मानी यह नहीं हैं कि आप शाहंशाह के दुश्मनों को बढ़ावा दे रहे हैं?"

"मैं शाहंशाह के दोस्तों और खैरख्वाहों को बढ़ाने की फिक्र में हूँ।"

मान लीजिए कि आप कामयाब भी हो गये, यानी विजयपाल ने आपके कहने में आकर अपना इरादा बदल दिया। उस हालत में उसकी सदाकत किस तरह कायम रह सकेगी!"

"तुम्हारा मतलब यही है न कि वह अपने साथियों के नजदीक झूठा हो जायगा। मगर उसके साथी भी अपना-अपना इरादा बदल-कर अगर हमारे साथी हो जायँ?"

"तब उनके साथियों का मामला रह जायगा। और यह जंजीर

आगे चलती जायगी जब तक कि उसकी पहली कड़ी काट नहीं दी जाती !"

"काट देना आखिरी अमल हो सकता है, अव्वल अमल नहीं।"

आपका इरादा उनको बख्श देने का है ? पर यह इतनी बड़ी गलती होगी कि.. !"

"बेशक, यह एक बड़ी गलती हो सकती है। पर गलतियाँ इस लम्बी जिन्दगी में मैंने बेशुमार की हैं। आज भी गलतियों पर गलतियाँ कर रहा हूँ। तब इस एक गलती पर मुझे ज्यादा अफसोस भी न होगा। फिर यह गलती न होकर एक पुरानी गलती की तसहीह भर हो सकती है।"

"आपका इशारा किस गलती की तरफ है ?"

"राजा रतनसेन के और मेरे क्या तअल्लुकात थे, यह तुम्हें मालूम नहीं है। नये उमरा में से भी कोई उस अम्र का वाकिफकार नहीं है। उसकी जानकारी या तो खुद मुझे थी, या फिर शाहंशाह जन्नत आशियानी को। राजा साहब मरहूम मेरे जाँनिसार दोस्तों में थे और उनके बाद उनके बाल-बच्चों की परवरिश का मैंने वादा किया था। आसमान की गर्दिश के सबब इस हिन्दोस्तान में पैर जमाना मेरे लिए उन दिनों मुश्किल हो गया था। कई वर्ष बाद लौटकर मैंने तलाश किया तब उसकी रानी को बेगम मुअज्जिमा की शक्ल में सलीमशाह के हरम में पाया। मैं चाहता था कि उसे उसकी पुरानी जगह पर लौटा दिया जाय, पर वह अपने इस नये चोले से ऐसी वास्ता हो गई कि लौटकर बिलग्राम जाने को किसी तरह न राजी हुई। अब एक ऐसी लड़की का मामला दरपेश है जो मेरे उसी दोस्त रतनसेन की इकलौती बेटी है और जिसकी पैदायश राजा साहब मरहूम की वफात के बाद हुई थी। तुम जानते ही हो कि वह लड़की सरदार विजयपाल से मुहब्बत करती है जो किसी सूरत में गैरनासिब नहीं कही जा सकती।

वह कई बार रो-रोकर मुझसे उसकी जान की भीख माँग चुकी है और मैं उसकी इल्तिजा को कबूल कर चुका हूँ। उधर विजयपाल जी से भी मैं वादा कर चुका हूँ कि उन दोनों की शादी के लिए मैं शाहंशाह आलम और जनाब वकीले मुतलक से सिफारिश करूँगा...।"

"और दूसरी तरफ मुझे अपने तरीके से काम करने की आप कलमबन्द इजाजत दे चुके हैं!" मुल्ला ने तानाजनी के स्वर में कहा।

"वह मौका और तरह का था। उस वक्त तक उस लड़की को मैं ठीक-ठीक समझ न पाया था।"

"और अब समझ पाया है तब न सिर्फ उसके आश्ना की रिहाई की फिक्र में हैं, कन्यादान का सबाब भी लेना चाहते हैं।"

"मैं वादा कर चुका हूँ।"

"तब इस हुक्मनामे को अज सरे नौ मुरत्तिब करना होगा।" कहकर मुल्ला ने हुक्मनामा टुकड़े-टुकड़े करके जमीन पर डाल दिया।

बैरम खाँ के मुँह पर प्रसन्नता झलक उठी। अप्रत्याशित कृतज्ञता से पुलकित होते हुए उन्होंने कहा—

"मैं उम्मीद करता हूँ कि तुम आज ही इसका माकूल इन्तजाम कर दोगे।"

"बजा इर्शाद खुदाबन्दे आलम।" कहकर मुल्ला ने दरबारी ढङ्ग से उनको अभिवादन किया।

अभिवादन का उत्तर देकर बैरम खाँ खुश-खुश मुहाफिजखाने से बाहर निकल गये। नियम के अनुसार मुल्ला ड्योढ़ी तक उन्हें पहुँचाने गया। विदा होते वक्त बैरम खाँ ने फिर कहा—"हमारा मतलब ठीक से समझ गये न?"

मुल्ला ने उत्तर में फिर झुककर सलाम किया।

मुहाफिजखाने में अपनी जगह पर वापस आते ही मुल्ला ने तुरन्त जेलदार को बुला भेजा। जब वह आ गया तब उसे एक एकान्त

कोठरी में ले जाकर उसके हाथ पर एक लिखित आज्ञापत्र रखते हुए उसने कहा—"तुम्हें बहाना करने का मौका न मिले, इसलिए यह तहरीरी हुक्मनामा दे रहा हूँ।"

हुक्मनामा पर निगाह डालते ही जेलदार काँप उठा और घुटनों पर बैठकर गिड़गिड़ाया—"मैं कहीं का नहीं रहूँगा, गरीब परवर!"

"क्यों?" भौं को असाधारण रूप से बंक करते हुए मुल्ला ने कहा।

"जनाब वकीले मूतलक को मालूम हो गया तो ।"

"उनसे कहेगा कौन?"

"ऐसी बात छिप नहीं सकती, हुजूर आली!"

"शायद इसलिए कि मैं ऐसा करने को कह रहा हूँ। वर्ना तुम लोग तो उस मसाले के बने हो कि इससे बड़ी बातें पचा जाते हो और किसी को कानोंकान खबर नहीं होती!"

जेलदार आश्चर्य के साथ मुल्ला के मुँह की ओर देखने लगा।

"मेरी बातें कुछ अजीब लग रही हैं, क्यों न? पर अगर मैं सवाल करूँ कि शाह साहब के पास ताजे सेवों की टोकनी रोज सबेरे किसके हुक्म से पहुँचाई जाती है, तो आप क्या जवाब देंगे?"

"शाही कैदियों के वास्ते...।"

"चुप रहो। शाही कैदियों के वास्ते रात को औरतें मूहैय्या करने की भी इजात है क्या?" कड़ककर मुल्ला ने पूछा।

"औरतें?"

"हाँ औरतें! जुम्मेरात की शव को दो नाजनीनें बादलगढ़ में खिड़की के रास्ते पहुँची थीं और उसी रास्ते सुबह से पहले-पहले वापस हो गई थीं। फिर मालूम हुआ कि वह इन्तजाम तुम्हारे जरिये ही हुआ था और उसके लिए तुमने महज पाँच सौ रुपये की बख्शीश ली थी।

अगर खानखानाँ को इन सब बातों का पता चल जाय तो जानते हो क्या हो ? तुम्हारी खाल खींच ली जाय ! तुम समझते हो कि तुम्हारी इन करतूतों का पता मुझे नहीं रहता ! पर याद रक्खो कि मैं ऐसे मामलों में दीदओ दानिस्ता इसी वास्ते चश्मपोशी करता हूँ कि हम लोगों को एक दूसरे की इम्दाद करनी चाहिए।"

"मैं आपके हुक्म का ताबेदार हूँ।"

"तो सब सामान ठीक रहेगा न ?"

"जो इरशाद।"

"तब तुम जा सकते हो। और यकीन रक्खो कि तुम्हें कोई कुछ न कहेगा। न तुम्हारी नौकरी पर आँच आयेगी।"

जेलदार अभिवादन करके बिदा हो गया। मुल्ला फिर अपने काम में जुट गया।

× × ×

उसी रात को अपने कमरे में अचानक प्रकाश देखकर विजय हड़बड़ा कर उठ बैठा। बादलगढ़ के लिए ऐसी घटना असामान्य थी। उसने देखा, दो सिपाहियों के साथ जेलदार सामने खड़ा है। वह कुछ कहने ही वाला था कि जेलदार ने अपनी सामान्य शिष्टता के साथ अभिवादन किया।

उसके अभिवादन को स्वीकार करते हुए विजय उसकी ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखने लगा। जेलदार ने पास पहुँचकर धीरे से कहा—"एक खास मतलब से बेवक्त हाजिर हुआ हूँ।"

"मैं समझ रहा हूँ। क्या मुझे इसी वक्त तैयार हो जाना चाहिए ?"

"कल सबेरे तड़के !"

"शुक्रिया। मगर मैंने एक दरख्वास्त की थी !"

"वह शायद मंजूर नहीं हुई है।"

"हुक्म आ गया है क्या ?"

"हाँ, इत्तला देने आया हूँ, हालाँकि यह बात यहाँ के मामूल के मुआफिक नहीं है। मगर आपसे मुझे कुछ खास तरह की मुहब्बत हो गई है और मुझे ऐसा लग रहा है मानो मेरा सगा भाई···" कहते-कहते जेलदार की आँखें भर आईं।

जेलदार की सहृदयता से विजय प्रभावित हो उठा। उसके हाथ को स्पर्श करते हुए उसने मृदुकंठ से कहा—"आपकी सज्जनता ही के कारण इस मनहूस जगह में भी मेरे ये दिन बड़े मजे में कटे। और अब जो होने जा रहा है, उसके लिए रंज करने की जरूरत नहीं है। आपको मालूम होगा कि मैं इसके लिए पहले से ही तैयार हूँ।"

"इस कच्ची उम्र में···" कहते-कहते जेलदार का गला भर आया।

क्षत्रियोचित धीरता का प्रदर्शन करते हुए विजयपाल बोला—"मृत्यु जब आ जाय, तभी उसके स्वागत के लिए हमें तैयार रहना चाहिए। परमेश्वर की आज्ञा का पालन करने के लिए ही वह दौड़ा करती है। किसी की उम्र कच्ची है या पक्की, यह सोचने की उसे फुरसत नहीं है।"

जेलदार इस अद्भुत कैदी की बातें आश्चर्य से सुनता रहा। फिर बोला—"यह उम्र लुफ्त उठाने की होती है। और अगर किसी हिकमत से वैसा करना मुमकिन हो सके—यानी अकाल मीच को बचाया जा सकता हो—तो वैसा न करना गुनाह है।"

"मैं आपकी बात समझा नहीं।"

"मोहतसिब कह रहा था न कि···।"

"राम राम ! अब उन बातों से क्या फायदा है ? मोहतसिब के मतलब की बात मेरे पास कोई नहीं है।"

"सरदार कुशलपाल से मुलाकात करना आप पसन्द करेंगे ?"

"क्या फायदा ! और मुलाकात का मौका भी अब कैसे मिल सकता है !"

"उसे भी कल आपके साथ ही सजा दी जानेवाली है।"

"किसे ? सरदार कुशलपाल को ? क्या कह रहे हैं आप !" विजयपाल ने आश्चर्य के साथ पूछा।

"हाँ, जो जुर्म आप पर आयद किया गया है, वही उस पर भी है। दोनों को एक साथ सजा देने का हुक्म हुआ है। सरदार साहब चाहते हैं कि अगर आपको कुछ एतराज न हो तो आखिरी मुलाकात हो जाय !"

"तब मैं जरूर मुलाकात करूँगा। मैं तो उन पर सन्देह कर रहा था। पर अब देख रहा हूँ कि मैं गलती पर था। राम राम ! बड़ी भूल हुई। किस तरह उनसे मुलाकात हो सकती है ?"

"आप चाहें तो इसी वक्त मैं आपको उनकी कोठरी में पहुँचा दूँगा। फिर तो वक्त मिलना मुश्किल है। रात आधी जा चुकी है।"

"मैं तैयार हूँ।"

जेलदार विजयपाल को लेकर उसी रास्ते से कुशलपाल की पूर्व-परिचित कोठरी के पास पहुँच गया। विजयपाल ने देखा, अपने उसी दिनवाले फटे वस्त्र पहने कुशलपाल द्वार की ओर पीठ किये तख्त पर लेटा है। इन लोगों की पदचाप का अनुमान करके ही जैसे उसने गुनगुनाया—"ये जमदूत सबेरा होने भी देंगे या नहीं !" और फिर चादर को खींचकर मुँह ढँक लिया।

"सरदार विजयपाल जी तशरीफ लाये हैं।" उसके तख्त के पास पहुँचकर जेलदार ने सूचना दी। छद्मवेशधारी कुशलपाल उठकर बैठ गया और बोला, "आइए विजयपाल जी ! आपकी ही प्रतीक्षा में था। बड़ी कृपा की।"

विजयपाल को कोठरी में छोड़कर और बाहर से ताला बन्द करके जेलदार वहाँ से हट गया।

"खबरें तो आपको सब मिल ही चुकी होंगी?" कुशलपाल ने वार्त्तालाप को प्रारंभ करते हुए उदासी से कहा।

"जी, और मुझसे यह भी कहा गया है कि हम दोनों साथ ही साथ...।" गहरी साँस लेते हुए विजयपाल ने कहा।

"तुम शायद इस वक्त के लिए तैयार नहीं थे?" मर्म को स्पर्श करते हुए छद्मवेशधारी कुशलपाल ने कहा।

"हमारी इच्छा या अनिच्छा की परवाह मौत क्यों करने लगी?"

"देखता हूँ कि तुम इस वक्त तक जिन्दगी से बुरी तरह चस्पाँ हो!"

"मेरे लिए ऐसा करने का कारण है।"

"जिन्दा रहने के लिए हर एक के पास कारण होता है।"

"फिर भी मेरा मामला कुछ दूसरी तरह का है। और सच बात तो यह है कि ज्यादा नहीं तो कम से कम चार-छः दिन जिन्दा रहना मैं और चाहता हूँ।"

"तब मैं एक तरकीब बता सकता हूँ।"

"इकरारी मुजरिम बन जाना!"

"नहीं।"

"मुआफी माँग लेना!"

"वह भी नहीं।"

"तब?"

"मेरे साथ...।" शेषांश को आँख के संकेत से पूरा करते हुए कुशलपाल ने कहा।

"तुम्हारे साथ ?" सन्नाटे में आते हुए विजयपाल ने अर्धस्पष्ट स्वर में पूछा।

इधर-उधर अच्छी तरह देखकर बनावटी कुशलपाल ने कहा—"मैं जा रहा हूँ।"

"पर यह भी जानते हो कि सबेरा होते-होते हम दोनों इस दुनिया से...।"

"उससे पहले ही मैं...।"

"सच !"

"और नहीं तो क्या !"

"कैसे ?"

"खिड़की को खोलकर देखो।" पीछे की खिड़की की ओर संकेत करते हुए कुशलपाल ने कहा।

"अच्छा !" धीरे से खिड़की खोलकर देखते हुए विजयपाल ने कहा।

"जँगले को हिलाकर देखो !"

"ओ हो !"

"बड़ी मुश्किल से इसे काट सका हूँ।"

"कमाल है ! पर चहारदीवारी ?"

"यह देखो ! टाट के बिछावन के नीचे से एक कमंद निकालकर विजय को दिखाते हुए कुशलपाल ने कहा।

"यह कहाँ से मिला ?"

"यह न पूछो ! यहीं तैयार कर लिया है !"

"आप सचमुच कुशलपाल हैं ?"

"मेरा इरादा अकेले जाने का था। फिर तुम्हें साथ ले जाने की भी जी में आ गई। सोचा, जेलवालों को उल्लू बनाना है, तो पूरी तरह बनाया जाय !"

"अब समय खोना ठीक नहीं।" मन में अद्भुत प्रकार की हड़-बड़ी का अनुभव करते हुए विजय ने कहा।

"ठहरो! यह मौका हड़बड़ी का नहीं है। हमें कदम-कदम पर होशियारी से काम करना चाहिए।"

"सन्तरी पहरे पर होंगे?"

"बादल भी आसमान पर पहरा दे रहे हैं।" कुछ मुस्कराते हुए कुशलपाल ने उत्तर दिया।

"आप सचमुच सरदार हैं!"

"अब आप भी सरदार बन जायँगे।"

जँगले से निकलकर दोनों जेल की चहारदीवारी के नीचे जा पहुँचे।

"मैं पहले चढ़ता हूँ।" कमन्द को दीवाल पर फेंककर और उसकी मजबूती की जाँच करके विजयपाल ने कहा।

"ठीक है, चलो फिर! जरा होशियारी से!"

विजय दीवाल के ऊपर पहुँच गया। उसके बाद कुशलपाल भी चढ़ गया।

"नीचे कैसे उतरेंगे?"

"वह उधर!" एक सीढ़ी की ओर संकेत करते हुए कुशलपाल ने कहा।

"सीढ़ी लगी है! यानी आपके और साथी भी...?"

ओठों पर उँगली रखकर कुशलपाल ने चुप रहने का संकेत किया।

दोनों क्रमशः नीचे उतर गये!

"सीढ़ी को उठा लो!" कुशलपाल ने आदेश दिया।

विजयपाल ने सीढ़ी को उठाकर कंधे पर रख लिया।

"इसी से खाई को पार करना है।" कुशलपाल ने संकेत किया।

"सीढ़ी को आर-पार रखकर उस पर होकर दोनों दीवाल के नीचे की खाई को भी पार कर गये।

"चलो!"

दोनों द्रुत गति से सड़क पर चल दिये।

"अब हम स्वतंत्र हैं।" राह चलते विजय ने कहा।

"बेशक!" हाँफते हुए कुशलपाल ने उत्तर दिया।

"कहते थे कि बादलगढ़ से निकल जाना असम्भव है!"

विजय ने प्रसन्नता से कहा।

"अब कभी इधर आना हो तो अकेले मत आना। मुझे साथ लेकर आना।" कुशलपाल ने मजाक किया।

दोनों चलते रहें।

"अब हम लोगों को मुख्तलिफ सिम्तों को भागना है।"

"यही ठीक रहेगा।"

एक चौराहे पर पहुँच कर कुशलपाल रुक गया। विजयपाल भी खड़ा हो गया।

"ये घोड़े?" चौराहे के एक किनारे पीपल के नीचे खड़े दो घोड़ों की ओर संकेत करते हुए विजयपाल ने पूछा।

"ये हम दोनों के लिए हैं।"

विजयपाल का हृदय प्रसन्नता से उछलने लगा।

"आपकी कृपा से स्वतन्त्र वायु में श्वास लेने का मौका मिला है।"

"और सुनो!"

"जी!"

"तुम्हारे पास पैसे तो होंगे नहीं !"

"मेरे पास एक पैसा भी नहीं है ।"

"यह लो !" मुट्ठी भर रुपये अपने फटे कुरते की भीतरवाली वसनी से उँडेल कर विजय के सामने करते हुए कुशलपाल ने कहा—"यह खर्च के लिए, और घोड़े पर चढ़कर रफूचक्कर हो जाओ। अभी पहर भर रात बाकी है। मैं भी चला !"

"जय राम जी की !"

"जै……।"

दोनों घोड़े विभिन्न दिशाओं में सरपट भागने लगे।

बैरम खाँ अभी शयनागार से बाहर आये ही थे कि थका और परेशान-सा मुल्ला उनके सामने आ खड़ा हुआ। उसे इस अवस्था में देखकर खानखानाँ ने कहा—"कहो खैरियत तो है, मुल्ला साहब, कहाँ से तशरीफ आ रही है ?"

"सीधी बादलगढ़ से, गरीब परवर ?"

"विजयपाल का क्या हाल-चाल है ?"

"उसकी चाँदी है, आलीजाह !"

"कल मैंने जो कुछ कहा था, उसकी तैयारी हो चुकी ?"

"सारी तैयारियाँ मुकम्मिल हैं, जनाब आली ! सिर्फ एक छोटी-सी कसर रह गई है ?"

"वह क्या ?"

"यही कि नौशा साहब नहीं हैं ?"

"नौशा साहब ?"

"वह कल रात बादलगढ़ से तशरीफ ले गये हैं।"

"बादलगढ़ से ! कैसी बातें कर रहे हो ?"

"आदमी हर जगह से भाग जा सकता है ! अगर उसे एक तरफ सजाये मौत का हुक्म सुना दिया जाय और दूसरी तरफ एक छोटा-सा सूराख मिल जाय !"

"बादलगढ़ की दीवालों में सूराख!"

"सूराख तो लोहे में भी बनाये जा सकते हैं, आलीजाह! और यह सब करने-धरने को वहाँ काफी मौका रहता है।"

"यानी वह नकब लगाकर भाग गया? मगर आज उसकी शादी जो होनेवाली थी!"

"एक पुरानी मसल है कि जान जानाँ से ज्यादा प्यारी होती है।"

"आखिर वह गया कहाँ?"

"इस वक्त इस सवाल का जवाब दे सकना मुश्किल है, हाँ कोशिश करने पर कल शाम तक अलबत्ता कुछ अर्ज कर सकूँगा।"

खानखानाँ कुछ देर तक गहरी चिन्ता में डूबे रहे। फिर बोले—"मैंने उसकी रिहाई का फैसला किया था।"

"पर उसने आपको तकलीफ देना मुनासिब नहीं समझा और खुद-ब-खुद रिहाई हासिल कर ली।"

"खैर, अल्लाह के हर काम में कुछ मसलहत रहती है। अब इसका तजकिरा किसी से करने की जरूरत नहीं।"

"बहुत खूब; उसे दुबारा गिरफ्तार करने की बाबत क्या हुक्म है?"

"इस वक्त कुछ करने-धरने की जरूरत नहीं है, फिर देखा जायगा।"

"जो इरशाद!" कहकर मुल्ला जाने ही वाला था कि सामने से कुछ आहट सुनाई दी। मजलिसखाने का दरबान हाजिर था। झुककर सलाम करते हुए दरबान ने प्रार्थना की—"एक जवान ड्योढ़ीखाने पर खड़ा शेख साहब को दरियाफ़्त कर रहा है।"

यह सुनते ही मुल्ला का मुँह उतर गया और बैरम खाँ खुशी से उछल पड़े। वे दरबान से बोले—"उसे थोड़ी देर बाद मजलिसखाने में हाजिर करो।" और फिर स्वयं जल्दी-जल्दी वस्त्र बदलने लगे।

शेख के पुराने परिधान में खानखानाँ जब मजलिसखाने में पहुँचे, विजयपाल बैठा उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। उनके पहुँचते ही विजय-

पाल ने उनकी चरण-धूलि लेकर मस्तक से लगाई और फिर हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। उसकी ओर आश्चर्य से देखते हुए उन्होंने कहा—"विजयपाल जी! यहाँ कैसे?"

"सरदार कुशलपाल जी की सहायता से मैं वहाँ से बाहर निकल आया हूँ।" उद्वेग को दबाने की चेष्टा-सी करते हुए विजयपाल ने उत्तर दिया।

"मगर बजाय किसी जंगल या पहाड़ में पनाह लेने के तुम यहाँ—इस खतरनाक जगह पर—क्यों आये?"

"पहले मेरा भी इरादा किसी ऐसी जगह पर जा छिपने का था। मगर फिर······!"

"उस लड़की का क्या खयाल आ गया क्या?"

"जी नहीं।"

"तब?"

"मुझे अपने उन तीनों मित्रों का ध्यान आ गया जो अभी तक ग्वालियर में कैद हैं और जिनके सिरों पर तलवारें झूल रही हैं।"

"इस हालत में तुम उनकी क्या मदद कर सकते हो?"

"उन्हें छुड़ाने की कोशिश करना चाहता हूँ।"

"किस तरह?"

"जिस काम के लिए मैं यहाँ भेजा गया था। उसे पूरा करके?"

"यानी खानखानाँ की गर्दन मारकर। यही न? तुमने अपना इरादा अभी तक बदला नहीं है?"

"जो हालत तब थी, वह अब भी बनी हुई है!"

"मगर शायद तुम वही नहीं रहे, जो पहले थे! उस वक्त तक तुम्हें हालात की ठीक-ठीक जानकारी न थी और जोश में आकर तुम कुछ न कुछ कर गुजरना चाहते थे। उसके नशेबो फराज की तुम्हें परवाह न थी। अब तुम मलकुलमौत के दरबार से होकर लौट आये हो। तुम्हें तजरबा हो गया होगा कि चीजें दरअस्ल वैसी ही नहीं

होतीं, जैसी कि वे दिखाई देती हैं। अब बेहतर यह होगा कि तुम अव्वल किसी महफूज मुकाम पर पहुँच कर अपनी बचत करो। बाद को जो चाहो, करना।"

"मेरे इस तरह भाग निकलने के मेरे मित्र दूसरे अर्थ लगायेंगे।"

"क्या?"

"वे कहेंगे कि मैं मुखबिरी करके छूटा हूँ। मैंने दुश्मनों को सारा भेद बतला दिया है।"

"अगर वे लोग अब तक जिन्दा न बचे हों?"

"तब मेरी जिम्मेदारी और ज्यादा हो जाती है। उनकी हत्या का बदला लेना मेरा कर्त्तव्य हो जाता है। जब तक मैं ऐसा न कर लूँ, मुझे शान्ति न मिलेगी। मेरी अन्तरात्मा मुझे धिक्कारती रहेगी।"

"तुम्हारा दिमाग अब भी गरम है। जरा आराम करने की जरूरत है। उस लड़की से मिलना चाहते हो?"

"मिलना तो चाहता हूँ, मगर एक शर्त पर! पहले आप मेरी सहायता के लिए वचन दीजिए। अब एक-एक क्षण का विलंब असह्य है। मेरी भाँति मेरे मित्रों को भी मृत्युदण्ड की आज्ञा दी जा चुकी है। आप कृपा करके मुझे यह वचन दे दीजिए कि आप मेरी सहायता अवश्य करेंगे। मैं आपसे दुबारा वचन इसलिए चाहता हूँ कि मैं भी आखिर मनुष्य हूँ। मुझमें भी कमजोरियाँ हैं। मुझे अपनी कमजोरियों से समझौता करना होगा—नन्दा के आँसुओं से निबटना होगा। नहीं; नहीं, मैं नन्दा से न मिलूँगा। और अगर आप भेजेंगे ही तो इसी शर्त पर मिलूँगा कि पहले आप मुझे खानखानाँ से मिलाने का वचन दे दें।"

"अगर यह शर्त मुझे मन्जूर न हो?"

"उस हालत में मैं नन्दा से नहीं मिलूँगा। वह समझ लेगी कि मैं मर गया। निराश के हृदय में आशा-संचार करने से क्या लाभ!"

"तुम अपने इरादे से बाज न आओगे ?"

"नहीं ! यद्यपि मैं जानता हूँ कि आपकी सहायता बिना मुझे सफलता न मिलेगी ।"

"उस सूरत में तुम करोगे क्या ?"

"मैं कुछ दिनों तक घूम-फिरकर खानखानाँ की स्थिति का पता लगाऊँगा और उसके बाद अगर मौका मिलेगा तो······।"

"खूब सोच-समझ लो !"

"मैं सोच चुका हूँ। फिर भी एक बार मैं सहायता की भिक्षा आपसे अवश्य माँगूँगा।"

"यानी मुझे काँटों में घसीटे बगैर तुम मानोगे नहीं। अच्छी बात है। जाओ, नन्दिनी उधर उस हवेली में है। उससे मिल आ[illegible]।"

"लौटने पर मुझे आपका आश्वासन मिल जायगा ?"

जरूर !"

"और आपका उत्तर वैसा ही होगा, जैसा मैं चाहता हूँ।"

"यही सोच रहा हूँ।"

विजय आश्वस्त भाव से नन्दा की हवेली में पहुँचा। सद्यःस्नाता नन्दा लाल रंग की रेशमी धोती पहने, माथे में टीका दिये, अपने लगाये हुए तुलसी के पौधे के सामने हाथ जोड़े बैठी थी। गीली केश-राशि पीठ को आच्छादित कर भूमि पर फैली थी। वह प्रार्थना के स्वर में गुनगुना रही थी—"मा, मैं यह नहीं चाहती कि वे मुझे मिल ही जायँ। पर वे जहाँ कहीं रहें कुशल से रहें। मैं आपसे उनके प्राणों की भीख माँग रही हूँ। माँ तुम सब जानती हो, तुम सब कुछ कर सकती हो। क्या मेरी प्रार्थना पर ध्यान नहीं दोगी, मा !" उसके कपोलों पर आँसुओं की धारायें बह रही थीं। आँचल फैला हुआ था।

विजय दवे पाँव उसके पीछे जा खड़ा हुआ और बहुत देर तक स्वयं को भूला उसकी प्रार्थनायें सुनता रहा। फिर बोला—"मैं आ गया, नन्दा!"

नन्दा ने पीछे मुड़कर देखा! विजय ही तो था। उसे लगा, जैसे देवी के दरबार में उसकी प्रार्थना स्वीकृत हो गई है। वह किलकारी भरती हुई उठी और विजय के वक्षःस्थल से चिपट गई।

"अरे! तुम कैसे आ गये, प्यारे···!"

"मैं जेलखाने से भागा हूँ।"

"ओ हो, और फिर भी यहाँ आ गए! शायद मुझे साथ ले चलने के लिए! अच्छा, अच्छा; मैं तैयार हूँ। चलो।" एक क्षण बाद सहसा अलग हटते हुए नन्दा ने कहा।

"ठहरो नन्दा! उसके लिए अभी समय नहीं आया है! अभी वह काम अधूरा ही पड़ा है जिसके लिए मैं कन्नौज से चलकर यहाँ आया था। पर अब कुछ घण्टे का ही मामला रह गया है। आज शाम से पहले-पहले सब समाप्त हो जायगा। फिर या तो तुम्हें साथ लेकर खुशी-खुशी मैं कन्नौज लौट चलूँगा, या फिर बादलगढ़ में पहुँचा दिया जाऊँगा अगर तुम्हें आज्ञा मिल सके तो पहले की तरह फिर वहाँ आकर मुझसे भेंट कर जाना। हूँ, यह क्या? तुम काँप रही हो! यह ठीक नहीं! तुम्हें साहस से काम लेना है। तुम जानती ही हो कि तुम्हारा विजय कितना बड़ा काम करने जा रहा है। इस तरह अधीर होकर तुम्हें उसकी राह न रोकनी चाहिए।"

नन्दा लड़खड़ाई। विजय ने उसे थाम कर उसी तुलसी के पौधे के पास बिठाते हुए कहा—"प्रार्थना करो, नन्दा! प्रार्थना में बहुत बड़ी शक्ति होती है!" यह कहकर और नन्दा के ललाट का चुम्बन करके वह द्रुतगति से हवेली से बाहर हो गया।

महल में पहुँचने पर विजयपाल को दरबान प्रतीक्षा करता मिला। उसने उसके हाथ पर एक पत्र रख दिया जिसमें लिखा था -

"अजीज शाहजादे, तुम्हें मालूम हुआ होगा कि इन दिनों यहाँ नौ रोज का जश्न चल रहा है। उसी सिलसिले में बारगाह में रोज दरबार होता है जिसमें अमीर-उमरा के साथ वकीले मुतलक भी मौजूद रहते हैं। वे हर रोज दोपहर से शाम तक बारगाह में कयाम करते हैं। उसके बाद नमाज हो जाने पर आराम करने के लिए कलन्दरी में चले जाते हैं, जो बारगाह से मिला हुआ पाँई बाग है। वहाँ उनकी इजाजत बगैर दूसरा नहीं जा सकता।

"वकीले मुतलक साहब का कदोकामत मेरे जैसा है। खूब गोरा चेहरा, सफेद लम्बी दाढ़ी। दाहिने बाजू में एक बाजूबन्द पहनते हैं जिसमें तीन कतारों में नौ हीरे जड़े हैं। बीचवाला हीरा सबसे बड़ा और ज़्यादा आबदार है। यही उनकी पहचान है। उनके अलावा और कोई अमीर उस तरह का बाजूबन्द नहीं पहनता।

"इस खत के साथ जो एक दूसरा पुर्जा रक्खा हुआ है, वह शिनाख्त के वास्ते है। उसे दिखलाने पर तुम न सिर्फ बारगाह में, कलन्दरी में भी पहुँच सकते हो। कोई दरबान तुम्हें रोकने की हिम्मत न कर सकेगा। कलन्दरी में जनाब खानखानाँ तुम्हें बिलकुल अकेले मिलेंगे।

"दरबान को मैंने सब कुछ समझा दिया है। वह तुम्हें ठहरने की जगह बता देगा और जिस चीज की जरूरत होगी मुहय्या कर देगा। एक दरबारी पोशाक भी वह तुम्हें देगा जिसे पहनकर तुम बारगाह के जश्न में शामिल हो सकते हो।"

पत्र पढ़कर विजय का दिल धड़कने लगा। जिस व्यक्ति की हत्या करने का विचार वह महीनों से रात-दिन करता रहा है, अब उसके निकट जाने का अवसर आ गया है। कुछ घण्टों बाद वह उसके ठीक सामने होगा, और शायद ऐसी जगह पर भी, जहाँ विजय के और

उस व्यक्ति के बीच कोई अन्तर, कोई व्यवधान न होगा। इस विचार से उसके सारे शरीर से एक साथ प्रस्वेद छूट पड़ा। और उसे लगा जैसे वह गिर जायगा। बरामदे के एक खम्भे का सहारा लेकर उसने स्वयं को सँभाला फिर दरबान के साथ निर्देशित स्थान की ओर विश्राम करने के लिए चल दिया।

× × ×

अपनी सहज चेतना पर अनावश्यक भार डालकर विजय अन्ततः बारगाह जाने के लिए तैयार हो गया। उसने निर्देशित पोशाक पहन ली और गाड़ी पर जा पैठा। वह चाहता था कि आक्रमण से पहले उसे कुछ समय मिल जाय, जिससे वह अपने लक्ष्य को अच्छी तरह देख-समझ ले, और कुछ समय तक उसके समीप रह भी ले जिससे आवश्यक समय पर एक महान् व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उसके हाथ कुण्ठित न हो जायँ। मार्ग में अनेक प्रकार के अनुकूल-प्रतिकूल विचार उसके हृदय को आन्दोलित करने लगे। उसे लगा जैसे उसमें उपयुक्त साहस का अभाव है और इसी लिए उसका इस समय बारगाह जाना व्यर्थ होगा। खानखानाँ को सामने पाकर भी वह उन पर आक्रमण न कर सकेगा। परंतु दूसरे क्षण ही उसे अपने उन साथियों का ध्यान आया जो ग्वालियर में अपनी गर्दनें काठ पर रक्खे, ऊपर से खञ्जर गिरने की प्रतीक्षा कर रहे होंगे, फिर भी जिनकी आँखें किसी आशा के साथ सीकरी की ओर टकटकी लगाये होंगी। नहीं, नहीं, उसे बैरम खाँ का वध अवश्य करना होगा, और आज ही करना होगा। वह अपने को किसी कमजोरी का शिकार न बनने देगा। उसका हृदय जोर-जोर धड़कने लगा।

परिचय-पत्र दिखाकर बारगाह की ड्योढ़ी में प्रवेश-लाभकर लेने पर उसे एक बार फिर दुर्बलता का अनुभव हुआ। इस जनाकीर्ण और आमोद-प्रमोद-पूर्ण स्थान पर वह कैसा वीभत्स काण्ड करने जा रहा है! फिर भी वह आगे बढ़ता गया और अन्ततः उस बड़े रेशमी शामियाने के पास पहुँच गया जिसके नीचे बैठे कुछ अमीर सलाह-

मशविरा कर रहे थे और बीच-बीच आपस में हँसी-मजाक भी करते जाते थे। सम्भव है, उसका लक्ष्य भी इन्हीं में हो। उसने दूर से ही प्रत्येक अमीर के चेहरे और वेश-भूषा को ध्यान से देखा। सब एक से एक कीमती आभूषणों और वस्त्रों से सुसज्जित थे। सबके मुख-मण्डलों पर असाधारण दीप्ति थी। वह निर्णय न कर सका कि इनमें कौन बैरम खाँ हो सकता है। इसी समय सहसा एक विचार उसके मस्तिष्क में बिजली की तरह कौंध गया। बादलगढ़ का जेलदार या मोहतसिब भी कहीं इस जश्न में शामिल न हो। और यदि ऐसा हुआ तो वह कुछ करने-धरने से पहले ही धर लिया जायगा। वह वहाँ से हटकर दूसरी ओर चला गया। उधर एक बहुत बड़ा रुपहली चन्दोबा था जिसके नीचे कई अमीर बड़े-बड़े थाल अपने हाथों पर रक्खे पंक्ति-बद्ध खड़े थे। उन थालों पर जरी के काम के रूमाल पड़े थे जिनमें मोतियों की झालरें लटक रही थीं। अगल-बगल बड़े-बड़े ईरानी-तूरानी सरदार, जो अपने बल-पौरुष के आगे रुस्तम और असफन्दयार को भी तुच्छ समझते होंगे, खोद, जिरह, बकतर, चार आईना आदि पहने, सिर से पैर तक लोहे में डूबे चित्र की भाँति चुपचाप खड़े थे। सामने एक ऊँचा खाली सिंहासन था जिसकी दोनों बगलों में छः छः सुन्दरी लड़कियाँ खड़ी थीं। उन लड़कियों के हाथों में सुनहरी थालियाँ थीं। उन थालियों से सुनहरी और रुपहली धूल ले-लेकर वे सिंहासन पर निछावर कर रही थीं। दूसरी ओर नौबत बज रही थी जिसके शब्द में कानाघाली न सुनाई देती थी। विजय ने वहाँ भी ध्यान से देखा; वह अब भी निर्णय न कर सका कि खानखानाँ इनमें कौन हो सकता है! इसके बाद उसने साधारण दर्शकों की टोली में मिलकर इधर-उधर घूमने की इच्छा की। पर उसे शीघ्र ही अपनी भूल ज्ञात हो गई। उसकी दरबारी पोशाक देखकर साधारण दर्शक उससे दूर हट जाते थे और उसे आतंक की दृष्टि से देखने लगते थे।

उसे बार बार आभास होने लगा कि इस वातावरण में वह अपने

को खपा न सकेगा। सबकी आँखें उसी को घूर रही हैं और वह शीघ्र पकड़ लिया जायगा। दरबारियों के बीच पहुँचने का उसे साहस न हो रहा था और जन-साधारण उसे अपने में मिलाने को तैयार न थे। वह परेशान होकर इधर-उधर टहलने लगा। सोचता था कि रात हो जाय तो वह कलन्दरी में जाकर अपना काम पूरा करे। अब वह अनुमान के सहारे पाँई बाग की ओर चला, जिससे वह उस स्थान के बारे में पहले से ही जानकारी प्राप्त कर ले।

पाँई बाग विजय की कल्पना से कहीं अधिक बड़ा और सुसज्जित था। उसके पाषाण-निर्मित द्वार के दोनों ओर केलों के स्वाभाविक खम्भे लगे थे जिनमें बड़ी-बड़ी गहरें झूल रही थीं। ऊपर की ओर पच्ची-कारी का लुभावना दृश्य था जिसमें खोदे गये रंग बिरंगे फूल द्वार को ढकनेवाली लताओं के रंग-बिरंगे फूलों से इस प्रकार मिले थे कि दोनों में भेद करना कठिन था। द्वार इस समय बन्द था। एक सन्तरी पहरा दे रहा था। उसने चाहा कि बाग के सम्बन्ध में पहरेदार से कुछ पूछ-ताँछ करे, पर साहस न पड़ा। वह पीछे को फिरना ही चाहता था कि उसे अपने कंधे पर किसी के करस्पर्श का अनुभव हुआ। उसने मुड़कर देखा, शेख साहब खड़े मुस्करा रहे हैं। उनकी पोशाक श्वेत होने पर भी आज असाधारण रूप से सुन्दर और बहुमूल्य है।

"कहिए, क्या हाल है?" सहज मुस्कान के साथ शेख ने प्रश्न किया!

"पाँई बाग देखने चला आया था?"

"कुछ हिचकिचाहट हो रही है क्या?"

"नहीं तो!" अपने चोगे में छिपे चाकू की ओर इशारा करते हुए विजय ने कहा।

"खंजर की चमक तो साफ दिखाई पड़ रही है पर साथ ही कातिल का हाथ काँप रहा है।" कविता का सहारा लेते हुए शेख ने कहा!

"आपका अनुमान ठीक है। मैं आगा-पीछा कर रहा था और चाहता था कि यहाँ से भाग जाऊँ। पर आप यहाँ मिल गये। इसलिए मेरा साहस फिर लौट आया है।"

"यानी तुम अपना काम अच्छी तरह अंजाम दे सकोगे?"

"कोशिश करूँगा; पर आखिर यह पराई जगह है।"

"अपने घर की दिलेरी तो ज्यादा अहमियत नहीं रखती।"

"मैं चाहता हूँ कि आप पहले एक बार मुझे खानखानाँ के दर्शन करा दें। इस भीड़-भाड़ में उन्हें पहचान सकना मेरे लिए मुश्किल है।"

"वे अभी-अभी तुम्हारे नजदीक खड़े थे।"

"मेरे नजदीक?"

"हाँ, हाँ, तुम्हारे नजदीक, इतने ही नजदीक, जितना कि मैं खड़ा हूँ।"

विजय सिहर उठा।

"तुम्हारा इस तरह इधर-उधर फिरना ठीक नहीं है। अच्छा हो, तुम उस चँदोवे के नीचे चलकर बैठो और वहीं से सारा तमाशा देखो। यहाँ तुम्हें कोई नहीं पहचानता, और न किसी को इतनी फ़ुरसत है कि तुम्हें पहचानता फिरे। तुम भी किसी को नहीं पहचानते; तुम्हारे हक में यह और भी अच्छा है। शाम होने में अब ज्यादा देर नहीं है और उसके बाद तो तुम कलन्दरी में जनाब वकीले मुतलक से मिलोगे ही?"

"यही ठीक होगा," कहकर विजयपाल चँदोवे की ओर जाने लगा।

"ठहरो, एक बात और सुनो।"

"कलन्दरी में जाओगे किस तरह?"

"इस पुर्जे को दिखाकर। यही आपने बताया था!"

"ठीक है। पर इस तरह जाने पर दरबान तुमसे तरह-तरह के सवाल करेगा, और अगर तुम उनका ठीक से जवाब न दे सके तो मुसीबत में पड़ जाओगे?"

"तब?"

"मैं दूसरी तरकीब बतलाता हूँ। वह देखो, उधर एक चोर दरवाजा है। उस तरफ पहरा नहीं रहता। उसमें साँकल की जगह एक बटन लगा रहता है जिसे दबा देने पर दरवाजा खुल जाता है। मुझे खानखानाँ से तखलिए में बातचीत करने की जब कभी जरूरत पड़ती है, तब मैं उसी रास्ते से जाता हूँ। और उन्हें तुम पहचान तो लोगे ही। वह जड़ाऊ बाजूबन्दवाली बात याद है न?"

"जी याद है, मैं उन्हें पहचान लूँगा।"

"आज तुम्हारी आवाज कुछ गैर मामूली है! मुझे अन्देशा है कि कहीं ऐन मौके पर तुम गलती न कर बैठो!"

"नहीं, गलती नहीं होगी! फिर भी आप समझ सकते हैं कि मैं जो काम करने जा रहा हूँ उसके लिए कितने साहस की आवश्यकता है। मैं समझता था कि मुझमें पर्याप्त साहस है। मेरे जैसा प्रत्येक मनुष्य शायद ऐसा ही समझता होगा। पर काम का सामना होने पर साहस की परीक्षा होती है। क्रोध और आवेश में आकर प्रतिज्ञा कर लेना जितना आसान है, मौके पर हाथों को दृढ़ बनाये रखना उतना आसान नहीं है। क्योंकि प्रतिज्ञा करने और काम करने के बीच जो समय रहता है वह दिल को हर तरह पीछे हटाने और कायर बनाने की कोशिश करता रहता है। मेरे साथ भी ऐसी बहुत सी बातें हो चुकी हैं, इसी लिए दिल जब-तब आगा-पीछा करने लगता है।"

"अब भी मौका है, खूब सोच-समझ लो! साथ ही नन्दिनी की बाबत भी गौर कर लो।"

"अब कुछ भी सोचना-समझना नहीं है। मेरे भाग्य के साथ नन्दिनी का ही नहीं, मेरे तीन दोस्तों का भी भाग्य बँधा हुआ है। इसलिए अब आगा-पीछा करने का. मौका नहीं है। मुझे यह काम कर डालना ही होगा। दिल आगा-पीछा करे तो करे, पर हाथ गलती नहीं करेंगे।"

"तुम बहादुर हो। मुझे यकीन है कि तुम अपना काम जरूर पूरा करोगे!" पीठ ठोंकते हुए बनावटी शेख ने कहा। "अच्छा जाओ; मेरी नसीहतें याद रखना।" कहते हुए वे एक तरफ को चले गये और विजयपाल चँदोवे की तरफ चला गया।

जश्न चलता रहा और विजय की आँखें अनिच्छा होने पर भी उसे देखती रहीं। उस महोत्सव में सभी कुछ महान् था, सभी कुछ गौरव-पूर्ण। महत्ता और वैभव जैसे दिल खोलकर आत्म-प्रदर्शन कर रहे थे। देश-देश के राजा-उमराव अपने-अपने दलबल के साथ उपस्थित थे। उनके तम्बुओं और कारकूनों की सजावटें परस्पर प्रतिस्पर्धी-सी करती लग रही थीं। स्थान-स्थान पर बहुमूल्य शामियाने खड़े थे जिनमें अनेक प्रकार की कार्यवाहियाँ चल रही थीं। कहीं खिलअतें बँट रही थीं, कहीं पारितोषिक। कहीं मन्सब लुटाये जा रहे थे, जिनके उत्तर में मन्सबदारों की ओर से रुपये, अशर्फियाँ और सोने-चाँदी के फूल ओलों की तरह बरसाए जा रहे थे। बहुत-से फराश और खवास भी वहाँ उपस्थित थे जिनकी झोलियाँ बादला और मुक्कैस से भरी थीं। उधर मन्सब की घोषणा होती और इधर वे सन्दलियों पर चढ़-कर सुनहली-रुपहली धूल उड़ाने लगते। एक समाँ सा बँध जाता। नक्कारखाना तरह-तरह के हिन्दुस्तानी, अरबी, तुरकी, ईरानी और फिरंगी बाजों के समवेत स्वर से गूँज उठता। फिर दमामे का शब्द सबको दबाकर वायुमंडल को घहरा देता।

तीसरा पहर ढलते-ढलते बारगाह के राजपथ पर साम्राज्य वधू की बारात के दृश्य दिखाये गये। सबसे पहले पंक्तिबद्ध गजराज चले—भारी भरकम—अपने गौरव से आप ही धसकते हुए। सबसे आगे निशान-वाला हाथी था, जिस पर सूर्यध्वज लहरा रहा था। उसके पीछे माही-

मरातब तथा अन्य निशानोंवाले हाथी थे। सबसे पीछे जंगी हाथी थे जिनके शरीरों पर फौलादी पाखरें थीं और मस्तकों पर भारीभारी ढालें। चेहरों पर गेंडों, शेरों और अरने भैंसों की खालें कल्लों समेत चढ़ा दी गई थीं जिनके कारण उनकी भयंकरता और भी बढ़ गई थी। भयानक सूरतोंवाले ये काले पहाड़ मदजल से भूमि को अभिषिक्त करते हुए सूँड़ों में गुर्ज, बर्छियाँ, भाले, साँकलें और तलवारें हिलाते हुए चल रहे थे।

हाथियों के पीछे-पीछे साँड़नियाँ थीं जो अपनी खिंची गर्दनों, तनी छातियों और कसे शरीरों से लक्का कबूतरों जैसी दिखाई देती थीं। उनके पीछे घोड़े थे जो उछलते-मचलते, खेलते-कूदते, शोखियाँ करते चल रहे थे। उनके रुपहली-सुनहली साजों और आभूषणों से ऐसा लगता था मानो साम्राज्य भर की सारी सम्पत्ति उन्हें सजाने में ही व्यय कर दी गई है।

बारगाह की धूप जब पच्छिम ओर की हवेलियों के पीछे जा छिपी तब शेरों, चीतों, गेंडों और कुत्तों का जलूस निकाला गया। सबकी आँखों पर जरदोजी के गिलाफ थे और गलों में जंजीरें। छकड़ों के साथ-साथ उनके शिक्षक उन्हें चुमकारते-पुचकारते और दम-दिलासा देते चल रहे थे।

जानवरों की पंक्तियाँ समाप्त हुईं तब सैनिकों की पंक्तियाँ प्रारम्भ हुईं। चुने हुए सवार और पैदल राजपूत, तुर्क, ईरानी, तूरानी और तातारी सैनिक अपने-अपने अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित, अपनी-अपनी देश-भाषाओं में गीत और कड़खे गाते चल रहे थे। दस्ते पर दस्ते, रिसाले पर रिसला आ रहा था। 'ओह, यह न जाने कब समाप्त होगी', विजय ने मन ही मन कहा। आँखें उसकी फिर भी उस ओर लगी रहीं। अन्त में किसी प्रकार वह सिलसिला भी समाप्त हुआ। अब उसने दृष्टि उठाकर पच्छिम में आकाश की ओर देखा। सूर्य डूब चुका था। नौबतखाने में भी अब दमामे की कर्णकुहरभेदी ध्वनि हो रही

थी। 'यह संध्या इस जीवन में फिर देखने को मिलेगी या नहीं', उसने मन ही मन गुन-गुनाया।

इसी समय नक्कारे पर जोर की चोट पड़ने के साथ आवाजें आई—"खबरदार! होशियार! आदाब बजाओ, निगाह रूबरू जहाँ-पनाह सलामत!"

'शाहंशाह कहीं जा रहे हैं।' विजय ने सोचा। 'अब शायद खानखानाँ भी कलन्दरी की तरफ जायँगे।' उसने निश्चय किया। वह उठकर असंयत भाव से बारगाह में चलहकदमी करने लगा। इतने में अंधकार और भी घना हुआ। अब उसके कदम आप से आप उसे कलन्दरी की ओर ले चले।

झाड़ों और फानूसों के प्रकाश से अब बारगाह जगमगा उठा। हर ओर दीवाली दिखाई देने लगी! एक साथ कई स्थानों पर आतश-बाजियाँ होने लगीं, जिनके रुपहली और सुनहली माहताबों के प्रकाश में विजय को वस्तुएँ कुछ दूसरे ही रूप में दिखाई देने लगीं। साथ-साथ संगीत की लहरें भी हवा में छितराने लगीं। विजय अब पाँईं बाग के चोर-द्वार के सामने था। आँखें फैलाकर एक बार उसने चारों ओर अच्छी तरह देखा। उधर कोई नहीं था। उसने धीरे से बटन दबाया। द्वार खुल गया। साँस रोककर दबे पाँव उसने बाग में प्रवेश किया।

इस समय उसकी मनोवस्था विलक्षण हो रही थी। उसे अपनी छाया से डर लगता था और अपनी ही साँसों से शंका हो रही थी। वह एक ऐसे अनोखे संसार में था जहाँ का प्रत्येक फूल-पत्ता उसे आँखें फाड़-फाड़कर देख रहा था। उसकी चेतना मानो जवाब दे गई थी और दूर से आता हुआ संगीत उसको क्रन्दनध्वनि-सा लगता था। बाग में व्यस्त पुष्पगंध उसे दम घोटती-सी प्रतीत हो रही थी और उसे ऐसा लगता था मानो वह ऐसे एक संकीर्ण घेरे में घिर गया है जिसमें हाथ-पैर फैलाने भर को पर्याप्त अवकाश नहीं है। ऐसे संकुचित स्थान

में, ऐसे घनीभूत वातावरण में, वह बहुत देर ठहर न सकेगा। उसे शीघ्र ही यहाँ से बाहर हो जाना चाहिए।

वह और आगे बढ़ा। अब वह रौसों के एक चतुष्पथ पर था। चारों ओर चारों खम्भों से फानूस बँधे थे। नीचे मखमली घास थी जिसमें जड़े छोटे-छोटे फूलदार पौधे हरे मखमल में बेल-बूटे से दिखाई देते थे। उसने फानूसों के प्रकाश में देखा, प्रत्येक पौधा जैसे किसी अनागत आशंका से काँप रहा है। उसके पैर लड़खड़ाने लगे। वह एक खम्भे को पकड़कर वहीं घास पर बैठ गया। पर इस अवस्था में भी वह अधिक देर तक न रह सका। ग्वालियर के किले में बन्द अपने उन तीन मित्रों की मूर्त्तियाँ उसके मनस्पटल पर प्रतिबिम्बित हो उठीं जो इस समय भी आशापूर्ण हृदय से आगरे की ओर टकटकी लगाये होंगे। वह उठा और आगे बढ़ा।

वातावरण सर्वथा शान्त, निःशब्द, था। न कहीं कोई सन्तरी था, न पहरेदार। मनुष्य की छाया भी कहीं दिखाई न देती थी। इस प्रशान्त स्थान को उसे रक्तप्लावित करना होगा! इस विपरीत वातावरण में उसे नर-हत्या करनी होगी! वह सिहर उठा। पर कर्त्तव्य कर्त्तव्य है। अपना कर्त्तव्य उसे अवश्य पूरा करना होगा।

वह और आगे बढ़ा।

अब वह बाग के ठीक बीच में था। यहाँ संगमर्मर का एक हौज था, जिसके बीच फव्वारा पूरे वेग से जल उछाल रहा था। बीच में कमल के फूल खिले थे। किनारे-किनारे स्फटिक की वेदियों पर पत्थर की पुतलियाँ नृत्यमुद्रा में खड़ी थीं। चारों कोनों पर पत्थर के चार खम्भे लगे थे जिन पर चार फानूस लटक रहे थे। उन फानूसों में प्रज्वलित मोमबत्तियों का प्रकाश नीचे जल में प्रतिभासित हो रहा था। प्रकाश की धारा ने जल-धाराओं के साथ घुल-मिलकर झिलमिली का एक पर्दा-सा बना दिया था जिसकी चकाचौंध में किनारे

लगे गुलाब के फूल भीतर के कमलों से सटे हुए दिखाई दे रहे थे। मानो सुनहली तारों में गूँथ कर किसी ने गजरे बिखेर दिये हों।

विजय कुछ देर तक खड़ा अपलक उस दृश्य को देखता रहा। उसे लगा, उसका मन अपने ही प्रति विद्रोही होता जा रहा है। वह बहुत देर तक खड़ा खड़ा बाह्य का अभ्यन्तर के साथ समन्वय करने का प्रयत्न करता रहा।

बारगाह से आनेवाले दमामे के अकस्मात् जोर के शब्दों ने फिर उसका ध्यान भंग किया। जेब में चाकू को सँभालकर उसकी आँखें फिर किसी का अन्वेषण करने लगीं। इस बार उसने देखा, वह जहाँ पर खड़ा है उस स्थान से ५० कदम की दूरी पर केलों के झुरमुट के बीच एक वेदी और भी बनी है जिस पर कोई मनुष्य-मूर्त्ति पत्थर की भाँति अविचल बैठी है। वह दबे पाँव उसी ओर को अग्रसर हुआ।

विजय को लगा, उसके रोम-रोम में जाड़ा समा गया है। उसका भीतर-बाहर सब काँप उठा। वह कौन हो सकता है! उसने ध्यान से देखा। उस मानवमूर्त्ति का मुँह दूसरी ओर को था। इसी समय उसे दिखाई दिया, बाग की मकर चाँदनी में बाजूबन्द के रत्न नवग्रह की भाँति दमक रहे हैं। जरूर खानखानाँ ही हैं! तब उन पर पीठ पीछे से आक्रमण कर देना चाहिए!

वह बिल्ली की तरह पैर रखता हुआ आगे बढ़ा। शिला पर बैठी मूर्त्ति में कुछ स्पन्दन हुआ। विजय ठिठक गया। मूर्त्ति इस समय उसी की ओर देख रही थी। विजय के हाथ-पाँव फूल गये।

विजय उलटे पाँव कुछ दूर पीछे लौट आया। उसने अपने को बहुत सँभाला। हृदय की प्रतिहिंसापूर्ण भावनाओं को भरसक उभारने की चेष्टा की। चाकू निकाल कर दाहिने हाथ की मुट्ठी में जमा कर पकड़ लिया और फिर अग्रसर हुआ।

अब केवल चार कदम का अन्तर था।

मूर्त्ति में फिर स्पन्दन हुआ। दाहिने हाथ में लगे बाजूबन्द के हीरे चौगुने उद्भासित हो उठे। विजय फिर ठिठक गया। मूर्त्ति का हाथ आगे बढ़ा। विजय को सुन पड़ा—"बहादुर इस तरह आगा-पीछा नहीं करते।"

विजय का शरीर जड़ हो गया। हाथ-पैर शिथिल हो गये। अब न उसमें आगे बढ़ने की शक्ति थी न पीछे लौट आने की। वह जड़ की भाँति जहाँ खड़ा था, वहीं खड़ा रह गया।

अब उस मानवमूर्त्ति की बारी थी।

उसने रत्नजटित पगड़ी को उतारकर एक ओर रख दिया। शाही लबादा भी एक ओर उतार दिया। और फिर मन्द-मन्द गति से विजयपाल की ओर चली।

विजयपाल ने भागना चाहा, पर उसकी टाँगों को जैसे काठ मार गया हो। वह एकटक भूमि की ओर देखने लगा।

मूर्त्ति धीरे-धीरे विजयपाल के पास पहुँच गई और उसके सिर पर हाथ रखकर बोली—"इधर देखो, बहादुर शाहजादे; बैरम खाँ तुम्हारे पास खड़ा है!"

विजय ने साहस करके ऊपर को आँखें उठाईं। शेख साहब खड़े मुस्करा रहे थे। छुरा उसके हाथ से छूट पड़ा और वह कटे वृक्ष की भाँति उनके चरणों पर गिर पड़ा।

"उठिए उठिए, विजयपाल जी;" विजय को उठाने की चेष्टा करते हुए शेख ने कहा।

मुझे सजा दीजिए, खानखानाँ साहब; मेरी गर्दन उड़वा दीजिए। मैं आपको कत्ल करने आया था।" बच्चों की भाँति सुबकियाँ भरते हुए विजयपाल ने कहा।

"तुम मेरे अजीज हो।" उसके सिर पर हाथ रखते हुए खानखानाँ ने कहा।

"कातिल अजीज नहीं, दुश्मन होता है, जहाँपनाह!"

"होता होगा; पर मेरी बहन बेगम मुअज्जिमा और मेरे दोस्त राजा रतनसेन का दामाद और मेरी अजीजा नन्दिनी का शौहर मेरा कातिल होने पर भी मेरा दुश्मन नहीं हो सकता। उसे सजा नहीं दी जा सकती।"

विजय भौंचक्का-सा खानखानाँ के मुँह की ओर देखने लगा। फिर बोला—"ये रिश्ते मेरी समझ में नहीं आये, जहाँपनाह!"

"इसलिए कि उनकी बाबत न तुम्हें कुछ इल्म है और न नन्दिनी को ही। अब मैं तुम्हें बतलाये देता हूँ कि जिस लड़की को तुम लावारिस या यतीम समझ रहे हो वह बिलग्राम के मरहूम राजा रतनसिंह की लड़की है। राजा साहब की बेवा रानी जमाने की गर्दिश का शिकार होकर यहाँ सलीमशाह के महलों में रहती है। उसी ने नन्दिनी को कात्यायनी माई के थान से यहाँ बुला भेजा था, जिसके यहाँ से तुम उस दिन नन्दिनी को निकाल लाये थे।"

विजय उठकर सीधा बैठ गया। फिर खानखानाँ की आँखों में आँखें डालते हुए उसने पूछा— "और वह मुगल अमीर कौन है जिसने उस महल में उस रात को नन्दिनी से भेंट की थी और जिसने फिर वहाँ से निकालकर नन्दा को सीकरी के उस गन्दे मकान में रक्खा था?"

कुछ देर आगा-पीछा करने के बाद बैरम खाँ ने उत्तर दिया— "वह अमीर वही है जिसकी सदाकत और नेकनीयती पर न सिर्फ मुगलों को, आगरे के बच्चे-बच्चे को भरोसा है। और आखिर में जिसकी गोद में नन्दिनी को सौंप कर तुम बेफिक्री की साँस ले रहे थे।"

अपने चाचा और शेख के कण्ठस्वर की एकता के संबंध में जेलखाने में नन्दा ने जो कुछ कहा था, वह विजय को स्मरण हो आया। वह खानखानाँ के चरणों में लोट गया और बोला—

"तब मुझसे बहुत बड़ी गलती हुई, पिता जी ! मैं आपका जन्म-जन्म अपराधी रहूँगा ! अब मेरा उद्धार इन्हीं चरणों में प्राण छोड़ने पर हो सकेगा।"

खानखानाँ ने गम्भीर होकर कहा—अजीज शाहजादे ! इन्सान को तौलने के लिए मुझे सिर्फ एक तराजू अल्लाहताला ने दी है—सच्चाई और ईमानदारी की। जो शख्स इस तराजू पर पूरा तुल जाता है, उसका गुनाह न सिर्फ मेरी नजर में, उस पाक परवर्दिगार की नजर में भी काबिले मुआफी है। मुझे तुममें ये दोनों चीजें पूरी-पूरी दिखाई दीं।"

"तब मुझे मुआफ कर दीजिए, जहाँपनाह !"

"मुआफ तो तुम्हें नन्दा की सिफारिश से मैं पहले ही कर चुका हूँ।"

"और मेरी सिफारिश से ?"

"तुम्हारा मतलब किससे है ?"

"अपने उन तीन अभागे साथियों से, जो ग्वालियर के किले में कैद हैं और जिन्हें सजाये मौत का हुक्म हो चुका है।"

"उनकी रिहाई मेरे इख्तियार से बाहर की बात है।"

"आप वकीले मुतलक हैं ! आप सब कुछ कर सकते हैं, पिता जी।"

"दुरुस्त है। मगर उनके मुकदमे के पूरे अख्तियारात एक दूसरे शख्स को दिये जा चुके हैं। वह जो कुछ मुनासिब समझेगा, करेगा।"

"अगर उन लोगों को भी मुआफ न किया गया तो मेरी रिहाई और मुआफी बेकार होगी। दुनिया और जमाने की लानत और थूक अपने सिर पर लादकर मैं जिन्दा रहना नहीं चाहता।"

"मैं उन्हें छुड़ाने की कोशिश करूँगा।"

"मुझे वचन दीजिए।" कहकर याचनापूर्ण दृष्टि से विजय ने खानखानाँ के मुँह की ओर देखा।"

"मैं कह चुका हूँ। अब तुम मेरी गाड़ी पर चलकर नन्दा की हवेली में आराम करो। तब तक मैं तुम्हारे दोस्तों की बाबत पता लगाता हूँ। मगर खबरदार! नन्दा से इस मामले में एक बात भी न कहना।"

विजय ने उत्तर में सिर झुका दिया और फिर प्रसन्न होकर पाईं बाग से बाहर निकल गया। उसे आज अपना दिल ऐसा हलका लग रहा था जैसा पिछले बहुत समय से जब से उसने इस षड्यंत्र में भाग लिया था, नहीं लगा था।

पाँईं बाग से निकलकर खानखानाँ उन्हीं पैरों मुल्ला की हवेली पर जा पहुँचे। मुल्ला इस समय भीतर था। सदर फाटक पर जो उजबक दरबान पहरे पर तैनात था, वह न तो बैरम खाँ के पद-गौरव से परिचित था और न उन्हें शक्ल सूरत से ही पहचानता था। दूसरे खानखानाँ इस प्रकार कहीं जाते-आते नहीं थे। और मुल्ला के घर पर तो वे शायद आज से पहले कभी नहीं गये थे। दरबान ने अपने नित्य के अभ्यासानुसार उन्हें द्वार पर ही रोकते हुए कहा—"यहीं ठहरिए, अन्दर जाने की इजाजत नहीं है।"

"मुझे बहुत जरूरी काम से मिलना है।" खानखानाँ ने आग्रह के साथ कहा।

"तो यहीं रुक जाइए। मालिक की इजाजत मिलने पर अन्दर जा सकेंगे।"

बैरम खाँ रुक गये, पर उन्हें बहुत बुरा लगा। दरबान का यह व्यवहार उन्हें अपमानजनक प्रतीत हुआ। यदि कोई और मौका होता तो वे शायद इसे हँसकर टाल जाते; या यह समझ कर कि दरवान ने अपने कर्त्तव्य का ही पालन किया है, वे इसकी उपेक्षा कर जाते। पर आज उनके मन की स्थिति दूसरे प्रकार की थी। वे जिस काम के लिए पैदल चलकर यहाँ तक आये थे, उसमें इस प्रकार विघ्न पड़ना उन्हें सह्य न हो सका। उन्हें इसमें मुल्ला की भी गुप्त अभिसंधि दिखाई दी। उन्होंने कुढ़ते हुए मन ही मन कहा—"बदेखुद करदारा

दरमाँ नबाशद"—अर्थात् जो बुराई स्वयं अपने हाथों की है, उसका क्या इलाज ?

खानखानाँ उलटे पाँव लौट जाने का विचार कर ही रहे थे कि दरबान के आगे-आगे स्वयं मुल्ला बाहर आ गया और वकीले मुतलक को उस अवस्था में वहाँ खड़ा देखकर उसके पाँव तले से जमीन खिसक गई। बड़े अदब से अभिवादन करके वह खानखानाँ के पास पहुँचा और उनका हाथ पकड़कर बोला—"जहाँपनाह, यहाँ, इस हालत में! अन्दर तशरीफ ले चलिए।"

"तुम्हारे महल के कायदे की पाबन्दी में खड़ा हूँ।" रुखाई से हाथ छुड़ाते हुए बैरम खाँ ने कहा।

"मुआफ कीजिएगा, दरबान आपको पहचानता नहीं था।"

"बल्कि तुम भी···!" भवों को अधिक बंक करते हुए उसी रुखाई से खानखानाँ ने उत्तर दिया।

मुल्ला सहम गया।

रोषाग्नि को भीतर ही भीतर पीने की चेष्टा करते हुए खानखानाँ ने खड़े ही खड़े पूछा—"ग्वालियर के वास्ते कोई हुक्मनामा भेजा है ?"

"हुक्मनामे तो कई भेजे गये हैं।"

"मेरा मतलब उस मामले से है, जिसकी समाअत सीस्तानी के सुपुर्द है !"

"उसके मुताल्लिक भी एक हुक्मनामा भेजा गया है।"

"कब ?"

"कुछ ही देर पहले।"

"उसमें क्या लिखा है ?"

"जहाँपनाह को सब मालूम है।"

"वही मजमून जो उस दिन देखा था ?"

"करीब-करीब।"

"तुमने उसे अजसरेनौ कलमबंद करने का वादा किया था?"

"मगर बाद को उसे उसी शक्ल में रवाना करना ज्यादा सही मालूम हुआ।"

"ऐसा क्यों?"

"सल्तनत की बहबूदी इसी में समझ पड़ी।"

"मुझसे मशविरा करने की भी जरूरत नहीं समझी गई।"

"मुझे डर था कि जहाँपनाह उन लोगों को साफ छोड़ देने के लिए जोर देंगे।"

"खैर, उन लोगों की सजा के लिए तारीख कौन-सी मुकर्रर हुई है।"

"कल की!"

"और वक्त?"

"अलस्सुबह!"

"हरकारा किसी तरह वापस हो सकता है?"

"अब गैर मुमकिन है। वह पाँच-छः कोस पहुँच भी गया होगा।"

"रास्ते में कहीं कयाम जरूर करेगा?"

"कह दिया गया है कि सुबह होने के पेश्तर ही ग्वालियर पहुँच कर हुक्मनामा हाकिम को दे दे।"

"इतनी जल्दबाजी की जरूरत?"

"मुझे यकीन था कि छोड़ दिये जाने पर वे लोग हमारा इस मुल्क में ठहरना दुशवार कर देंगे।"

"हूँ!"

बैरम खाँ ने जमीन पर जोर से पैर पटका। फिर क्रुद्ध सर्प की

"तुमने मुझे दीन-दुनिया कहीं का नहीं रक्खा। तुमने मेरी सारी खुशी गारत कर दी। मेरी सारी उम्मीदों पर पानी फेर दिया। मैं तुम्हें जालिम और बेरहम जरूर समझता था, मगर दोस्तमार नहीं। खैर, जो हुआ सो हुआ; अब बेहतरी इसी में है कि अलम, नक्कारा और मरातिब के वे सारे निशान जो मेरी तरफ से तुम्हें दिये गये थे, सुबह होने से पहले ही वापस कर दो। क्योंकि मुझे यकीन हो गया है कि तुम्हारे हौसले में जाहोजलाल और मरातिब के लिए जगह नहीं है।"

यह कहकर आग्नेय नेत्रों से मुल्ला को देखते हुए खानखानाँ अपने महलों की ओर चल दिये। मुल्ला काठ की तरह खड़ा-खड़ा सब देखता रहा। उसे इतना साहस भी न हुआ कि जाकर उनके पैरों पर गिरकर क्षमा-याचना कर सके।

दीवानखाने में पहुँचते ही बैरम खाँ ने तुरन्त विजयपाल को बुला भेजा। उसके आ जाने पर कहा—"एक बहुत बड़ी गलती हो चुकी है। अब समझ में नहीं आता कि उसकी दुरुस्ती किस तरह हो।"

बैरम खाँ के सहजगंभीर मुख पर ऐसी घबराहट इससे पहले विजय ने कभी न देखी थी। उसका मुँह सूख गया। वह निर्निमेष दृष्टि से उनके मुख की ओर देखता रह गया।

उसे इस तरह खड़े देख बैरम खाँ ने कहा—"मौत का परवाना लेकर हरकारा ग्वालियर को रवाना हो चुका है।"

"कब?"

"कुछ देर पहले।"

"अब क्या होगा?" सकपकाते हुए विजय ने प्रश्न किया।

"होगा क्या, सदरुस्सदूर के हुक्म के मुताबिक कल अलस्सुबह उन लोगों को सजा दे दी जायगी।"

"और आप कुछ न करेंगे ?" क्षोभ और निराशा-मिश्रित स्वर में खानखानाँ की ओर देखते हुए विजय ने पूछा।

"मैं अब सिर्फ यह कर सकता हूँ कि अपने कलम से उन लोगों की रिहाई का परवाना लिख भेजूँ। पर वह बेसूद होगा। उसके वहाँ पहुँचने के पेश्तर ही वे लोग मौत के घाट उतार दिये जायँगे।"

विजय के तमसाच्छादित हृदयाकाश में सहसा आशा की बिजली कौंध गई। उसने तुरन्त कहा—"आप हुक्मनामा मुझे दिला दीजिए और एक घोड़ा भी। मैं सुबह होने से पेश्तर ही ग्वालियर पहुँच जाऊँगा।"

"अच्छी बात है! आप तैयार होकर आजाइए। बाकी इन्तजाम मैं कर रहा हूँ।" कहकर खानखानाँ ने कलमदान निकाला। विजय भी तैयार होने के लिए नन्दा की हवेली की ओर चल दिया।

विजय की हड़बड़ी और तैयारी ने नन्दा को फिर आशंकित कर दिया। वह सामने आकर खड़ी हो गई और घबराई आवाज में बोली—"अब कहाँ की तैयारियाँ हो रही हैं ?"

"बड़ा जरूरी काम आ गया है, नन्दा! मुझे इसी वक्त ग्वालियर जाना होगा।" अँगरखे की तनियाँ कसते-कसते विजय ने उत्तर दिया।

"रात में ?...नहीं, इस वक्त मैं आपको बाहर न जाने दूँगी।" विजय का हाथ पकड़ते हुए नन्दा ने कहा।

"और अगर मैं इसी वक्त न चल दिया तो सब चौपट हो जायगा।" जूते में पैर डालते-डालते विजय ने कहा।

"तुम फिर हठ करने लगे। मैं कहती हूँ, सवेरे जाना।"

"नहीं नन्दा; मेरे साथी ग्वालियर में कैद हैं। उसको फाँसी की सजा सुनाई जा चुकी है। उन्हीं की रिहाई का हुक्म लेकर मैं जा

नन्दा काँप उठी। वह विजय के और अधिक निकट जाते हुए बोली—"किसी हरकारे को भेज दो, प्यारे विजय! तुम न जाओ।"

"नहीं नन्दा, हरकारे से यह काम न होगा। मुझे ही जाना पड़ेगा।" विजय ने नन्दा का समाधान करने की चेष्टा करते हुए कहा।

"मेरा दिल बहुत कच्चा हो रहा है, प्यारे विजय! मेरी दाहिनी आँख फड़क रही है। माता जी कहती थीं कि स्त्री की दाहिनी आँख का फड़कना बहुत अशुभ होता है।"

"अशुभ तो अब दूर हो चुका है। अब सब शुभ ही शुभ है। ग्वालियर से लौटते ही हम दोनों विवाह-बन्धन में बँधेंगे और फिर हम दोनों को कोई एक-दूसरे से अलग न कर सकेगा।"

"सुख के दिन आने पर देवता भी ईर्ष्या करने लगते हैं। प्यारे विजय! इसी लिए विवाह के एक-दो सप्ताह पूर्व से ही वर को घर से बाहर नहीं निकलने देते। मैं भी तुम्हें नहीं जाने दूँगी।" लता की भाँति विजय को परिवेष्टित करते हुए नन्दा ने कहा।

"मुझे रोको मत, नन्दा। बस, इस बार मेरी बात और मान लो। फिर मैं तुम्हारे पास से क्षण भर को अलग न होऊँगा।" नन्दा से अपने को अलग करने की चेष्टा करते हुए विजय ने कहा।

"अच्छी बात है। तुम जाओ। पर मेरी भी एक बात तुम्हें माननी पड़ेगी!"

"वह क्या?" प्रसन्नता के आवेग में विजय ने पूछा।

"मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी।"

"यह कैसे संभव हो सकता है, नन्दा! घोड़े को पूरी तेजी से दौड़ाते हुए मुझे वहाँ पहुँचना है। तुमने घोड़े की सवारी कभी की नहीं। भला इतने लम्बे सफर में तुम्हें...?"

"मुझे अपने पीछे बिठा लेना, प्यारे विजय ! मैं तुम्हारी पीठ का सहारा लिये रहूँगी। मुझे विश्वास है...!"

"और शेख साहब क्या कहेंगे?" भर्त्सना मिश्रित स्वर में विजय ने कहा।

"वे कुछ न कहेंगे। वे बहुत सज्जन हैं। उनके लिए एक पत्र लिखकर रख दीजिए।"

"नहीं नन्दा, यह बहुत अनुचित होगा। जानती हो, हम पर उनके कितने उपकार हैं?"

"फिर भी वे बुरा न मानेंगे। मैं विश्वास दिलाती हूँ।"

नहीं नन्दा, ऐसी छोटी-छोटी बातों के लिए हमें उनका दिल नहीं दुखाना चाहिए।" चलने की अन्तिम तैयारी करते हुए विजय ने कहा।

तब तुमने मुझे छोड़कर चले जाने का ही निश्चय कर लिया है?" नन्दा के स्वर में तेजी थी, और आँखों में रुखाई।

विजय अप्रतिभ हो गया। नम्र स्वर में बोला, "नहीं नन्दा, तुम्हें छोड़कर मैं नहीं जा रहा हूँ। परवाना देकर मैं उलटे पाँव लौट आऊँगा।"

बाँदी ने इसी समय आकर सूचना दी कि घोड़ा तैयार है। विजय द्वार की ओर अग्रसर हुआ।

हताश नन्दा ने दोनों हाथों से अपना मुँह ढक लिया और बिलखती हुई बोली—"हाय रे मेरा भाग्य!"

"विजय घूमकर खड़ा हो गया। उसे घूमते देख नन्दा ने अपना मुँह दूसरी ओर फेर लिया।

"यह क्या कर रही हो, नन्दा!" विजय ने आक्रोशपूर्ण स्वर में कहा।

"अपने भाग्य को रो रही हूँ जो मुझे ये आँख-मिचौनी के खेल खिला रहा है। क्षण भर के लिए मिलन, और फिर पहाड़-सी वियोग-भरी रातें !" कह कर नन्दा जोर से फूट-फूट कर रोने लगी।

"इस तरह रोकर जी कच्चा न करो, नन्दा। तुम जानती हो कि तुम्हारे एक आँसू का मूल्य मेरी दृष्टि में अपने सौ जीवनों से अधिक है।"

यह कहकर विजय ने उसका सिर अपनी छाती से सटा लिया। कुछ क्षण तक इसी अवस्था में खड़े रहने के पश्चात् नन्दा ने पूछा—"तब जाना ही स्थिर रहा ?"

"जाना तो होगा ही, नन्दा।"

"अच्छी बात है।" कहकर नन्दा ने अपने दोनों हाथ विजय की ग्रीवा में डाल दिये। फिर अपने शरीर का भार देकर उसने विजय का सिर नीचे की ओर झुकाने का प्रयत्न किया। उसके इस अप्रकट संकेत पर जब विजय ने अपना सिर नीचे को झुका दिया तब नन्दा ने अपने अधरोष्ठ विजय के अधरोष्ठों पर रख दिये।

कुछ देर तक नन्दा निश्चेष्ट इसी अवस्था में खड़ी रही। फिर सहसा अलग हट गई और बोली—"अब आप जाइए। अब मैं न रोकूँगी। मैं जो चाहती थी, वह मुझे मिल गया। मेरा जीवन सार्थक हो गया। अब आवश्यकता पड़ने पर मैं शान्ति से मर सकूँगी।"

विजय मुस्कराता हुआ बाहर हो गया। आग्रहपूर्ण प्रेम की एक घड़ी अपने जीवन में उसे सबसे अधिक मधुर, सबसे अधिक अमृतमय प्रतीत हुई।

आज्ञापत्र और घोड़ा लिये बाहर नौकर तैयार खड़ा था।

विजय अविलम्ब घोड़े पर सवार हो गया और उसकी बाग ग्वालियर की ओर मोड़ते हुए उसने दोनों एड़ें एक साथ लगा दीं। घोड़ा जैसे हवा में उड़ चला। अंधकार में भूत की तरह खड़े मकानों

और अड्डेदार की पुकार 'घोड़ा तैयार है, हुजूर' से ही विजय ने अनुमान कर लिया कि पहला पड़ाव निकल रहा है।

उसने घोड़े को और भी गरम किया। दूसरा पड़ाव भी इसी तरह निकल गया। विजय के घोड़े में अभी काफी दम था। तीसरे पड़ाव तक पहुँचने के पहले ही घोड़े ने अपनी चाल धीमी कर दी। विजय ने चाँदनी के सहारे देखा उसकी गर्दन और मुँह से फेन के टुकड़े गिर रहे थे और बढ़ती हुई श्वास-श्वास से तंग अब तब कर रहा था।

पड़ाव पर पहुँच कर घोड़ा आप से आप रुक गया। अड्डेदार घोड़ा लिये तैयार खड़ा था। उसके हाथ पर कुछ रखकर विजय घोड़े पर सवार हो गया और फिर उड़ चला।

यह घोड़ा भी अच्छा था। सवार के एक बार के संकेत पर ही वह पूरी चाल पर आ गया। विजय ने उसे और बढ़ावा दिया। एक पड़ाव वह बिना रुके ही पार कर गया, पर अगले पड़ाव पर पहुँचने से पहले ही कन्नी काटने लगा। जैसे-तैसे पड़ाव पर पहुँच कर घोड़ा बदलते हुए उसने अड्डेदार से पूछा—"ग्वालियर कितने पड़ाव आगे है?"

"पाँच पड़ाव और!" ताजे घोड़े की रास हाथ में थमाते हुए अड्डेदार ने उत्तर दिया। विजय को प्यास लगी थी, फिर भी उसने पानी न पिया और सवार होकर आगे चल दिया। राह में बराबर उसकी आँखें पूर्व की क्षितिज पर जमी थीं और वह सूर्योदय के प्रत्येक चिह्न का भय और आशंका के साथ निरीक्षण कर रहा था। साथ ही उसके कान किनारे के वृक्षों पर बसेरा लेनेवाले पक्षियों की कलध्वनि की ओर लगे हुए थे। वह तीर की तरह बढ़ता जा रहा था।

चम्बल नदी के पुल पर उसने फिर घोड़ा बदला। एक गिलास पानी भी माँग कर पिया। आधे से अधिक मार्ग समाप्त हो चुका था। पूर्व में प्रभात का अभी कोई चिह्न न था। सन्तोष की साँस लेते हुए

उसने अड्डेदार से प्रश्न किया—"पहला हरकारा कितना आगे गया है!"

"काफी देर हुई। अब तक ग्वालियर के आस पास पहुँच गया होगा।"

"कोई हर्ज नहीं।" कहकर विजय कूद कर घोड़े पर सवार हो तीर की तरह उड़ चला।

पुल से अभी दो-ढाई कोस ही पहुँचा होगा कि उधर से दो बहलियाँ आती हुई उसे मिलीं। पूरी रफ्तार पर भागते हुए घोड़े ने उन्हें देखा और कतराकर सफाई से निकल गया। घोड़े की इस चालाकी पर विजय को प्रसन्नता अवश्य हुई, पर साथ ही बहलियों को देखकर उसे चिन्ता भी हुई। बहलियाँ शायद अगले पड़ाव से आई थीं। यदि यह सच था तो सबेरा होने में अब अधिक देर नहीं है। उसने अन्वेषक की दृष्टि से पूर्व की ओर देखा। शुक्रोदय हो चुका था, यद्यपि उषा की लाली पूर्वी क्षितिज पर अब तक नहीं छितराई थी। उसने ध्यान के साथ आगे सड़क की ओर देखा। उन बहलियों के सिवाय और कोई यात्री उस पर नहीं दिखाई पड़ा।

चम्बल के बाद तीसरे पड़ाव पर उसने फिर घोड़ा बदला। उसका शरीर थककर चूर हो गया था। फिर भी जैसे कोई अदृश्य शक्ति प्रतिक्षण उसे आगे बढ़ने को प्रेरित कर रही थी।

एक पड़ाव और गया। सड़क पर यातायात अब काफी हो रहा था। पूर्व की दिशा में लाली छितरा गई थी। निराशा भरी दृष्टि से उसने सामने की ओर देखा। दूर क्षितिज के वृक्षों पर किले का गुम्बद मुकुट की भाँति दिखाई पड़ रहा था।

"अब अधिक दूर नहीं है," कहकर विजय ने घोड़े को और तेज कर दिया।

घोड़ा रही-सही शक्ति बटोरकर पूरे वेग से भागा। विजय की आँखें निर्निमेष गुम्बद पर टिकी थीं। सहसा शहरपनाह के द्वार पर पहुँचते-पहुँचते घोड़ा लड़खड़ाया। विजय ने जोर से लगाम खींचकर उसे गिरने से रोक लिया और एड़ तथा चाबुक के प्रयोग से उसे सचेत करने का प्रयत्न किया। इसका थके घोड़े पर कुछ प्रभाव हुआ अवश्य, किन्तु लगभग १०० गज आगे वह फिर एक पत्थर से टकराकर गिर पड़ा। अब उसे उठाकर खड़ा करना असंभव था।

अपनी नौका को किनारे पर डूबते देखकर हताश नाविक जिस प्रकार उसे छोड़ जल में कूद पड़ता है, उसी प्रकार विजय भी घोड़े को छोड़कर अलग खड़ा हो गया, और उसे उठाने में समय व्यय न कर पैदल ही किले की ओर चल पड़ा। राजपथ शून्य था। प्रभात हो जाने पर भी नागरिकों में जीवन-संचार नहीं हुआ, यह देखकर उसे कुछ आश्चर्य हुआ। पर वह अविराम गति से किले की ओर बढ़ता ही गया।

चार या पाँच चौराहें पार करने के बाद वह उस सड़क पर पहुँचा जो सीधी किले को जाती थी। इस सड़क पर बहुत अधिक भीड़-भाड़ थी। चिन्तित और विषण्ण नागरिक इधर-उधर देखते और परस्पर काना-फूसी करते हुए किले की ओर जा रहे थे। इसी समय विजय के कान में दमामे का शब्द पड़ा। उसका हृदय दहल उठा।

अत्यधिक प्रयत्न से भीड़ के भीतर मार्ग बनाता हुआ वह आगे बढ़ा। वह ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता भीड़ भी त्यों-त्यों बढ़ती जाती थी और आगे बढ़ना अधिक कठिन होता जाता। दमामे का शब्द भी कुछ-कुछ अन्तर से उसके कानों में बराबर पड़ रहा था। पर उसे किसी की परवाह नहीं थी। हाथ में कागज को मजबूती से दबाये धक्का-मुक्की करता हुआ वह भीड़ को चीरता आगे बढ़ता रहा।

सामने एक बड़ा फाटक था। उसके दोनों पार्श्वों में खड़े कई पहरेदार यातायात का नियंत्रण कर रहे थे। विजय फाटक पार कर

"सल्तनत के दुश्मनों की पामाली और हुजूर शाहंशाह की नमकहलाली का मौका इस बार हमारे जंगी हाथी 'जल जंगल' को दिया जाय।"

"दुरुस्त है। 'जल जंगल' को आगे बढ़ाओ।" अधिकारी ने हुक्म दे दिया।

विजय ने चाहा, बैरम खाँ का आज्ञा-पत्र दिखाकर अधिकारी को रोक दे। पर उसी समय उसकी निगाह मुराद और इम्दाद खाँ की फड़कती लाशों पर पड़ी। साथ ही उसने चम्पालाल को भी देखा, जो चबूतरे से कुछ दूर पर बँधा दोनों हाथ जोड़े, आकाश की ओर देख रहा था।

महावत का संकेत पाकर 'जल जङ्गल' चिघाड़ा और झूमताहुआ निर्दिष्ठ स्थल की ओर बढ़ा।

विजय ने आज्ञापत्र अधिकारियों की ओर फेंक दिया। फिर "मैं भी आ गया चम्पालाल जी," कहता हुआ उछलकर उसके पास जा पहुँचा। किसी अज्ञात प्रेरणा से दोनों मित्र एक दूसरे के हृदय से चिपट गये। 'जल जंगल' बढ़ा और दोनों को पीसता हुआ निकल गया।

उपस्थित जनता भय से चीख उठी। सबने देखा, हाथी के पहाड़ जैसे पैरों के नीचें कुचले जाने पर भी स्नेहीमित्रों का स्नेहपाश शिथिल नहीं हुआ था।